उ. प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAEC-110
गाँधी का दर्शन

पाठ्यक्रम

खण्ड–01 सत्य एवं अहिंसा	**3**
इकाई–1 साध्य–साधन संबंधी विचार	5
इकाई–2 अहिंसा का जीवनादर्श	12
खण्ड–2 सत्याग्रह की परिकल्पना	**21**
इकाई–3 सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति	**22**
इकाई–4 सत्याग्रह के व्रत	29
खण्ड–3 सर्वोदय	37
इकाई–5 अर्थ एवं उत्पत्ति	39
इकाई–6 साम्यवाद, समाजवाद एवं सर्वोदय	46
खण्ड–4 स्वदेशी	**55**
इकाई–7 स्वदेशी की अवधारणा	54
इकाई–8 स्वराज की अवधारणा	62
खण्ड–5 ट्रस्टीशिप	**70**
इकाई–9 अर्थशास्त्र का नैतिक व अध्यात्मिक सिद्धान्त	72
इकाई–10 ट्रस्टीशिप का आधार	80
खण्ड–6 शिक्षा तथा समाज	**88**
इकाई–11 साम्प्रदायिक एकता	89
इकाई–12 अस्पृश्यता उन्मूलन	99
खण्ड–7 महात्मा गाँधी की प्रासंगिकता	**107**
इकाई–13 गाँधी के रचनात्मक कार्य	108
इकाई–14 वैश्वीकरण में महत्व	117

EXP-008

MAEC-110 गाँधी का दर्शन

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रोफेसर सत्यकाम — कुलपति–अध्यक्ष

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी — निदेशक मानविकी विद्याशाखा ,उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो.ऋषिकान्त पाण्डेय — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. हरिशंकर उपाध्याय — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. दीपनारायण यादव — दर्शनशास्त्र विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक

प्रो. जटाशंकर (सेवानिवृत्त) — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

परिमापक

प्रो. जटाशंकर (सेवानिवृत्त) — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

लेखक

डॉ. ममता सिंह — एसो. प्रोफेसर, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रथम मुद्रण– (मार्च), (2025) — **MAEC-110 गाँधी का दर्शन**

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (2025)

ISBN-978-93-48987-22-8

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन : प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (मार्च) (2025)

मुद्रक – चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा० लि० 42/7 जवाहर लाल नेहरु रोड, प्रयागराज।

EXP-008

खण्ड–01 सत्य एवं अहिंसा

खण्ड परिचय

महात्मा गाँधी का चिन्तन भारतीय उपनिषदीय नैतिक चिन्तन के साथ पाश्चात्य विचारकों जैसे रस्किन, टालस्टाय आदि से प्रभावित रहा है। उनके चिन्तन का आधार सत्य एवं अहिंसा पर आधारित नैतिकता है।

उनके अनुसार सत्य का पहला स्वरूप सापेक्ष सत्य का है जिसका पहला साक्षात्कार मनुष्य देश या परिस्थितियों के अनुसार करता है। सत्य का दूसरा स्वरूप निरपेक्ष सत्य का होता है जो कि सर्वव्यापक एवं देशकाल से परे है। पूर्ण सत्य का अर्थ गाँधी जी ईश्वर के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके अनुसार ईश्वर ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है। मन, कर्म तथा वचन से सच्चाई का पालन करना। जो कुछ भी शांतिपूर्वक सोचने के बाद न्यायोचित, धर्म अनुरूप एवं तार्किक लगे और हमारे अन्तःकरण के प्रतिकूल न हो उसे करना ही सत्य है। ईमानदारी से जीवन जीना चाहिए। सफलता मिले या ना मिले।

इस सत्य का साधन अहिंसा है। मन, कर्म और वचन तीनों से किसी प्राणी मात्र को कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। यह निष्क्रियता न होकर सत्य पर डटे रहने की मनोवृत्ति है। उन्होंने अहिंसा को व्यक्तिगत रूप से ऊपर उठाते हुए सार्वजनिक रूप से सत्यापित किया। उनका प्रसिद्ध कथन है कि 'हिंसा पशुओं का नियम है एवं अहिंसा मनुष्यों का। सम्पूर्ण मानव सभ्यता अहिंसा की और अग्रसर है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि मनुष्यों से प्रेम करो वस्तुओं का प्रयोग करो।

सत्य एवं अहिंसा पर आधारित आत्मा के शासन को गाँधी स्वराज कहते हैं। उनके अनुसार स्वराज से अभिप्राय भारत की उस सरकार से है जो स्त्री पुरुष आदि वर्गों में भेद किए बिना वंचित जनता के बहुमत से बनी हो। दार्शनिक दृष्टि से गाँधी आत्मा के शासन और आत्म संयम से निर्मित व्यवस्था को स्वराज मानते हैं। जिसमें व्यक्ति भय के बजाए स्वयं में अनुशासित होता है। जो परिवर्तन दूसरों में देखना चाहते हैं, पहले स्वयं में लाना होगा।

इसे ही रामराज्य कहा जाता है जिसमें एक आदर्श अहिंसक समाज की कल्पना की गई है यह आदर्श समाज विकेन्द्रीकृत होगा क्योंकि केन्द्रीकरण में थोड़े से मनुष्य के हाथ में शक्ति निहित हो जाती है और केन्द्रीय शक्ति के दुरुपयोग की संभावना बनी रहती है। समाज गांव में बने ऐसे समुदायों का हो सकता है जिसमें स्वेच्छा पूर्ण सहयोग, आत्म नियंत्रण एवं अहिंसा का प्रभुत्व हो। भय आधारित राज्य से रहित समाज को दार्शनिक दृष्टि से अराजकतावाद कहा जाता है।

इस रामराज्य या स्वराज की प्राप्ति तभी हो सकती है जब सभी का सभी प्रकार से उदय हो जाए इसे ही सर्वोदय कहा जाता है। सर्वोदय की स्थापना सत्याग्रह के माध्यम से संभव है। अर्थात् सर्वोदय साध्य है और उसकी प्राप्ति का साधन सत्याग्रह है।

सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य का आग्रह, इसमें माना जाता है कि सत्य का सिद्धांत जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू हो सकता है। जिसमें अहिंसात्मक तरीके से व्यवस्था परिवर्तन की बात की जाती है। इसकी प्रमुख तरकीब असहयोग, सविनय अवज्ञा, स्वेच्छा से स्थान त्याग, अनशन एवं हड़ताल है।

अन्याय के साथ असहयोग करना एवं अहिंसात्मक तरीके से अनैतिक नियमों को तोड़ना सत्याग्रह की पहली अवस्था है। अहिंसात्मक तरीके से अपनी रक्षा न कर पाने पर स्थान छोड़ना, अनशन का प्रयोग, अत्याचारी का हृदय परिवर्तन आदि सत्याग्रह के तरीके हैं। अस्थाई या कुछ समय के लिए अपने काम–धंधे बंद करना भी प्रतीकात्मक

प्रतिरोध का स्वरूप है जिसके माध्यम से परिवर्तन संभव होता है।

महात्मा गाँधी समाज में समानता लाने के पक्षधर रहे हैं इसके लिए उन्होंने साम्प्रदायिक एकता, स्त्री–पुरुष समानता, अस्पृश्यता उन्मूलन जैसे कार्यों को महत्व दिया। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हुए वर्णों के मध्य ऊंच–नीच भेद को अस्वीकार किया।

इसी क्रम में, गाँधी जी शिक्षा को आदर्श सामाजिक प्रणाली भी मानते हैं। उनके अनुसार वास्तविक शिक्षा ज्ञान को आचरण में उतारने से संबंधित है जो कि मनुष्य के सामाजिक आर्थिक व मानसिक विकास को विकसित कर सके। उन्होंने अपनी शिक्षा योजना में बुनियादी शिक्षा को महत्व दिया जिसका लक्ष्य विद्यार्थियों के हृदय, बुद्धि व शरीर तीनों का विकास करना है। चरित्ररहित ज्ञान को गाँधी पाप मानते हैं। उनकी शिक्षा पद्धति में स्वावलंबन के साथ अपने स्वाभिमान को मजबूत करना सम्मिलित रहा है।

आर्थिक दर्शन में गाँधी बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण के विरुद्ध रहे। उनका मानना था कि मशीनों का उपयोग मनुष्य को आलसी बना देता है और वह परिश्रम से बचने लगता है। परिश्रम के बिना धनोपार्जन को गाँधी ने पाप तक कहा है। उन्होंने आर्थिक विषमता का समाधान 'ट्रस्टीशिप सिद्धांत' में देखा है। उनके अनुसार सम्पत्ति कभी व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक समाज की हुआ करती है। इसलिए पूंजीपति सम्पत्ति का स्वामी न होकर ट्रस्टी होता है। अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझते हुए उचित धन खर्च करने के बाद शेष सम्पत्ति को समाज के हित में लगाना चाहिए। क्योंकि सदाचार रहित व्यापार पाप होता है।

धार्मिक दृष्टि से महत्मा गाँधी धर्म को कर्तव्य एवं नैतिकता के अर्थ में स्वीकार करते हुए उसे सभी क्षेत्रों में लागू करना चाहते थे। उनके अनुसार धर्म या सिद्धांत के बिना राजनीति पाप है। धर्म सत्य व अहिंसा पर आधारित एक नैतिक जीवन पद्धति है। उनके अनुसार सभी धर्मों को समान मानने से सभी धर्मों का समान आदर करने एवं एक दूसरे धर्मो को सहने (धार्मिक सहिष्णुता) के द्वारा शांतिपूर्ण धार्मिक स्थिति बनाई जा सकती है। त्यागविहीन उपासना निरर्थक है।

वस्तुतः महात्मा गाँधी व्यक्ति तथा समाज के अस्तित्व तथा विकास में नैतिकता को आधार मानते हैं और व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता पर बल देते हैं। विवक रहित सुख को पाप बताते हुए उन्होंने एकादश व्रत. सत्य अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्पृश्यता निवारण, शारीरिक श्रम, अभय, सर्वधर्म समभाव एवं स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को चारित्रिक विकास के लिए अनिवार्य बताया।

साध्य के साथ ही साधन की पवित्रता पर गाँधी जी बल देते हैं। उनके अनुसार पवित्र साध्य के लिए अपवित्र साधनों का प्रयोग नैतिक नहीं है। नैतिक समाज रचना के लिए साध्य व साधन दोनों का पवित्र होना आवश्यक है। मानवता रहित विज्ञान पाप है। उन्होंने पर्यावरण के संबंध में त्यागपूर्ण उपयोग को उचित माना उनका प्रसिद्ध कथन है कि प्रकृति में मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है उसके लालच की पूर्ति की नहीं। उनका मानना था कि जब तक हम स्वयं को नहीं सुधारते तब तक हम दूसरों को नहीं सुधार सकते अर्थात् जो परिवर्तन हम दूसरों में देखना चाहते हैं वह पहले स्वयं में करें।

इस खण्ड में दो इकाइयां हैं। इकाई 1 साध्य साधन सम्बन्धी विचार, इसमें महात्मा गाँधी के साथ ही अन्य दार्शनिकों के चिंतन से परिचित होंगे। इकाई 2 अहिंसा का जीवनादर्श, इसमें अहिंसा संबंधी विभिन्न धारणाओं का अध्ययन कर महात्मा गाँधी की अहिंसा को समझेंगे।

इकाई–1 साध्य–साधन संबंधी विचार

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 साधन–साध्य / दार्शनिक पृष्ठभूमि

1.3 गाँधीजी का दृष्टिकोण

1.4 सत्याग्रह और साध्य–साधन

1.5 आलोचनाएँ और सीमाएँ

1.6 निष्कर्ष

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद विद्यार्थी –

1. साधन और साध्य की दार्शनिक अवधारणा को समझ पाएँगे।
2. गाँधीजी के साधन–साध्य संबंधी विचारों को ऐतिहासिक और दार्शनिक संदर्भों में देख सकेंगे।
3. गाँधीजी के राजनीतिक आंदोलनों और व्यक्तिगत जीवन में इस सिद्धांत की भूमिका का मूल्यांकन कर पाएँगे।
4. आलोचनात्मक दृष्टि से यह विचार करेंगे कि साधन–साध्य का गाँधीवादी प्रतिपादन व्यवहारिक राजनीति में कितना कारगर रहा।
5. समकालीन परिप्रेक्ष्य में इस सिद्धांत की प्रासंगिकता और चुनौतियों पर चिंतन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन में साधन और साध्य का प्रश्न सदैव से एक केंद्रीय समस्या रहा है। मनुष्य जब भी किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहता है, तो स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि उस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए वह कौन–सा मार्ग अपनाए। यदि लक्ष्य महान और पवित्र है, तो क्या उस तक पहुँचने के लिए किसी भी साधन का प्रयोग उचित होगा? अथवा लक्ष्य की पवित्रता तभी सार्थक है जब उसके लिए अपनाए गए साधन भी पवित्र हों? यही वह मूलभूत दार्शनिक प्रश्न है, जिसे "साध्य–साधन संबंध" कहा जाता है।

प्राचीन भारतीय विचारधारा से लेकर आधुनिक राजनीतिक चिंतन तक इस प्रश्न पर गंभीर मंथन होता रहा है। भारतीय शास्त्रों में साधन और साध्य को परस्पर अभिन्न माना गया है। उपनिषदों ने मोक्ष (साध्य) की प्राप्ति के लिए श्रवण, मनन और निदिध्यासन जैसे साधनों पर बल दिया। गीता में भी यह स्पष्ट कहा गया कि मनुष्य को केवल अपने कर्म (साधन) पर अधिकार है, फल (साध्य) पर नहीं। वहीं, जैन और बौद्ध परंपराएँ साधन की शुद्धता के बिना साध्य की प्राप्ति को असंभव मानती हैं। पश्चिमी चिंतन में भी यह प्रश्न उठता है। उदाहरण के लिए, मैकियावेली का विचार था कि "सफलता ही अंतिम कसौटी है, साधनों की नैतिकता गौण है।" इसके विपरीत, कांट जैसे दार्शनिक मानते थे कि मनुष्य को कभी साधन की तरह नहीं, बल्कि साध्य की तरह देखना चाहिए, अर्थात् साधन और साध्य दोनों ही नैतिक दृष्टि से परस्पर संबंधित हैं।

महात्मा गाँधी ने इस शाश्वत दार्शनिक प्रश्न को अपने जीवन और राजनीति का आधार बनाया। उनके लिए साधन और साध्य का संबंध केवल सैद्धांतिक विचार नहीं था, बल्कि एक जीवन–पद्धति थी। वे साध्य और साधन को अविभाज्य मानते हैं। उनका मानना था की साधन साध्य का बीज रूप है। इस प्रकार गाँधीजी ने साधन–साध्य संबंध को भारतीय परंपरा की नैतिकता और पश्चिमी विचारधारा की यथार्थपरकता, दोनों से जोड़ते हुए एक अनूठी व्याख्या

प्रस्तुत की।

उनके लिए स्वराज्य, सत्य, अहिंसा, रामराज्य, सर्वोदयी समाज आदि आदर्श साध्य मात्र नहीं थे, बल्कि उनके लिए प्रयुक्त साधन ही उनका वास्तविक स्वरूप थे। उदाहरणार्थ, स्वतंत्रता का साध्य केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि उसे प्राप्त करने का साधन सत्याग्रह, अहिंसा, असहयोग—ही उस स्वतंत्रता की आत्मा थे। यही कारण है कि गाँधीजी ने बार—बार बल देकर कहा कि यदि हम हिंसा, छल, कपट और असत्य के मार्ग से स्वतंत्रता प्राप्त करेंगे, तो वह स्वतंत्रता वास्तविक नहीं होगी। आज की राजनीति में साधनों की शुद्धता प्रायः उपेक्षित होती है लोग यह मानने लगते हैं कि यदि लक्ष्य प्राप्त हो जाए तो साधन का कोई विशेष महत्व नहीं। परंतु गाँधीजी का दर्शन हमें यह स्मरण कराता है कि साधन और साध्य को अलग नहीं किया जा सकता।

इस इकाई का अध्ययन विद्यार्थियों को न केवल गाँधीजी के साधन—साध्य संबंधी विचारों से परिचित कराएगा, बल्कि उन्हें यह भी समझने का अवसर देगा कि यह विचार भारतीय दार्शनिक परंपरा में कहाँ स्थित है, राजनीति और समाज में इसका व्यावहारिक प्रयोग कैसे हुआ, और आज की परिस्थितियों में इसकी क्या प्रासंगिकता है।

1.2 साधन—साध्य / दार्शनिक पृष्ठभूमि

साध्य (End/Goal) और साधन (Means/Instrument) का संबंध दर्शनशास्त्र की बुनियादी समस्याओं में से एक है। साध्य वह लक्ष्य या उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति मनुष्य करना चाहता है। यह कभी व्यक्तिगत (जैसे ज्ञान, मोक्ष, सुख, धन), तो कभी सामाजिक—राजनीतिक (जैसे न्यायपूर्ण राज्य, स्वतंत्रता, शांति) हो सकता है। साधन वह मार्ग, उपाय, क्रिया या साधनाएँ हैं जिनके द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। ऐसे में दार्शनिक दृष्टि से ये प्रश्न उठते हैं कि क्या लक्ष्य की श्रेष्ठता के लिए साधन की शुद्धता आवश्यक है? क्या अशुद्ध साधनों से भी शुद्ध या महान साध्य की प्राप्ति संभव है? या साधन और साध्य दोनों एक—दूसरे के अभिन्न रूप हैं? ये प्रश्न नैतिकता और राजनीति दोनों क्षेत्रों में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों परम्पराओं में इन प्रश्नों पर गहनता पूर्वक विचार किया गया है।

भारतीय चिंतन में साधन और साध्य का संबंध बहुत गहराई से समझा गया है। यहाँ मान्यता यह रही है कि साध्य तभी सार्थक है जब उसकी प्राप्ति के लिए शुद्ध और उचित साधन अपनाए जाएँ। वेदांत दर्शन में ब्रह्मज्ञान या मोक्ष को परम साध्य माना गया है तथा इसके लिए साधन के रूप में साधन चतुष्टय (विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षुता) बताए गए है। वेदांत दर्शन में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि यदि साधन शुद्ध और सुसंस्कृत नहीं होंगे, तो साध्यकृमोक्ष की प्राप्ति असंभव है। भगवद्गीता साधन—साध्य के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि प्रस्तुत करती है। गीता कहती है।

"कर्मण्येवाधिकारस्त मा फलेषु कदाचन।" (अध्याय 2, श्लोक 47) अर्थात् मनुष्य को केवल साधन अर्थात् कर्म पर ही अधिकार है, साध्य अर्थात् फल पर नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि गीता साध्य के मोह के स्थान पर साधन की पवित्रता और शुद्धता पर बल देती है । जैन धर्म का परम साध्य मोक्ष है। इसकी प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यक ज्ञान और सम्यक्चरित्र अनिवार्य साधन माने गए हैं। जैन आचार्यों ने स्पष्ट किया है कि अशुद्ध साधन से कभी शुद्ध साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बौद्ध दर्शन में निर्वाण (साध्य) की प्राप्ति के लिए अष्टांगिक मार्ग (साधन) बताया गया है। इस मार्ग के प्रत्येक अंग सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म आदि साधनों की शुद्धता पर बल देते हैं। पतंजलि योगसूत्र में कैवल्य (साध्य) की प्राप्ति हेतु अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) को साधन माना गया है। यहाँ भी यम—नियम जैसे नैतिक साधन अनिवार्य हैं। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय चिंतन साधन और साध्य को कभी अलग नहीं करता। साधन की शुद्धता ही साध्य की शुद्धता का कारण है।

भारतीय परंपरा की तुलना में पश्चिमी दर्शन में इस प्रश्न पर भिन्न दृष्टिकोण सामने आते हैं। मैकियावेली की प्रसिद्ध कृति श्द प्रिंस' में यह विचार सामने आता है कि राज्य और सत्ता की रक्षा के लिए साध्य (राजनीतिक सफलता, सत्ता) सर्वोच्च है, और उसके लिए अपनाए गए साधनों की नैतिकता गौण है। उसका कथन थाकृसाध्य साधनों को उचित ठहराता है। राजनीति में छल, कपट, हिंसा, यहाँ तक कि विश्वासघात भी उचित ठहराया जा सकता है, यदि उससे राज्य और सत्ता का संरक्षण होता है। कांट ने नैतिकता को साधन—साध्य के संबंध में प्रमुख

माना। उन्होंने कहा कि मनुष्य को कभी मात्र साधन के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए, बल्कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं में साध्य है। कांट का निरपेक्ष आदेश का सिद्धांत कहता है कि– (1) कार्य वही नैतिक है जिसे हम सार्वभौमिक नियम बना सकें। (2) साधन की नैतिकता अनिवार्य हैय अन्यथा साध्य भी अधूरा और अनैतिक होगा। कांट के ये विचार भारतीय विचारों से मेल खाते हैं। उपयोगितावादी चिन्तक बेंथम के अनुसार साध्य वही श्रेष्ठ है जो अधिकतम लोगों के लिए अधिकतम सुख लाए। यहाँ साधन की महत्ता साध्य की उपयोगिता से आंकी जाती है। इस प्रकार पश्चिमी परंपरा में साधन–साध्य का प्रश्न नैतिकता और राजनीति के द्वंद्व से जुड़ा हुआ हैकृमैकियावेली ने साध्य को प्राथमिक माना, जबकि कांट ने साधन की शुद्धता को अनिवार्य ठहराया **है**।

इस प्रकार भारतीय परंपरा साधन और साध्य परस्पर अभिन्न सम्बन्ध को स्वीकार करती है। जबकि पाश्चात्य परंपरा में इस सम्बन्ध में भिन्न–भिन्न मत प्राप्त होते हैं। मैकियावेली साध्य को ही अंतिम कसौटी मानते हुए साधनों की नैतिकता गौण मानता है।जबकि कांट साधन और साध्य दोनों को नैतिक रूप से जुड़ा हुआ मानते हुए साधनों की शुद्धता आवश्यक मानता है।

गाँधी साधन और साध्य का अटूट संबंध मानते थे। उनका कहना था कि "साधन ही साध्य को जन्म देते हैं।" गाँधीजी का दृष्टिकोण भारतीय परंपरा से प्रेरित है, पर उन्होंने इसे आधुनिक राजनीतिक संघर्ष के स्तर पर लागू किया, जहाँ साधन और साध्य का प्रश्न केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों में भी प्रकट हुआ।

1.3 गाँधीजी का दृष्टिकोण

महात्मा गाँधी का दर्शन मूलतः नैतिकता–आधारित और आदर्श–प्रधान दर्शन है। उनके लिए राजनीति, समाज और व्यक्तिगत जीवन अलग–अलग क्षेत्र नहीं थे, बल्कि एक ही नैतिक जीवन के अंग थे। यही कारण है कि साधन और साध्य का प्रश्न उनके पूरे जीवन–दर्शन का केंद्र बन गया। वे साध्य और साधन को अविभाज्य मानते हैं। गाँधीजी ने स्पष्ट कहा कि "साधन और साध्य में वही संबंध है जो बीज और वृक्ष में है। यदि बीज बबूल का है, तो उसमें से आम का वृक्ष नहीं उग सकता। साधन जैसे होंगे, साध्य भी वैसा ही होगा।" इस कथन से स्पष्ट है कि गाँधीजी साधन और साध्य को कभी अलग–अलग नहीं देखते। उनके लिए साधन और साध्य दोनों परस्पर अभिन्न और एक–दूसरे में अन्तर्निहित हैं। उनका मानना था की साध्य की पवित्रता के लिए साधन की पवित्रता आवश्यक है। हिंद स्वराज्य (1909) में उन्होंने लिखा कि "अच्छे साधन के बिना अच्छा फल कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। अन्यायपूर्ण साधन से न्यायपूर्ण राज्य कभी नहीं बन सकता।" वे साध्य–साधन के अभेद को स्वीकार करते थे। सत्य के प्रयोग में गाँधीजी ने अपने जीवन का वर्णन करते हुए कहा कि "मेरे लिए साधन और साध्य में कोई भेद नहीं है। सत्य ही साध्य है और अहिंसा वह साधन है जिससे उस सत्य तक पहुँचा जा सकता है।" वे साधन की शुचिता के बिना साध्य की प्राप्ति को वरेण्य नहीं मानते थे। उनके अनुसार बिना साधन की शुचिता के प्राप्त साध्य कभी भी सही अर्थों में पूर्ण साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती चाहे वह स्वतंत्रता जैसा परम साध्य ही क्यों न हो। उन्होंने एक स्थान पर कहा है कि "यदि हम स्वतंत्रता को हिंसा और छल के मार्ग से प्राप्त करेंगे तो वह स्वतंत्रता नहीं, बल्कि दासता का ही दूसरा रूप होगी।" इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गाँधीजी साधन और साध्य की एकता पर दृढ़ विश्वास रखते थे।

1.3.1 गाँधीजी के साधन–साध्य संबंधी विचार के प्रमुख बिंदु

गाँधीजी के साधन–साध्य संबंधी विचार निम्नलिखित बिंदुओं में समझे जा सकते हैं।

1.3.1.1 साधन और साध्य की अविभाज्यता

गाँधीजी साधन और साध्य में कोई वास्तविक भेद नहीं मानते थे। उनका विश्वास था की साधन साध्य का मूल है अतः अविभाज्य है। यदि साध्य शुद्ध और महान है, तो उसके लिए अपनाए जाने वाले साधन भी अनिवार्य रूप से शुद्ध और नैतिक होने चाहिए।

1.3.1.2 सत्य और अहिंसा का केंद्रीय स्थान

गाँधीजी के लिए सत्य अंतिम साध्य है तथा अहिंसा वह सर्वोत्तम साधन है, जिसके द्वारा सत्य की प्राप्ति संभव है। सत्य और अहिंसा दोनों उनके लिए साधन और साध्य दोनों ही थे अर्थात् साधन भी, और अंतिम लक्ष्य

भी।

1.3.1.3 नैतिकता और राजनीति का एकीकरण

पश्चिमी राजनीति में यह धारणा प्रचलित थी कि राजनीति नैतिकता से अलग क्षेत्र है। गाँधीजी ने इसे नकारते हुए कहा कि राजनीति से नैतिकता को अलग नहीं किया जा सकता। सत्ता, संघर्ष और संगठन इन सभी क्षेत्रों में साधनों की शुद्धता पर बल देना आवश्यक है।

1.3.1.4 साधन स्वयं साध्य का रूप

गाँधीजी मानते थे कि साधन केवल साध्य की ओर ले जाने का मार्ग नहीं है, बल्कि साधन स्वयं साध्य का ही एक रूप है। उदाहरणार्थ, यदि हमारा साध्य शांतिपूर्ण समाज है, तो उसके लिए साधन भी शांतिपूर्ण होने चाहिए।

गाँधीजी का दृष्टिकोण यह है कि साधन और साध्य अलग नहीं किए जा सकते। साधन की शुद्धता ही साध्य की शुद्धता है। उनके लिए सत्य (साध्य) और अहिंसा (साधन) एक–दूसरे के पूरक हैं। उनका यह विचार राजनीति को केवल सत्ता प्राप्ति का माध्यम न बनाकर एक नैतिक और आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रस्तुत करता है।

1.3.2 गाँधीजी के जीवन और आंदोलनों में साध्य–साधन विचार का अनुप्रयोग

गाँधीजी ने केवल सैद्धांतिक रूप से ही साध्य–साधन का विचार प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि अपने जीवन और आंदोलनों में इसे निरंतर प्रयोग किया। अंग्रेजों से मुक्ति तथा भारत की स्वतन्त्रता जैसे परम साध्य के लिए भी उन्होने साधन के रूप में असहयोग और सविनय अवज्ञा, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, सरकारी पदों का त्याग, ब्रिटिश संस्थाओं से दूरी जैसे अहिंसक साधनों का प्रयोग किया। गाँधीजी का विश्वास था कि भारत की स्वतन्त्रता के संघर्ष में यदि हम हिंसा का सहारा लेंगे तो स्वतंत्रता का लक्ष्य भ्रष्ट हो जाएगा। नमक कानून का अहिंसक उल्लंघन गाँधीजी के इस विश्वास का उदाहरण है कि छोटे से साधन (नमक कानून तोड़ना) से भी बड़े साध्य (जनजागरण और स्वतंत्रता) की ओर बढ़ा जा सकता है, बशर्ते साधन नैतिक और अहिंसक हों।

गाँधीजी ने अपने व्यक्तिगत जीवन में भी ब्रह्मचर्य, संयम, सत्यवादिता, उपवास, स्वदेशी और आत्मसंयम जैसे साधनों को अपनाया। उनका मानना था कि यदि व्यक्ति का जीवन ही शुद्ध साधनों पर आधारित नहीं होगा, तो समाज और राजनीति में भी शुद्धता नहीं आ सकती। यही कारण है की वे प्रत्येक सत्याग्रही को इन साधनों को स्वीकार करना अनिवार्य बताते हैं।

1.4 सत्याग्रह और साध्य–साधन

गाँधीजी के जीवन–दर्शन में सत्य और अहिंसा दो केंद्रीय तत्व हैं। उन्होंने कहा है कि "सत्य मेरा साध्य है और अहिंसा वह साधन है जिससे मैं सत्य तक पहुँच सकता हूँ।" इसी आधार पर उन्होंने अपने राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष का एक नया तरीका विकसित किया, जिसे उन्होंने सत्याग्रह नाम दिया। सत्याग्रह केवल एक राजनीतिक आंदोलन की पद्धति नहीं थी, बल्कि गाँधीजी के लिए यहसाधन और साध्य के अभिन्न संबंध का जीवंत उदाहरण था। गाँधीजी ने सत्याग्रह को परिभाषित करते हुये कहा है कि "सत्याग्रह आत्मबल का प्रयोग है, शारीरिक बल या हिंसा का नहीं। यह प्रेम–बल और आत्मशक्ति का प्रयोग है, जिससे विरोधी का हृदय परिवर्तन किया जाता है, न कि उसे बलपूर्वक झुकाया जाता है।" इस प्रकार सत्याग्रह एक ऐसा साधन है, जिसमें साध्य (सत्य) और साधन (अहिंसा, आत्मबल) दोनों एकाकार हो जाते हैं। गाँधीजी का अंतिम साध्य थासत्य। उनके अनुसार, सत्य ही ईश्वर है। सत्य की खोज ही जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य है। सत्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन है अहिंसा। हिंसा से कभी सत्य की स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि हिंसा स्वयं असत्य पर आधारित है। सत्याग्रह में साध्य और साधन का अभिन्न संबंध दिखाई देता है। यह केवल लक्ष्य–प्राप्ति की विधि नहीं, बल्कि लक्ष्य का ही मूर्त रूप है। गाँधीजी कहते हैं कि "साधन ही साध्य का रूप ले लेते हैं। सत्याग्रह में साधन और साध्य अलग नहीं हैं। अहिंसक साधन अपनाने पर हम उसी क्षण साध्य की प्राप्ति की दिशा में बढ़ जाते हैं।" सत्याग्रह का उद्देश्य शत्रु का विनाश नहीं, बल्कि उसके हृदय का परिवर्तन है। इससे साध्य (न्याय, सत्य) स्थायी और नैतिक रूप में प्राप्त होता है। सत्याग्रही दूसरों पर नहीं, बल्कि स्वयं पर कष्ट लादता है। यह साधन की पवित्रता को प्रमाणित करता है और साध्य की महत्ता को रेखांकित करता है। सत्याग्रह नैतिक बल पर आधारित है। साधन की शुद्धता ही साध्य की श्रेष्ठता

को सुनिश्चित करती है। यदि हमारा लक्ष्य अहिंसक समाज है, तो साधन भी अहिंसक होना चाहिए। हिंसा से प्राप्त साध्य स्थायी नहीं होता केवल अहिंसा ही स्थायी शांति और न्याय ला सकती है। सत्याग्रह में यदि तुरंत सफलता न भी मिले, तो भी वह साध्य की दिशा में समाज को नैतिक रूप से आगे बढ़ा देता है। गाँधीजी मानते थे कि "सत्याग्रह कभी असफल नहीं होता, क्योंकि यह साधन स्वयं ही साध्य का एक रूप है।" इस प्रकार सत्याग्रह में साधन और साध्य में एकरूपता स्थापित होती है।

सत्याग्रह गाँधीजी के साधन–साध्य सिद्धांत का सबसे जीवंत और व्यावहारिक रूप है। गाँधीजी का सत्याग्रह हमें यह सिखाता है कि "साधन ही साध्य का रूप है। यदि साधन शुद्ध और अहिंसक हैं, तो साध्य स्वतः शुद्ध और न्यायपूर्ण होगा।"

1.5 आलोचनाएँ और सीमाएँ

गाँधीजी का साधन–साध्य संबंधी सिद्धांत अपनी नैतिक ऊँचाई और आध्यात्मिक गहराई के कारण अत्यंत प्रेरक और विशिष्ट है। किंतु, किसी भी दर्शन या सिद्धांत की तरह इसके भी कुछ आलोचनात्मक पहलू और व्यावहारिक सीमाएँ हैं। गाँधीजी का यह कथन कि "साधन और साध्य में कोई भेद नहींय जैसे साधन, वैसा ही साध्य", सुनने में जितना सरल लगता है, व्यवहार में उतना ही कठिन सिद्ध होता है। विशेषकर राजनीति और सामाजिक आंदोलनों में इस सिद्धांत को लागू करना कई बार चुनौतीपूर्ण रहा।

कई विद्वानों का मानना है कि गाँधीजी का साधन–साध्य सिद्धांत अत्यधिक आदर्शवादी है। राजनीति का क्षेत्र स्वभावतः संघर्ष, प्रतिस्पर्धा और सत्ता–प्राप्ति से जुड़ा होता है। यहाँ साधनों की शुद्धता बनाए रखना व्यवहार में संभव नहीं। उदाहरणस्वरूप, ब्रिटिश साम्राज्य जैसे हिंसक और सामर्थ्यशाली शत्रु के सामने केवल अहिंसा और सत्याग्रह को हथियार बनाना कई लोगों को अव्यावहारिक प्रतीत हुआ। आलोचक कहते हैं कि गाँधीजी के अहिंसक साधनों से तत्कालिक परिणाम नहीं मिलते। सत्याग्रह लंबा समय लेता है, और कभी–कभी जनता धैर्य खो देती है। बड़ी जनता को एक साथ अहिंसक अनुशासन में बाँधना अत्यंत कठिन है।1922 के चौरी–चौरा कांड में जनता ने हिंसा का सहारा लिया, जिसके कारण गाँधीजी को असहयोग आंदोलन वापस लेना पड़ा। इससे यह स्पष्ट हुआ कि साधन–साध्य सिद्धांत पर जनता को टिकाए रखना व्यवहारिक रूप से कठिन है। जब शत्रु अत्यधिक हिंसक और निर्मम हो, तब अहिंसा के साधन असहाय प्रतीत होते हैं। आलोचकों का कहना है कि यदि ब्रिटिश शासक थोड़े और क्रूर होते, तो केवल अहिंसा से स्वतंत्रता संभव नहीं होती। भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाषचंद्र बोस जैसे क्रांतिकारियों का मत था कि स्वतंत्रता जैसे महान साध्य के लिए क्रांतिकारी और हिंसात्मक साधनों की आवश्यकता है।

गाँधीजी ने इन आलोचनाओं का उत्तर अपने जीवन और विचारों में दिया। गाँधीजी कहते थे कि हिंसा से प्राप्त साध्य कभी स्थायी और नैतिक नहीं हो सकता। यदि स्वतंत्रता हिंसा से प्राप्त हो, तो वह केवल सत्ता परिवर्तन होगी, वास्तविक मुक्ति नहीं। उनके अनुसार, "नैतिक विजय"ही वास्तविक विजय है। यदि साधन नैतिक हैं, तो परिणाम चाहे देर से आए, वह स्थायी और सार्थक होगा। गाँधीजी मानते थे कि साधन–साध्य सिद्धांत से जनता का नैतिक उत्थान होता है। साधन–साध्य कि शुचिता पर आधारित सत्याग्रह केवल राजनीतिक आंदोलन नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और आत्मबल का अभ्यास है। गाँधीजी का तर्क था कि यदि बीज बबूल का है, तो उससे आम का वृक्ष नहीं उग सकता। इसी प्रकार यदि साधन हिंसात्मक और अन्यायपूर्ण हैं, तो उनसे न्यायपूर्ण समाज नहीं बन सकता।

- गाँधीजी का साधन–साध्य सिद्धांत दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत गहरा और नैतिक दृष्टि से ऊँचा है।
- इसकी आलोचनाएँ मुख्यतः व्यावहारिक राजनीति और तत्कालिक परिणामों की दृष्टि से की गईं।
- किन्तु गाँधीजी का उत्तर यह था कि"तात्कालिक परिणाम चाहे जो हों, अंततः केवल शुद्ध साधनों से ही शुद्ध साध्य की प्राप्ति संभव है।" इस प्रकार, यद्यपि इसमें व्यावहारिक सीमाएँ हैं, परंतु यह सिद्धांत मनुष्य और समाज को नैतिक ऊँचाई पर ले जाने वाला अद्वितीय मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है।

1.6 निष्कर्ष

मानव जीवन में साध्य (उद्देश्य) और साधन (उपाय) का प्रश्न शाश्वत है। प्रत्येक युग में मनुष्य ने यह सोचा

है कि क्या केवल साध्य की प्राप्ति ही महत्वपूर्ण है, या उसके लिए अपनाए गए साधन भी उतने ही आवश्यक हैं। गाँधीजी ने इस प्रश्न का स्पष्ट और सुसंगत उत्तर दिया "साधन और साध्य अभिन्न हैं।" उनके अनुसार, साधन और साध्य का संबंध वैसा ही है जैसा बीज और वृक्ष का। यदि बीज दूषित होगा तो वृक्ष स्वस्थ नहीं हो सकता। इसी प्रकार, यदि साधन अनैतिक होंगे तो साध्य शुद्ध नहीं हो सकता।

भारतीय परंपरा में सदैव यह माना गया कि मोक्ष या कल्याण (साध्य) तभी संभव है जब साधन शुद्ध हों। गीता का निष्काम कर्म, बौद्ध धर्म की अष्टांगिक मार्ग की साधना और जैन धर्म का अहिंसक जीवनकृये सब यही प्रतिपादित करते हैं। पाश्चात्य चिंतन में यद्यपि मैकियावेली जैसे विचारक साधन की अपेक्षा साध्य को प्रमुख मानते हैं, परंतु कांट जैसे नैतिक दार्शनिक साधन और साध्य की अभिन्नता पर बल देते हैं। इस प्रकार, गाँधीजी का विचार भारतीय परंपरा से प्रेरित होकर, किंतु आधुनिक संदर्भों में नए रूप में सामने आया।

गाँधीजी ने अपने जीवन और आंदोलनों से यह सिद्ध किया कि राजनीति केवल सत्ता की प्राप्ति का साधन नहीं है, बल्कि यह आत्मिक और नैतिक शुचिता पर आधारित होनी चाहिए। स्वतंत्रता आंदोलन में उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा को साधन बनाया। उन्होंने कहा कि यदि भारत स्वतंत्रता हिंसा और छल से प्राप्त करेगा, तो वह स्वतंत्रता वास्तविक नहीं होगी। उनके लिए साधन ही साध्य को जन्म देते हैं, इसलिए शुद्ध साधन अपनाना ही सर्वोच्च नैतिक कर्तव्य है।

सत्याग्रह गाँधीजी का सबसे बड़ा प्रयोग था, जिसमें साधन–साध्य सिद्धांत पूर्ण रूप से साकार हुआ। इसमें सत्य, आत्मबल, धैर्य और नैतिक साहस को साधन बनाया गया। इसका साध्य केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, जन–जागरण और नैतिक उत्थान भी था। गाँधीजी ने इसे केवल राजनीतिक हथियार नहीं, बल्कि एक सार्वभौमिक जीवन–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया।

निश्चित ही गाँधीजी के विचारों की सीमाएँ भी रहीं। आधुनिक युग में हिंसा और आतंकवाद की कठोर परिस्थितियों में अहिंसा हमेशा व्यावहारिक नहीं मानी जाती। राजनीति में प्रतिस्पर्धा और सत्ता–संघर्ष की कठोर वास्तविकता अक्सर शुद्ध साधनों को कठिन बना देती है। वैश्विक स्तर पर भी कई बार राष्ट्र अपने हितों के लिए साधन–साध्य के नैतिक संबंध की उपेक्षा करते हैं। फिर भी, गाँधीजी का आदर्श एकनैतिक दिशा–सूचक की तरह है, जो हमें सही मार्ग की ओर इंगित करता है।

आज जब विश्व युद्ध, हिंसा, असमानता, भ्रष्टाचार और पर्यावरण संकट जैसी चुनौतियों से जूझ रहा है, गाँधीजी का साधन–साध्य सिद्धांत और भी अधिक प्रासंगिक हो उठता है। लोकतांत्रिक राजनीति में स्वच्छ साधन आवश्यक हैं। सामाजिक न्याय आंदोलनों के लिए अहिंसा ही स्थायी समाधान है। पर्यावरण संकट के समाधान के लिए न्यूनतम उपभोग और सादगीपूर्ण जीवन ही मार्ग है।

इस प्रकार गाँधीजी का विचार केवल इतिहास का हिस्सा नहीं, बल्कि आज भी मार्गदर्शक है।गाँधीजी ने स्वयं कहा था कि "मेरे लिए साधन ही सब कुछ हैं। साधन और साध्य का संबंध ऐसा है जैसे आत्मा और शरीर का। यदि आत्मा शुद्ध है तो शरीर भी स्वस्थ रहेगा।" इस कथन से स्पष्ट होता है कि उनके लिए साध्य कभी भी साधन से अलग नहीं था। स्वतंत्रता, शांति, समानता, या रामराज्य जो भी आदर्श हो, उसकी प्राप्ति तभी सार्थक है जब साधन सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित हों।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गाँधीजी का साधन–साध्य संबंधी सिद्धांत मानव जीवन, समाज और राजनीति को नैतिकता के आधार पर पुनः स्थापित करने का सतत् प्रयास है। यह केवल दार्शनिक विमर्श नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक दर्शन है। आज की जटिल दुनिया में भी यदि हम गाँधीजी के इस सिद्धांत को आत्मसात करें, तो शांति, न्याय और मानवता पर आधारित एक बेहतर समाज की रचना संभव है।

पुनरावलोकन प्रश्न

1. साधन और साध्य की सामान्य परिभाषा लिखिए।
2. गाँधीजी साधन–साध्य संबंध को किस प्रकार देखते थे?
3. गाँधीजी के किसी आंदोलन में साधन–साध्य सिद्धांत के प्रयोग का उदाहरण दीजिए।

4. मैकियावेली और गाँधी के दृष्टिकोण में मुख्य अंतर स्पष्ट कीजिए।

5. समकालीन राजनीति में गाँधीजी के साधन–साध्य सिद्धांत की क्या प्रासंगिकता है?

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गाँधी, एम.के. – हिंद स्वराज्य
2. गाँधी, एम.के. – सत्य के प्रयोग
3. गोखले, गोपालकृष्ण – गाँधी और नैतिक राजनीति
4. डॉ. राधाकृष्णन – भारतीय दर्शन का इतिहास
5. Pyarelal – The Mind of Mahatma Gandhi
6. Bhikhu Parekh – Gandhi's Political Philosophy

इकाई–2 अहिंसा का जीवनादर्श

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अहिंसा की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

2.3 गाँधीजी की अहिंसा की अवधारणा

2.4 सत्याग्रह और अहिंसा

2.5 अहिंसा की आलोचनाएँ और सीमाएँ

2.6 समकालीन प्रासंगिकता

2.7 निष्कर्ष

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी–

1. अहिंसा की दार्शनिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. गाँधीजी की अहिंसा की परिभाषा और इसके व्यवहारिक प्रयोग जान सकेंगे।
3. गाँधीजी के दर्शन की नींव के रूप में अहिंसा और सत्य के संबंध का विश्लेषण कर सकेंगे।
4. समकालीन युग में अहिंसा की आवश्यकता और प्रासंगिकता का वर्णन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता का इतिहास हिंसा और अहिंसा, दोनों ही प्रवृत्तियों का इतिहास है। एक ओर जहाँ युद्ध, संघर्ष, रक्तपात और सत्ता की होड़ ने सभ्यता पर गहरी छाप छोड़ी है, वहीं दूसरी ओर सहअस्तित्व, सहयोग, करुणा और प्रेम की मानवीय प्रवृत्तियों ने उसे दिशा भी प्रदान की है। मानव जाति निरंतर इस द्वंद्व में जीती रही है कि उसकी उन्नति का मार्ग हिंसा से होकर जाता है या अहिंसा से। यही कारण है कि दर्शन, धर्म और राजनीति में 'अहिंसा' की अवधारणा बार–बार चर्चा का विषय बनती रही है।

भारत की आध्यात्मिक और दार्शनिक परंपरा में अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक मूल्य माना गया है। वैदिक ऋचाओं से लेकर उपनिषदों की सूक्ष्म चेतना, जैन और बौद्ध धर्म की करुणा–प्रधान शिक्षाओं और भगवद्गीता के गुणों की सूची तक, अहिंसा को जीवन का अभिन्न हिस्सा बताया गया है। इसी परंपरा को आधुनिक युग में महात्मा गाँधी ने नया स्वरूप दिया और इसे केवल व्यक्तिगत नैतिकता या आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर राजनीतिक संघर्ष का प्रभावी साधन बना दिया।

महात्मा गाँधी का जीवन और उनका दर्शन 20वीं शताब्दी की सबसे बड़ी प्रयोगशाला कहा जा सकता है, जिसमें उन्होंने अहिंसा के विचार को एक जीवंत सामाजिक और राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रमाणित किया। उनके अनुसार, यदि मनुष्य को परम सत्य, परमात्मा या ईश्वर की प्राप्ति करनी है, तो उसका मार्ग अहिंसा ही हो सकता है। इस प्रकार, अहिंसा उनके दर्शन की आत्मा और केंद्रबिंदु थी।

इस इकाई के अंतर्गत हम यह जानेंगे कि गाँधीजी का अहिंसा संबंधी चिंतन किन दार्शनिक जड़ों से जुड़ा है, यह उनके जीवन और संघर्षों में किस प्रकार प्रत्यक्ष हुआ, इसकी सीमाएँ और आलोचनाएँ क्या हैं, तथा आज की वैश्विक और भारतीय परिस्थितियों में इसकी क्या प्रासंगिकता है।

2.2 अहिंसा की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि

अहिंसा का विचार किसी एक युग या एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है। यह मानव सभ्यता के प्रारंभिक चिंतन

से ही जुड़ा हुआ है। जीवन और मृत्यु, हिंसा और करुणा, शक्ति और दया—ये सभी विरोधी भावनाएँ प्राचीन मनुष्य के सामने भी थीं और आधुनिक मनुष्य के सामने भी हैं। लेकिन अहिंसा को एक दार्शनिक और नैतिक सिद्धांत के रूप में विकसित करने की परंपरा विशेष रूप से भारतीय दर्शन और धर्मों में दिखाई देती है।

गाँधीजी का अहिंसा संबंधी चिंतन किसी रिक्त शून्य में उत्पन्न नहीं हुआ था। इसकी जड़ें भारतीय आध्यात्मिक और दार्शनिक परंपराओं में गहराई तक पैठी हुई थीं। साथ ही, उन्होंने इसे पश्चिमी विचारधारा और आधुनिक परिस्थितियों के आलोक में नया रूप दिया। इस भाग में हम अहिंसा की ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझेंगे।

वैदिक और उपनिषदिक परंपरा में जीवन की एकता और समस्त प्राणियों के प्रति करुणा का भाव भी व्यक्त हुआ प्राप्त होता है। ऋग्वेद में "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः" की प्रार्थना मिलती है, जो समस्त प्राणियों के कल्याण की कामना करती है। ईशावास्योपनिषद में "ईशावास्यमिदं सर्वं" का उद्घोष यह बताता है कि सारा जगत परमात्मा से व्याप्त है, अतः किसी भी जीव को हानि पहुँचाना ईश्वर की सत्ता को ठेस पहुँचाना है। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा की एकता का जो सिद्धांत है, उसके आधार पर प्रत्येक प्राणी में आत्मा की उपस्थिति को स्वीकार कर करुणा और अहिंसा का भाव उत्पन्न होता है।

अहिंसा को सर्वोच्च स्थान प्रदान करने का श्रेय सबसे अधिक जैन धर्म को जाता है। "अहिंसा परमो धर्मः" जैन धर्म का मूल सिद्धांत है। महावीर ने कहा कि प्राणी चाहे कितना भी सूक्ष्म क्यों न हो, उसमें जीवन है और उस जीवन की रक्षा करना ही धर्म है। जैन साधु—साध्वी अहिंसा के कठोरतम पालन के लिए प्रसिद्ध हैं—वे चलते समय झाड़ू से भूमि को साफ करते हैं ताकि किसी कीट—पतंगे को भी हानि न हो। जैन धर्म ने अहिंसा को केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग माना। बौद्ध धर्म ने भी अहिंसा को अपने नैतिक और आध्यात्मिक दर्शन का केंद्र बनाया। बुद्ध ने करुणा और मैत्री के आधार पर समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा का मार्ग बताया। अष्टांगिक मार्ग में सम्यक आचरण और सम्यक आजीविका का अर्थ ही है कि मनुष्य दूसरों को कष्ट न दे और हिंसा न करे।बौद्ध धम्म ने अहिंसा को केवल व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि सामाजिक सुधार का आधार बनाया। अशोक के शिलालेखों में भी हिंसा का त्याग और अहिंसा पर बल मिलता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म ने अहिंसा को व्यावहारिक और सामाजिक दोनों रूपों में लागू किया।

भगवद्गीता में अहिंसा को नैतिक गुणों में गिना गया है। अध्याय 16 में जिन 'दैवी सम्पत्तियों' का उल्लेख है, उनमें अहिंसा भी एक है। गीता यह सिखाती है कि जीवन में धर्मपालन करते हुए हिंसा से बचना चाहिए, किंतु यदि धर्मरक्षा हेतु संघर्ष आवश्यक हो तो कर्म से विमुख नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि गीता का दृष्टिकोण गाँधीजी के अहिंसा संबंधी विचारों को गहराई से प्रभावित करता है। गाँधीजी ने गीता को अपना 'आध्यात्मिक ग्रंथ' कहा और उसकी निष्काम कर्म तथा सत्य—अहिंसा की शिक्षा अपने जीवन में अपनाई।

मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन और सूफी परंपरा ने भी अहिंसा, प्रेम और सहिष्णुता का संदेश दिया। कबीर, तुलसी, दादू, गुरु नानक जैसे संतों ने मानव—मानव के बीच भेदभाव और हिंसा का विरोध किया। सूफी संतों ने 'इश्क' और 'मोहब्बत' को सर्वोच्च मानते हुए करुणा और अहिंसा का प्रचार किया। इन आंदोलनों ने सामाजिक और धार्मिक जीवन में सहिष्णुता और अहिंसा की गहरी नींव रखी।

पाश्चात्य चिंतन में भी अहिंसा की धारणा संकेत मिलते हैं। ईसा मसीह का उपदेश—"यदि कोई तुम्हारे गाल पर मारे, तो दूसरा गाल भी आगे कर दो"—अहिंसा की परम पराकाष्ठा का उदाहरण है। टॉलस्टॉय ने अपनी रचना 'द किंगडम ऑफ गॉड इज विदिनयू' में अहिंसा को ईसाई धर्म का मूल बताया और शक्ति के स्थान पर प्रेम का मार्ग सुझाया। रूस के टॉलस्टॉय और अमेरिका के हेनरी डेविड थोरो ने गाँधीजी को गहरा प्रभावित किया। थोरो का नागरिक अवज्ञा गाँधीजी के सत्याग्रह का प्रेरणास्रोत बना।

आधुनिक काल में जब औपनिवेशिक शोषण, औद्योगिकीकरण और हिंसात्मक क्रांतियाँ तेजी से फैल रही थीं, तब गाँधीजी ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं से प्रेरणा लेकर अहिंसा को एक नवीन राजनीतिक दर्शन में रूपांतरित किया। उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक धरोहर— जैन, बौद्ध और गीता के विचारों को आत्मसात किया। पश्चिम से उन्हें टॉलस्टॉय, थोरो और रस्किन की रचनाओं से प्रेरणा मिली। इस सम्मिलन ने उन्हें अहिंसा को केवल नैतिक और धार्मिक आदर्श न मानकर एक सामाजिक—राजनीतिक शक्ति के रूप में देखने की दृष्टि दी। अहिंसा की दार्शनिक पृष्ठभूमि यह स्थापित करती है कि यह केवल हिंसा का अभाव नहीं, बल्कि सक्रिय करुणा और प्रेम है।

यह व्यक्तिगत साधना (जैसे जैन और बौद्ध धर्म) और सामाजिक सुधार (जैसे भक्ति आंदोलन, ईसाई धर्म) दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण है। इसका अंतिम उद्देश्य केवल संघर्ष से बचना नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि और समाज की नैतिक उन्नति है। गाँधीजी ने इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए इसे राजनीतिक संघर्ष का नैतिक हथियार बनाया।

अहिंसा की ऐतिहासिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि से स्पष्ट है कि यह विचार किसी एक धर्म, संस्कृति या युग की देन नहीं, बल्कि मानव सभ्यता की सामूहिक धरोहर है। भारतीय दर्शन ने इसे गहराई से विकसित किया और पश्चिमी चिंतन ने इसे नया व्यावहारिक आयाम दिया। गाँधीजी ने इसी विरासत को अपनाकर 20वीं शताब्दी की राजनीति में एक नई दिशा दी।

2.3 गाँधीजी की अहिंसा की अवधारणा

महात्मा गाँधी का समस्त दर्शन और उनका सार्वजनिक जीवन "अहिंसा" के इर्द–गिर्द घूमता है। यद्यपि अहिंसा का विचार भारत की दार्शनिक और धार्मिक परंपरा में प्राचीनकाल से मौजूद था, किंतु गाँधीजी ने इसे न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन का नैतिक नियम बनाया, बल्कि राजनीतिक और सामाजिक संघर्ष का भी सबसे शक्तिशाली हथियार सिद्ध किया। उनके लिए अहिंसा केवल एक नकारात्मक स्थिति (हिंसा का अभाव) नहीं थी, बल्कि यह प्रेम, करुणा, सत्य और आत्मबल पर आधारित एक सक्रिय और सृजनात्मक शक्ति थी। गाँधीजी ने बार–बार स्पष्ट किया कि अहिंसा का अर्थ केवल यह नहीं कि हम किसी को शारीरिक हानि न पहुँचाएँ। यह एक सक्रिय भावना है, जिसमें हम अपने शत्रु के प्रति भी करुणा और सद्भाव रखते हैं। अहिंसा का अर्थ है– दूसरे की पीड़ा को अपनी पीड़ा मानना और उसकी रक्षा करना। गाँधीजी ने कहा– "अहिंसा एक पूर्ण जीवन–शैली है। यह वाणी, मन और कर्म– तीनों स्तरों पर लागू होती है।" इस दृष्टि से अहिंसा नकारात्मक निषेध नहीं, बल्कि सकारात्मक प्रेम और आत्मीयता है।

गाँधीजी के लिए अहिंसा और सत्य दोनों एक–दूसरे के पूरक थे। उनका प्रसिद्ध सूत्र था–

"सत्य ही ईश्वर है और अहिंसा उसे पाने का साधन।" गाँधीजी मानते थे कि सत्य की खोज का मार्ग अहिंसा से ही होकर जाता है। यदि हम दूसरों को कष्ट पहुँचाकर या हिंसा का सहारा लेकर सत्य की प्राप्ति करना चाहेंगे, तो वह सत्य अपूर्ण और अशुद्ध होगा। अहिंसा वह माध्यम है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपने सत्य की खोज करता है और दूसरों के सत्य का भी सम्मान करता है। इस प्रकार, अहिंसा गाँधीजी के लिए केवल एक साधन नहीं, बल्कि सत्य की प्राप्ति का आवश्यक मार्ग था।

गाँधीजी के लिए अहिंसा केवल व्यक्ति के जीवन की नैतिकता नहीं थी, बल्कि यह समाज और राजनीति के लिए भी उतनी ही आवश्यक थी। व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्ति का चरित्र, उसका आत्मबल और उसकी आत्मिक उन्नति अहिंसा पर आधारित होनी चाहिए। यदि मनुष्य अपने विचार, वाणी और कर्म में हिंसा से मुक्त नहीं है, तो वह आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर सकता। सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर समाज में अन्याय, शोषण और असमानता का अंत हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसात्मक संघर्ष से ही संभव है। राजनीतिक क्रांति अगर हिंसा के आधार पर होगी तो वह केवल सत्ता परिवर्तन होगा, किंतु नैतिक और मानवीय क्रांति केवल अहिंसा से ही संभव है।

गाँधीजी ने कहा कि अहिंसा की वास्तविक शक्ति आत्मबल में निहित है, न कि शारीरिक बल में। आत्मबल का अर्थ है– सत्य और न्याय के लिए कठिनाइयों और कष्टों को सहना, लेकिन प्रतिशोध या हिंसा का सहारा न लेना। यह बल किसी शारीरिक शक्ति या शस्त्र पर नहीं, बल्कि नैतिक विश्वास और आत्मसंयम पर आधारित होता है।हिंसा से हम केवल दूसरे को परास्त कर सकते हैं, किंतु अहिंसा से हम उसके हृदय को जीत सकते हैं। गाँधीजी का यह दृष्टिकोण बाद में "सत्याग्रह" के रूप में विकसित हुआ।

गाँधीजी की अहिंसा की जड़ प्रेम में है। उनके अनुसार, अहिंसा का आधार भय नहीं, बल्कि प्रेम है। सच्ची अहिंसा तभी संभव है जब हम शत्रु से भी उतना ही प्रेम करें जितना अपने निकटवर्ती से करते हैं। उन्होंने कहा कि यदि हम किसी से घृणा करते हैं, तो अहिंसा अधूरी है। यहाँ उनका दृष्टिकोण ईसा मसीह और बुद्ध की करुणा से मेल खाता है, जहाँ शत्रु के प्रति भी प्रेम की शिक्षा दी जाती है।

अहिंसा का अर्थ कायरता या पलायन नहीं है। इसके लिए निडरता और साहस की आवश्यकता होती है, क्योंकि हिंसा का सहारा लेना आसान है, किंतु हिंसा का प्रतिकार न करते हुए सत्य और न्याय के लिए कष्ट सहना

बहुत कठिन है। गाँधीजी ने कहा– "कायरता और अहिंसा साथ–साथ नहीं चल सकते।" अहिंसा का पालन वही कर सकता है, जो निर्भीक हो और आत्मबल में विश्वास रखता हो।

गाँधीजी की अहिंसा का अर्थ यह नहीं था कि व्यक्ति अन्याय या शोषण को सहन करे। वे मानते थे कि अन्याय का प्रतिरोध आवश्यक है, किंतु यह प्रतिरोध हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसक साधनों से होना चाहिए। उन्होंने कहा कि यदि अन्याय को सहन किया जाए तो यह भी हिंसा का ही रूप है, क्योंकि इससे अन्याय को बढ़ावा मिलता है। अतः अहिंसा का अर्थ निष्क्रियता नहीं, बल्कि सक्रिय संघर्ष है– जो आत्मबल और नैतिक शक्ति पर आधारित है।

गाँधीजी का विचार था कि साधन और साध्य दोनों समान रूप से पवित्र होने चाहिए। यदि हमारा लक्ष्य (साध्य) शुद्ध है, तो उसे प्राप्त करने के साधन (अहिंसा) भी शुद्ध होने चाहिए। हिंसक साधनों से प्राप्त लक्ष्य स्थायी और नैतिक नहीं हो सकता। इसलिए मानना था कि "अहिंसा केवल साधन नहीं, बल्कि वही साध्य है, क्योंकि शुद्ध साधन ही शुद्ध साध्य की ओर ले जाते हैं।"

गाँधीजी की अहिंसा किसी एक धर्म तक सीमित नहीं थी। वे मानते थे कि अहिंसा एक सार्वभौमिक मूल्य है, जो सभी धर्मों और संस्कृतियों में मौजूद है। उन्होंने जैन, बौद्ध, ईसाई और इस्लाम सभी परंपराओं से प्रेरणा ली और अहिंसा को एक वैश्विक नैतिक नियम के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, "अहिंसा धर्मों के परे एक शाश्वत सत्य है।"

गाँधीजी ने अहिंसा को तीन स्तरों पर परिभाषित किया।

1. **मनसा (विचारों में अहिंसा)** – किसी के प्रति बुरा न सोचना।
2. **वाचा (वाणी में अहिंसा)** – किसी के प्रति कटु या आहत करने वाले शब्द न बोलना।
3. **कर्मणा (कर्म में अहिंसा)** – किसी को शारीरिक या मानसिक रूप से चोट न पहुँचाना।

उनके अनुसार, यदि अहिंसा केवल बाहरी व्यवहार में है लेकिन मन में घृणा या द्वेष है, तो वह पूर्ण अहिंसा नहीं है। वास्तविक अहिंसा वही है जो मानसा–वाचा–कर्मणा हो।

इस प्रकार, गाँधीजी की अहिंसा की अवधारणा एक समग्र जीवन–दर्शन है। यह केवल व्यक्तिगत साधना नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और राजनीतिक मुक्ति का भी आधार है। इसमें सत्य और अहिंसा का अभिन्न संबंध है। यह कायरता नहीं, बल्कि निर्भीकता और आत्मबल का प्रतीक है। यह शत्रु को परास्त करने की नहीं, बल्कि उसके हृदय को जीतने की प्रक्रिया है। यह निष्क्रिय सहनशीलता नहीं, बल्कि सक्रिय संघर्ष और प्रेम की शक्ति है। गाँधीजी ने अहिंसा को इस प्रकार परिभाषित किया कि वह न केवल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का आधार बनी, बल्कि समस्त विश्व को एक नया नैतिक और राजनीतिक विकल्प भी प्रदान कर सकी।

महात्मा गाँधी केवल एक चिंतक या दार्शनिक ही नहीं थे, बल्कि वे ऐसे महापुरुष थे जिन्होंने अपने विचारों को व्यवहार में उतारा और जीवन का अंग बनाया। अहिंसा उनके जीवन का केंद्रीय सिद्धांत था। उन्होंने इसे केवल व्यक्तिगत आचरण तक सीमित नहीं रखा, बल्कि समाज, राजनीति और राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में इसे एक प्रभावी साधन के रूप में प्रयोग किया। यही कारण है कि गाँधीजी का जीवन "अहिंसा का प्रयोगशाला" कहा जाता है।

2.4 सत्याग्रह और अहिंसा

महात्मा गाँधी के समस्त राजनीतिक और सामाजिक जीवन का केंद्रबिंदु दो ही प्रमुख सिद्धांत थे– सत्य और अहिंसा। गाँधीजी ने दोनों को अविभाज्य माना। उनके लिए सत्य की खोज और उसकी स्थापना ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य था, और अहिंसा इस लक्ष्य तक पहुँचने का एकमात्र साधन। इसी कारण गाँधीजी ने अपने संघर्ष को नाम दिया– "सत्याग्रह", अर्थात् सत्य के लिए आग्रह या सत्य की शक्ति। सत्याग्रह गाँधीजी का मौलिक योगदान है। यद्यपि इसमें भारतीय आध्यात्मिक परंपरा (उपनिषद, बौद्ध–जैन धर्म, गीता) और पश्चिमी विचारधाराओं (टॉल्स्टॉय, रस्किन, थोरो) का गहरा प्रभाव था, लेकिन इसे एक सुसंगठित राजनीतिक आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाने का कार्य गाँधीजी ने ही किया।

गाँधीजी के अनुसार, "सत्याग्रह" का अर्थ है– सत्य के प्रति आग्रह, सत्य के लिए दृढ़ निष्ठा और सत्य की

शक्ति से अन्याय का प्रतिकार। उन्होंने इसे नकारात्मक प्रतिरोध नहीं, बल्कि एक सकारात्मक, सक्रिय और रचनात्मक शक्ति माना।

गाँधीजी के अनुसार, सत्याग्रह की आत्मा ही अहिंसा है। सत्याग्रही के लिए यह अनिवार्य है कि वह किसी प्रकार की हिंसा का प्रयोग न करे। यदि वह हिंसक होगा, तो उसका आग्रह स्वार्थपूर्ण या प्रतिशोधपरक हो जाएगा, जो सत्याग्रह नहीं, मात्र विरोध बनकर रह जाएगा। गाँधीजी ने कहा–

"सत्य की खोज अहिंसा के बिना असंभव है।" इसका अर्थ है कि सत्याग्रह में सत्य की स्थापना का मार्ग केवल अहिंसक साधनों से ही संभव है। अहिंसा सत्याग्रह का नैतिक आधार है। यदि सत्याग्रह हिंसा से दूषित हो जाए, तो उसकी नैतिक शक्ति समाप्त हो जाएगी। सत्याग्रह बल का नहीं, आत्मबल का प्रयोग है। यह शारीरिक हिंसा से शत्रु को पराजित करने का प्रयास नहीं करता, बल्कि अहिंसात्मक आत्मबल से उसके हृदय परिवर्तन का प्रयास करता है।

गाँधीजी ने सत्याग्रह के लिए कुछ आवश्यक शर्तें और सिद्धांत निर्धारित किए। ये सब अहिंसा से गहराई से जुड़े हुए हैं–

1. **अहिंसा का पालन**– सत्याग्रही को किसी भी परिस्थिति में हिंसा का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
2. **सत्य के प्रति निष्ठा**– उसका उद्देश्य स्वार्थ या शक्ति प्राप्ति नहीं, बल्कि सत्य की रक्षा होना चाहिए।
3. **आत्मबल का प्रयोग**– सत्याग्रही को शारीरिक बल या हथियारों पर नहीं, बल्कि अपने नैतिक बल और धैर्य पर विश्वास रखना चाहिए।
4. **त्याग और आत्मसंयम**– सत्याग्रही को जेल जाना पड़े, कष्ट सहना पड़े या संपत्ति का नुकसान उठाना पड़े– वह सहर्ष स्वीकार करना चाहिए।
5. **शत्रु के प्रति भी प्रेम**– विरोधी को शत्रु नहीं, बल्कि भटके हुए भाई के रूप में देखना चाहिए। उसका उद्देश्य उसे नष्ट करना नहीं, बल्कि उसका हृदय परिवर्तन करना है।

सत्याग्रह को अहिंसा पर आधारित कर गाँधीजी ने इसे मात्र एक राजनीतिक आंदोलन से बढ़ा कर एक नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया।

सत्याग्रह और अहिंसा गाँधीजी के दर्शन के दो पहलू हैं, जो एक–दूसरे के बिना अधूरे हैं। सत्याग्रह वह व्यावहारिक रूप है, जिसमें अहिंसा का सैद्धांतिक आदर्श जीवन और समाज में मूर्त होता है। यह केवल विरोध का साधन नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, हृदय परिवर्तन और न्याय की स्थापना का मार्ग है। सत्याग्रह के माध्यम से गाँधीजी ने सिद्ध किया कि अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचरण का विषय नहीं, बल्कि यह राजनीतिक संघर्ष में भी उतनी ही प्रभावशाली हो सकती है।

2.5 अहिंसा की आलोचनाएँ और सीमाएँ

गाँधीजी ने अहिंसा को केवल एक नैतिक मूल्य नहीं, बल्कि जीवन का सर्वोच्च नियम माना। उनके लिए यह मात्र साधन नहीं, बल्कि साध्य भी था। उन्होंने इसे व्यक्तिगत आचरण, सामाजिक संबंध, धार्मिक सहिष्णुता और राजनीतिक संघर्ष– सभी में लागू किया।

परंतु जिस प्रकार हर दार्शनिक अवधारणा के अपने समर्थक और आलोचक होते हैं, उसी प्रकार गाँधीजी की अहिंसा को भी अनेक स्तरों पर आलोचना का सामना करना पड़ा। कुछ आलोचनाएँ व्यावहारिकता के आधार पर थीं, तो कुछ दार्शनिक तर्कों पर आधारित थीं। साथ ही, आधुनिक जटिल परिस्थितियों ने भी यह प्रश्न खड़ा किया कि अहिंसा सर्वत्र समान रूप से प्रभावी और कारगर हो सकती है या नहीं।

दार्शनिक आलोचकों के अनुसार, मानव स्वभाव पूर्णतः शांतिप्रिय नहीं है। उसमें आक्रामकता, भय, स्वार्थ और हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान हैं। अहिंसा का आदर्श मानवीय प्रकृति के इस 'यथार्थ' को अनदेखा करता है। कुछ दार्शनिकों ने प्रश्न उठाया कि यदि सत्य की रक्षा के लिए हिंसा अपरिहार्य हो जाए, तो क्या अहिंसा को सर्वोच्च माना जा सकता है? उदाहरणतः– यदि किसी निर्दोष की रक्षा के लिए बल प्रयोग आवश्यक हो, तो क्या हिंसा भी

नैतिक हो सकती है? गाँधीजी ने अहिंसा को एक निरपेक्ष नैतिक मूल्य माना। लेकिन आलोचक कहते हैं कि नैतिकता सापेक्ष होती है, परिस्थितियों और समय के अनुसार बदलती है। इसलिए हर स्थिति में अहिंसा का पालन संभव नहीं।

राजनीतिक आलोचको अहिंसा को राजनीतिक संघर्ष में "धीमा" और "लंबे समय तक परिणाम देने वाला" माना। कई क्रांतिकारी नेताओं का मत था कि अंग्रेज जैसे साम्राज्यवादी और शोषक शासन पर केवल अहिंसा से विजय संभव नहीं थी। आलोचकों का कहना था कि अहिंसा तभी प्रभावी होती है जब शासक में कुछ नैतिक संवेदनशीलता हो। नाजी जर्मनी, फासीवादी इटली या स्टालिनवादी शासन जैसे क्रूर और असंवेदनशील शासकों के सामने अहिंसा कितनी कारगर हो सकती है, यह प्रश्न अब भी बहस का विषय है। आलोचना यह भी हुई कि अहिंसा की राह अपनाने से कभी–कभी अत्याचारी शासक केवल सतही रियायतें दे देते हैं, वास्तविक परिवर्तन नहीं। परिणामतः आंदोलन अधूरा रह जाता है।

अहिंसा के सिद्धान्त की कुछ व्यावहारिक आलोचनाए भी हैं। जैसे की बड़े पैमाने पर आंदोलन में सबको अहिंसा के कठोर अनुशासन का पालन कराना कठिन होता है। उदाहरण– 1922 का चौरी–चौरा कांड, जहाँ हिंसा होने पर गाँधीजी को असहयोग आंदोलन वापस लेना पड़ा। अहिंसा का पालन करने के लिए सत्याग्रही से अत्यधिक त्याग, धैर्य और आत्मसंयम की अपेक्षा की जाती है। आलोचकों का कहना है कि यह साधारण जनता के लिए व्यावहारिक रूप से कठिन है। अहिंसा की नीति आंतरिक संघर्ष में तो कारगर हो सकती है, परंतु बाहरी आक्रमण या युद्ध की स्थिति में इसकी व्यवहारिकता संदिग्ध हो जाती है। उदाहरणतः– यदि कोई राष्ट्र पर हमला करे, तो क्या राष्ट्र को अहिंसक रहकर आत्मसमर्पण कर देना चाहिए?

गाँधीजी ने इन आलोचनाओं को स्वीकार किया, परंतु उन्होंने अपने तर्कों से अहिंसा का महत्व स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि अहिंसा "कमजोरों का हथियार" नहीं, बल्कि "सबसे बड़े साहस" का प्रतीक है। हिंसा से शत्रु का विनाश होता है, पर अहिंसा से उसका हृदय परिवर्तन होता है। अहिंसा का परिणाम भले ही देर से मिले, पर वह स्थायी और नैतिक होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रश्न पर गाँधीजी का उत्तर था– "राष्ट्र को हिंसा से नहीं, अहिंसा से अधिक सुरक्षा मिल सकती है, क्योंकि हिंसा हिंसा को जन्म देती है, जबकि अहिंसा स्थायी शांति लाती है।"

अहिंसा के प्रति आलोचनाएँ और उसकी सीमाएँ निश्चित रूप से गंभीर और प्रासंगिक हैं। यह सत्य है कि हर परिस्थिति में अहिंसा का पालन सरल और व्यावहारिक नहीं है। किंतु यह भी उतना ही सत्य है कि अहिंसा ने विश्व को नैतिक राजनीति और मानवीय संबंधों की एक नई दिशा दी। गाँधीजी की अहिंसा कोई निष्क्रिय या पलायनवादी नीति नहीं थी, बल्कि यह साहस, त्याग, धैर्य और आत्मबल का मार्ग था। इसकी आलोचनाएँ हमें इसकी सीमाओं का बोध कराती हैं, किंतु इसकी नैतिक शक्ति को नकार नहीं सकतीं।

2.6 समकालीन प्रासंगिकता

गाँधीजी के अहिंसा संबंधी विचार केवल 20वीं शताब्दी के स्वतंत्रता संग्राम तक सीमित नहीं हैं। वे आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उनके जीवनकाल में थे। अहिंसा का दर्शन एक ऐसा सार्वभौमिक मूल्य है, जो समय, स्थान और परिस्थिति से परे जाकर मानवता को शांति, न्याय और सहअस्तित्व का मार्ग दिखाता है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जहाँ हिंसा, आतंकवाद, युद्ध, जातीय संघर्ष, धार्मिक कट्टरता, आर्थिक विषमता और पर्यावरण संकट जैसी समस्याएँ सामने हैं, वहाँ गाँधीजी की अहिंसा एक जीवनदर्शन के रूप में अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

2.6.1 व्यक्तिगत जीवन में प्रासंगिकता

आधुनिक युग में व्यक्ति मानसिक तनाव, अवसाद और असंतोष से ग्रस्त है। अहिंसा का अभ्यास न केवल बाहरी व्यवहार में, बल्कि विचारों और भावनाओं में भी किया जा सकता है। यह आंतरिक शांति और संतुलन प्रदान करता है। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में हिंसा, क्रोध और आक्रामकता बढ़ रही है। अहिंसा के सिद्धांत करुणा, सहानुभूति और संवाद पर आधारित संबंधों को प्रोत्साहित करते हैं। गाँधीजी ने कहा था कि अहिंसा "कमजोरों का हथियार नहीं" बल्कि "बलवान का धर्म" है। आज के युवा यदि इसे अपनाएँ, तो उनमें आत्मबल, आत्मसंयम और नैतिकता का विकास संभव है।

2.6.2 सामाजिक जीवन में प्रासंगिकता

आज समाज धार्मिक और सांप्रदायिक तनाव से जूझ रहा है। गाँधीजी का विचार था कि "अहिंसा का वास्तविक अर्थ है सभी धर्मों और संप्रदायों के प्रति सम्मान।" यदि यह मूल्य अपनाया जाए तो सामाजिक सद्भाव को पुनः स्थापित किया जा सकता है। अहिंसा केवल शारीरिक हिंसा का निषेध नहीं, बल्कि अन्याय और शोषण का प्रतिरोध भी है। यह दृष्टिकोण आज जातिगत असमानता, लैंगिक भेदभाव और सामाजिक विषमता को समाप्त करने में सहायक हो सकता है। दलित आंदोलन, महिला आंदोलन, पर्यावरण आंदोलन और मानवाधिकार आंदोलन जैसे संघर्ष यदि अहिंसा और सत्याग्रह की राह पर चलें, तो वे व्यापक जनसमर्थन और स्थायी परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।

2.6.3 राजनीतिक जीवन में प्रासंगिकता

आज लोकतांत्रिक राजनीति हिंसा, भ्रष्टाचार और सत्ता–लिप्सा से प्रभावित है। गाँधीजी का अहिंसात्मक दृष्टिकोण राजनीति को सेवा, सत्य और जनकल्याण पर केंद्रित करने का संदेश देता है। वर्तमान युग में अनेक देशों में नागरिक संघर्ष हो रहे हैं। गाँधीजी का सत्याग्रह और अहिंसा उन संघर्षों को हिंसक टकराव से बचाकर शांतिपूर्ण जन–आंदोलन में बदलने की क्षमता रखता है। गाँधीजी की अहिंसा से प्रेरणा लेकर मार्टिन लूथर किंग जूनियर (अमेरिका) और नेल्सन मंडेला (दक्षिण अफ्रीका) ने अपने आंदोलनों को सफल बनाया। आज भी यह विश्व राजनीति में न्यायसंगत नेतृत्व का मार्गदर्शक है।

2.6.4 वैश्विक स्तर पर प्रासंगिकता

21वीं सदी में युद्ध और आतंकवाद वैश्विक शांति के लिए सबसे बड़ी बाधा हैं। गाँधीजी का अहिंसा दर्शन इस चुनौती का समाधान संवाद, धैर्य और परस्पर सम्मान में देखता है, न कि प्रतिहिंसा और प्रतिशोध में। आज राष्ट्र अपने हितों के लिए प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं। यदि अहिंसा और सहयोग का दृष्टिकोण अपनाया जाए तो विश्व में परस्पर सहयोग, संयुक्त विकास और स्थायी शांति की स्थापना संभव है। गाँधीजी की अहिंसा ने वैश्विक 'न्यूक्लियर डिसआर्मामेंट मूवमेंट' (परमाणु निरस्त्रीकरण आंदोलन) को भी प्रेरणा दी है। आज भी उनकी विचारधारा शांति आंदोलनों का आधार है।

2.6.5 आर्थिक और पर्यावरणीय संदर्भ में प्रासंगिकता

आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था में शोषण, लालच और हिंसा निहित हैं। गाँधीजी की 'ट्रस्टीशिप' की अवधारणा अहिंसा पर आधारित आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करती है, जहाँ संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए हो। आज जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय विनाश मानवता के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। गाँधीजी का सादगीपूर्ण जीवन, न्यूनतम उपभोग और प्रकृति के प्रति अहिंसक दृष्टिकोण इस संकट का स्थायी समाधान प्रस्तुत करता है। गाँधीजी की अहिंसा पर आधारित जीवनशैली आधुनिक विकास को पर्यावरण–सम्मत, संतुलित और मानवीय बनाने में सहायक हो सकती है।

2.6.6 शिक्षा और युवा पीढ़ी में प्रासंगिकता

शिक्षा यदि अहिंसा, सत्य और करुणा के मूल्यों पर आधारित हो, तो वह केवल नौकरी पाने का साधन न रहकर चरित्र निर्माण और समाज निर्माण का साधन बन सकती है। आज की युवा पीढ़ी में आक्रोश और असंतोष अधिक है। यदि उनके आंदोलनों को अहिंसक मार्ग पर चलाया जाए तो वे समाज में रचनात्मक परिवर्तन ला सकते हैं।

गाँधीजी की अहिंसा कोई बीते युग की विरासत नहीं, बल्कि आज के अशांत और हिंसक समय के लिए एक जीवंत समाधान है। यह व्यक्ति को आत्मबल और आत्मशांति देती है। यह समाज में सौहार्द्र, समानता और न्याय स्थापित करती है। यह राजनीति को नैतिकता और सेवा से जोड़ती है। यह वैश्विक स्तर पर शांति और सहयोग की संस्कृति का आधार बन सकती है। यह पर्यावरण और अर्थव्यवस्था को मानवीय और संतुलित दृष्टिकोण देती है।

2.7 निष्कर्ष

अहिंसा भारतीय संस्कृति और दर्शन की आत्मा है, और महात्मा गाँधी ने इसे आधुनिक युग की राजनीतिक,

सामाजिक और आध्यात्मिक चेतना का केंद्र बना दिया। गाँधीजी से पहले अहिंसा को मुख्यतः एक व्यक्तिगत सद्गुण, धार्मिक मूल्य और नैतिक अनुशासन के रूप में देखा जाता था। किंतु गाँधीजी ने इसे सत्य से अभिन्न रूप में जोड़कर मानवता को एक ऐसा सक्रिय, रचनात्मक और सार्वभौमिक जीवन–दर्शन प्रदान किया, जिसने न केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम को नया आयाम दिया, बल्कि पूरी दुनिया में अन्याय, शोषण और हिंसा के विरुद्ध संघर्षों को नई दिशा दी।

गाँधीजी ने यह प्रतिपादित किया कि अहिंसा कोई नकारात्मक शक्ति नहीं, बल्कि एक सकारात्मक और सृजनात्मक ऊर्जा है। यह कमजोरों का हथियार नहीं, बल्कि साहसियों का धर्म है। इसका आधार केवल शारीरिक हिंसा से परहेज करना नहीं, बल्कि विचारों, वाणी और कर्म में सत्य, करुणा और प्रेम का विकास करना है।

उनके लिए अहिंसा और सत्य दो पहलू थे– जैसे बीज और वृक्ष। सत्य ईश्वर के समान है और अहिंसा उसे पाने का मार्ग। इसीलिए उन्होंने कहा था कि "सत्य ही ईश्वर है और अहिंसा उसकी साधना।"

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में गाँधीजी ने अहिंसा को केवल सैद्धांतिक स्तर पर नहीं रखा, बल्कि व्यावहारिक स्तर पर उसका प्रयोग करके दिखाया। चंपारण सत्याग्रह से लेकर नमक आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन तक, अहिंसा ने यह प्रमाणित किया कि बिना हथियार, बिना हिंसा और बिना प्रतिशोध की भावना के भी जनता साम्राज्यवाद जैसे सशक्त तंत्र को चुनौती दे सकती है। यह इतिहास की सबसे बड़ी प्रयोगशाला थी, जिसने पूरी दुनिया को चकित कर दिया।

गाँधीजी की अहिंसा ने विश्वभर में स्वतंत्रता और समानता के आंदोलनों को दिशा दी। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अमेरिका में अश्वेतों के नागरिक अधिकारों के लिए इसे अपनाया, नेल्सन मंडेला ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध इसका प्रयोग किया। आज भी शांति, मानवाधिकार, महिला अधिकार, पर्यावरण और न्याय के लिए चल रहे अनेक वैश्विक आंदोलन गाँधीजी की अहिंसा से प्रेरणा लेते हैं।

यद्यपि गाँधी के अहिंसा सिद्धान्त की आलोचनाएँ भी हुईं– कुछ लोगों ने इसे अव्यावहारिक, आदर्शवादी और केवल विशेष परिस्थितियों में संभव माना। कई आलोचकों ने कहा कि अत्यधिक हिंसक या असंवेदनशील शत्रु के सामने अहिंसा कारगर नहीं होती। किंतु यह तथ्य भी उतना ही सत्य है कि अहिंसा ने मानवता को हिंसा और युद्ध के विनाशकारी मार्ग से बचाने के विकल्प के रूप में नई आशा दी।

आज का समय, जिसमें आतंकवाद, युद्ध, धार्मिक कट्टरता, जातीय हिंसा, राजनीतिक असहिष्णुता, पूंजीवादी शोषण और पर्यावरण संकट जैसी समस्याएँ विद्यमान हैं, वहाँ गाँधीजी की अहिंसा और भी प्रासंगिक हो उठती है। अहिंसा हमें यह सिखाती है कि संघर्ष हो, तो वह शांति और संवाद से हो। राजनीति हो, तो वह सेवा और सत्य पर आधारित हो। समाज हो, तो वह करुणा, समानता और सहअस्तित्व पर टिका हो। विकास हो, तो वह प्रकृति और मानवता दोनों के संतुलन में हो।

अतः कहा जा सकता है कि गाँधीजी का अहिंसा–दर्शन केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम की रणनीति नहीं, बल्कि यह एक कालजयी जीवन–दर्शन है। यह दर्शन हमें यह याद दिलाता है कि हिंसा चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न प्रतीत हो, अंततः उसकी हार होती है और सत्य व अहिंसा की विजय होती है।

निष्कर्षतः, गाँधीजी की अहिंसा मानवता की नैतिक चेतना को जगाती है। व्यक्ति को आत्मबल और समाज को न्याय प्रदान करती है। राजनीति को शुचिता और विश्व को शांति का मार्ग दिखाती है और आज भी एक प्रकाशस्तंभ की भाँति अंधकारमय परिस्थितियों में नई दिशा प्रदान करती है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि यदि मानवता को अपने भविष्य को सुरक्षित, शांतिपूर्ण और न्यायपूर्ण बनाना है, तो उसे गाँधीजी की अहिंसा को आत्मसात करना होगा। यही उनकी सबसे बड़ी देन है और यही उनके दर्शन का शाश्वत संदेश है।

पुनरावलोकन प्रश्न

1. अहिंसा की परिभाषा गाँधीजी के विचारों के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
2. भारतीय दार्शनिक परंपरा में अहिंसा की पृष्ठभूमि का विवेचन कीजिए।
3. जैन, बौद्ध और गीता परंपरा में अहिंसा की अवधारणा की तुलना कीजिए।

4. गाँधीजी के जीवन में अहिंसा के व्यावहारिक प्रयोगों का वर्णन कीजिए।
5. सत्य और अहिंसा का परस्पर संबंध समझाइए।
6. गाँधीजी के सत्याग्रह आंदोलन में अहिंसा की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।
7. अहिंसा संबंधी गाँधीजी के विचारों पर की गई आलोचनाओं और उनकी सीमाओं पर चर्चा कीजिए।
8. समकालीन समय में गाँधीजी की अहिंसा की प्रासंगिकता का विश्लेषण कीजिए।
9. गाँधीजी और टॉल्स्टॉय की अहिंसा संबंधी धारणाओं की तुलना कीजिए।
10. आपके अनुसार, 21वीं सदी की चुनौतियों (आतंकवाद, साम्प्रदायिकता, पर्यावरण संकट) के समाधान। में गाँधीजी की अहिंसा किस प्रकार उपयोगी हो सकती है?

संदर्भ

1. गाँधी, मोहनदास करमचंद। सत्य के प्रयोग (The Story of My EÛperiments with Truth)।
2. गाँधी, मोहनदास करमचंद। हिंद स्वराज्य.
3. Collected Works of Mahatma Gandhi (100 Vols-) Publications Division] Govt. of India.
4. कृष्णकुमार। गाँधी और उनका दर्शन।
5. आर.आर. दिवाकर। गाँधीजी का धर्म और दर्शन।
6. रामचंद्र गुहा। गाँधी– द इयर्स दैट चेंज्ड द वर्ल्ड।
7. भिक्खु पारेख। गाँधी का राजनीतिक दर्शन।
8. राजमोहन गाँधी। गाँधी– द मैन, हिज पीपल, एंड द एम्पायर।
9. टॉल्स्टॉय, लियो। The Kingdom of God is Within You.
10. आइन्स्टीन, अल्बर्ट। On Gandhi's Nonviolence.
11. अरुण शौरी। Does Gandhi Still Have Answers.
12. अग्रवाल, रामचंद्र। गाँधीवाद और भारतीय राजनीति।
13. रघुनंदन शर्मा। महात्मा गाँधी : दर्शन और विचार।
14. विश्वनाथ त्रिपाठी। अहिंसा और गाँधी का दर्शन।

खण्ड–2 सत्याग्रह की परिकल्पना

खण्ड परिचय

गाँधी का सत्याग्रह उनके जीवन और विचारों का मूल सिद्धांत था। यह केवल एक राजनीतिक आन्दोलन नहीं था, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति का प्रतीक था। "सत्याग्रह" शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है "सत्य" और "आग्रह"। इसका अर्थ है सत्य के लिए दृढ़ता से आग्रह करना या सत्य पर अडिग रहना। महात्मा गाँधी के अनुसार "सत्याग्रह का अर्थ है। अहिंसक तरीके से सत्य के लिए संघर्ष करना।" अर्थात, किसी अन्याय, अत्याचार या असत्य के विरुद्ध हिंसा का प्रयोग किए बिना, सत्य, प्रेम और आत्मबल के माध्यम से प्रतिरोध करना। सत्याग्रह का आधार सत्य है। गाँधी मानते थे कि सत्य ही ईश्वर है। किसी व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत रूप से अन्याय के खिलाफ अहिंसक विरोध किया जाना सत्याग्रह कहलाता है तथापि बड़ी संख्या में लोगों द्वारा सामूहिक रूप से अहिंसक आन्दोलन किया गया।

गाँधी का सत्याग्रह केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का साधन नहीं था, बल्कि समाज में नैतिक जागृति, अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध, और मानवता की प्रतिष्ठा को स्थापित करने का माध्यम था।

इस खण्ड में दो इकाइयां हैं। इकाई 3 में सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति की चर्चा है। इकाई 4 में सत्याग्रह के व्रत को स्पष्ट किया गया है।

इकाई–3 सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 सत्याग्रह का अर्थ

3.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति

3.4 सत्याग्रही की योग्यता

3.5 विभिन्न आयाम एवं समीक्षा

3.6 सत्याग्रह और आतंकवाद

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 उपयोगी पुस्तकें

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको इस योग्य होना चाहिए कि आप –

- सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति को जान सकें।
- सत्याग्रही बनने के लिए आवश्यक योग्यताओं की जानकारी हो सके।
- गाँधीजी ने सत्याग्रह के सन्दर्भ में क्या विचार दिए को बता सकें।
- भगवतगीता और सत्याग्रह किस प्रकार मानवीय जीवन से प्रभावित करते हैं बता सकें।
- सत्याग्रही विचारधारा की प्रासंगिकता सबको बता सकें।

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सत्याग्रह का अर्थ और उत्पत्ति के बारे में जानकारी प्रदान करना है। सत्याग्रह मौलिक रूप से गाँधीजी से सम्बन्धित नहीं था उनसे पहले भी उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, कुरान जैसे धार्मिक तथा अन्य अनेक पुस्तकों में सत्याग्रह के विचार का व्यापक उल्लेख मिलता है। इसे व्यवहार में उतारने का काम प्रहलाद, राजा हरिश्चन्द्र, सुकरात, प्लेटो, ईसा मसीह, सम्राट अशोक जैसे अनेक भारतीयों और पाश्चात्य चिंतकों ने समय–समय पर किया है। प्रहलाद शायद ऐसा पहला सत्याग्रही व्यक्ति था। जिसने अपने क्रूर पिता के अत्याचारों के खिलाफ सत्याग्रह का अभिनव प्रयोग किया। तब इसे सत्याग्रह के मूल अर्थ में नहीं समझा गया। गाँधी जी के अनुसार सत्याग्रह रूपी सिद्धांत का जन्म इसके नामकरण के पहले ही अस्तित्व में आ गया था। वास्तव में जब इसका जन्म हुआ था तो में खुद भी नहीं जानता था कि यह क्या है।

कुछ पाश्चात्य चिंतकों का विचार है कि गाँधीजी ने सत्याग्रह के विचार को, ईसा मसीह के न्यू टेस्टामेंट विशेष कर पर्वत पर के उपदेश से लिया है। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि इस विचार को उन्होंने टालस्टाय की रचनाओं से लिया है, जबकि टालस्टाय ने खुद इसे न्यू टेस्टामेंट से लिया था। वास्तव में गाँधी जी के सत्याग्रह के विचार न तो ईसा मसीह और न ही टालस्टाय से प्रेरित है बल्कि उनकी प्रेरणा का मुख्य आधार उनके अपने वैष्णवी मत थे जिन पर उन्हें अटूट विश्वास था। देखा जाय तो सत्याग्रह भारतीय परम्पराओं से ही उपजी प्रतीत होती है।

3.2 सत्याग्रह का अर्थ

सत्याग्रह शब्द मूल रूप से संस्कृत शब्द है। यह दो शब्दों सत्य और आग्रह के मिश्रण से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है सत्य के लिए आग्रह। दूसरे शब्दों में सत्य पर टिके रहना तथा सत्य की उपलब्धि हेतु दृढ़तापूर्वक लगे रहना, जमें रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह को परिभाषित करते हुए गाँधीजी ने लिखा है—

सत्य प्रेम पूर्वक आग्रह की मांग करता है और इस प्रकार यह आग्रह ताकत के एक पर्यायवाची के रूप में बदले जाते हैं। यही कारण है कि मेंने भारतीय आन्दोलन को निष्क्रिय प्रतिरोध के बजाय सत्याग्रह कहना शुरू किया जिसका आशय ऐसी ताकत से है जिसकी बुनियाद सत्य, प्रेम व अहिंसा के मजबूत खंभों पर टिकी है।

गाँधीजी ने इंडियन ओपिनियन में सत्याग्रह को एक पवित्र उद्देश्य हेतु दृढ़ता के रूप में रेखांकित किया है। यंग इंडिया में वे इस बात की ओ संकेत करते हैं कि सत्याग्रह –'आत्म दुःखभोग के सिद्धांत' का एक नवीन रूप भर है और हिंद स्वराज में आत्मबलिदान को अधिक श्रेयस्कर कहते हैं। तथ एक आत्मबलिदानी यानी स्व दुःख भोगी अपनी गलतियों से दूसरों को कष्ट नहीं पहुंचाता है।

सत्याग्रह, जो गांधीजी का सर्वोच्च आविष्कार, खोज या कृति है जो सत्य के ऐसे अनवरत व अविराम खोज की बात करता है, जहां हिंसा, घृणा, ईर्ष्या, दंभ व द्वेष का कोई स्थान नहीं है। इस अवधारणा का मतलब निष्क्रिया, दुर्बलता, निःसहायता या स्वार्थपरायणता नहीं है। वास्तव में यह मानवीय मस्तिष्क की ऐसी सोच तथा जीवन दर्शन को इंगित करता है जिसकी बुनियाद पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ इच्छा तथा घृणा पर प्रेम के विजय के सिद्धान्त पर टिकी है। असीम श्रद्धा, हृदय परिवर्तन हेतु स्वैच्छिक आत्म दुःखभोग तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु अहिंसक तथा न्याय पूर्ण तरीकों को धीरता तथा सक्रियता से इस्तेमाल करना सत्याग्रह के मूल में है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक तथा आर्थिक आधिपत्य के खिलाफ मानवीय आत्मा के शक्ति की दृढ़ता भी है। आधिपत्य हमेंशा अपने झूठ व स्वार्थ के लिए सत्य को खारिज करता है। सत्याग्रह मानवीय चेतना की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। यह चेतना मानव के सत्य की प्राप्ति हेतु अहिंसक संघर्ष की ओर जोरदार ढंग से अभिप्रेरित करती है।

सत्याग्रह लक्ष्य को प्राप्त करने का सरल व सहज मार्ग है। इस पर चलकर ही सत्य को प्राप्त किया जा सकता है। सत्याग्रह श्रद्धा, विश्वास, विवेक, प्रेम और विनम्रता की महानतम् अभिव्यक्ति है। यह अपने आप में एक महान विजय है। सत्याग्रह सत्य के अनसंधान तथा उस तक पहुंचने का अनवरत प्रयास है। यह अपना कार्य शांति, स्थिरता लेकिन तीक्ष्णतापूर्वक करता है। वास्तव में संसार में इसके समान लचीला, सौम्य व स्पष्ट कोई भी ताकत नहीं है। यह अन्याय, अनीति, दमन व शोषण के खिलाफ आत्मबल को खड़ा करता है। शाब्दिक रूप से इसका अर्थ होता है 'सत्य का दबाव' जो अपनी अभिव्यक्ति आत्मदुखभोग, श्रद्धा संकल्प, आत्मशुद्धि तथा आत्मविश्वास में साकार करता है।

सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक तथा नैतिक विकास में सत्याग्रह की महत्वपूर्ण भूमिका है। सत्याग्रह सभी लोगों के लिए उपयोगी नहीं है। इसका प्रयोग वही कर सकता है जिसमें सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य को मानने तथा व्यवहार में लाने की इच्छा शक्ति हो। सत्याग्रह आत्मबल को बढ़ाकर आन्तिरिक शक्ति प्रदान करती है तथा स्थायी परिणाम का निर्धारण करती है।

प्रसिद्ध गाँधीवादी आचार्य जे0वी0 कृपलानी के शब्दों में सत्याग्रह प्रहार के अलावा भी कुछ और अधिक की मांग करता है। यह कुछ अधिक संघर्षरत लोगों के सतत् नैतिक उत्थान की बात करता है। इसका अर्थ विरोधियों को नैतिक रुप से परास्त करना भी है। एक सत्याग्रही हड़ताली की अपेक्षा कहीं अधिक बेहतर असहयोगी होता है। वास्तविक रुप में सत्याग्रह सत्य के लिए अनवरत कार्याभिमुख खोज तथा असत्य के खिलाफ अहिसंक संघर्ष है।

सत्याग्रह का अर्थ राजनीतिक में सत्य के प्रयोग से है। सत्याग्रह के अन्तर्गत मानव जाति के भाई–चारे पर जोर था। इसके अंतर्गत अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा उसमें एक के ही बच पाने जैसे जैविक सिद्धान्तों को तिलांजलि दी गई थी। सत्याग्रह हाब्स द्वारा की गई मानव जीवन की परिभाषा 'सभी का सभी के विरुद्ध संघर्ष' को भी नकारता है। इसमें प्रेम, परस्पर सहयोग तथा सहकार को मानव प्रगति का आधार माना गया है। यह वेदान्त के

इस सिद्धान्त 'समग्र जीवन एक है' का पालन करता है अथवा ईसाईयों की मान्यता के अनुसार हम एक दूसरे से संबद्ध है। मानव जीवन तथा समाज जैविक है। अपने आप को नुकसान पहुचाँए बिना कोई अपने पड़ोसी का बुरा नहीं कर सकता। गाँधीजी कहते है ''मनुष्य को भगवान की सम्पूर्ण रचना की भलाई के बारे में दिल से सोचना चाहिए तथा उससे प्रार्थना करनी चाहिए कि वह ऐसा करने की योग्यता प्रदान करे।'' सभी प्राणियों के कल्याण के बारे में सोचने में ही व्यक्ति का कल्याण निहित है जो सिर्फ अपने अथवा अपने समुदाय के बारे में ही सोचता है वह स्वार्थी है और उसका कभी भला नहीं हो सकता।

बहादुरी, बलिदान, देशभक्ति, अनुशासन आदि जैसी कुछ अच्छाइयां पारम्परिक रुप में युद्ध से संबंध है लेकिन अब यह अप्रासंगिक है क्योंकि उसके लड़ने के लिए अब अत्यन्त विध्वंसक नए हथियार बना लिए गए है। युद्ध में सिर्फ भौतिक एवं नैतिक तबाही और बर्बादी होती है। समस्याओं का हल करने के बजाए इससे वह और पेचीदा हो जाती है। ऐतिहासिक रुप में अगर हम युद्ध के कारणों की पड़ताल करें तो पायेगें कि पिछली लड़ाई से पैदा हुए असंतुलन तथा अन्याय के कारण ही पहला विश्वयुद्ध पहले से मौजूद असंतुलन के कारण हुआ था लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध का कारण दोनों युद्धों के बीच की अवधि में स्थापित थोपी हुई शान्ति थी। अब कोई भी विश्वयुद्ध पिछले युद्ध के बाद स्थापित अन्यायपूर्ण शांति के परिणाम स्वरुप होगा।

गाँधीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग सर्वप्रथम द0 अफ्रीका में यह किया था। यह द0 अफ्रिका को श्वेतों का उपनिवेष बनाए रखने के समर्थकों के विरुद्ध उन्हें सूझा था। उन्होंने वहाँ पर सत्याग्रह की तकनीकों को आजमाकर उनमें महारथ हासिल की। लेकिन गाँधीजी ने इसको अपने तकनीक के रुप में कभी प्रचारित नहीं किया। ऐसा शायद उनकी विनम्रता अथवा हरेक नए विचार की उत्पत्ति प्राचीन बौद्धिक विरासत से जोड़ने की भारतीय विचारकों की मानसिकता के कारण भी हो सकता है। महान विद्वान तथा देशभक्त तिलक ने उद्गारों पर ध्यान देना चाहिए। तिलक ने भी गीता पर विद्वतापूर्ण भाष्य लिए था। वह कहते है, ''कोई भी नियम तोड़ने की सजा हमेंषा निहित है। लेकिन जब कोई नियम स्वंयमेंव अनैतिक हो और सरकारी अधिकारी उसे थोपना चाहता हो सत्य, न्याय एवं धर्म में हमारी आस्था की परीक्षा आवष्यक हो जाती है और उसके लिए अनैतिक कानून की अवज्ञा की जानी चाहिए। लेकिन सत्य एवं न्याय के प्रति आस्था एवं समर्पण इतने उच्चस्तर अथवा भावप्रवण होना चाहिए कि भक्त अथवा आस्थावान के दिमाग में कर्त्तव्यनिष्ठा के अलावा कोई और नैतिक विचार आना ही नहीं चाहिए। किसी भी बाधा के बावजूद अपने कर्त्तव्य पालन पर अडिग रहने की भावना ही सर्वोच्चता होनी चाहिए। यह गुण अध्ययन अथवा विद्वता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अध्यात्मिक शक्ति है। यह उपनिषदों की शिक्षा है। यह अध्यात्मिक शक्ति हालांकि अध्ययन अथवा मनन से प्राप्त नहीं की जा सकती है बल्कि कोई प्रतिबद्ध व्यक्ति गीता के अनुसार प्रायष्चित करके इसे अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकता है।

3.3 सत्याग्रह की उत्पत्ति

सत्याग्रह का सिद्धांत कोई नवीन खोज नहीं है। यह उतना ही पुराना हे जितना पतंजलि। गाँधीजी ने इसकी उत्पत्ति को शुद्धता के विचार से जोड़ने का जोरदार प्रयास किया। सत्याग्रह को कामधेनु बताते हुए गाँधी जी ने इसे सत्याग्रह और उसके विरोधी दोनों के लिए उपयोगी बताया। सत्याग्रह का सम्बन्ध वैदिक आर्य युग के यज्ञों से भी रहा है। 'मानव व पशु बलि' के मौलिक रूप तथा सत्याग्रह में इसके समकालीन अभिव्यक्ति के बीच (यह उपनिषदों के बौद्धिक शुद्धिकरण तथा जैनों व बौद्धों के मानवतावादी सरोकारों के तीक्ष्ण बदलावों के दौर से यह गुजरा है।)

गाँधी जी ने इस अनुपम हथियार की खोज दक्षिण अफ्रीका में नस्लीय भेदभाव के खिलाफ अपने अहिंसक संघर्ष के दौरान की। 1906 में गाँधीजी के दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों को संगठित किया तथा अन्यायपूर्ण कानूनों व सार्वजनिक व्यवहारों के खिलाफ प्रतिरोध के एक नवीन तरीके को ईजाद किया जिसे गाँधीजी ने –निष्क्रिय प्रतिरोध' का नाम दिया लेकिन समय बीतने तथा संघर्ष के तीक्ष्ण होने के साथ ही यह नाम संदेह व संशय के घेरे में आ गया तथा इसे कमजोरों के हथियार के रूप में माना जाने लगा। परिणाम स्वरूप एक ऐसे अंग्रेजी शब्द का इस्तेमाल शर्मनाक माना जाने लगा जो कि आसानी से बोधगम्य नहीं हो।

उन्होंने यह महसूस किया कि जिस आन्दोलन को उन्होंने शुरू किया था वह निष्क्रिय प्रतिरोध से भिन्न कुछ अधिक गहरे अर्थों वाला था।सो इस नवीन किस्म के प्रतिरोध के पुनर्नामांकन की महती आवश्यकता को महसूस

करते हुए गाँधीजी ने अपने साप्ताहिक पत्र इंडियन ओपीनियन में एक नवीन व उपयुक्त शब्द सुझाने हेतु एक छोटे से पुरस्कार की घोषणा की। उनके एक सहयोगी मगन लाल गाँधी ने 'सदाग्रह' शब्द सुझाया जिसका अर्थ होता है पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अनवरत प्रयास। गाँधीजी ने इसे पसंद किया लेकिन साथ ही यह भी महसूस किया कि यह इनके विचारों को सम्पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं करता है कयोंकि उनकी नजरों में यह एक ऐसा सत्य बल था जिसकी अभिव्यक्ति, सत्य प्रेम व अहिंसा जेसे दिव्य गुणों से परिचालित होता था। इसलिए उन्होंने इसमें थोड़ा सा संशोधन किया और इसे सत्याग्रह नाम दिया जिसका शाब्दिक अर्थ –सत्य के लिए आग्रह' है। सत्याग्रह की उत्पत्तियों पर जोसेफ जे डाक के साथ विचार–विमर्श करते हुए गाँधीजी ने निम्न विचार व्यक्त किए उन्होंने कहा–

मैं याद करता हूं कि कैसे अपने स्कूल में सीखे एक गुजराती कविता की एक पंक्ति ने मुझे बेहद आकर्षित किया था। इसका भावार्थ कुछ इस प्रकार था– यदि कोई व्यक्ति आपकी जिज्ञासा शांत करता है और बदले में यदि आप भी उसकी जिज्ञासा शांत करते हैं तो इसमें उल्लेखनीय कुछ भी नहीं। असली बात तो तब है जब आप किसी की बुराई के बदल भलाई का दान करते हैं। बचपन की इस अवस्था में इस पंक्ति ने मेंरे ऊपर जबरदस्त प्रभाव डाला और मेंने इसे अपने व्यवहार में परिणित करने का भरसक प्रयत्न किया।

भगवद्गीता का आप पर पहला प्रभाव पड़ा होगा? के जवाब में कहा नहीं, हां यह जरूर है कि संस्कृत में लिखी भगवद्गीता से में पूरी तरह वाकिफ हूं, लेकिन इसकी शिक्षाओं को इस विशेष कार्य हेतु सन्दर्भ नहीं बनाया। वास्तव में न्यू टेस्टामेंट ने मुझे निष्क्रिय प्रतिरोध की उपयुक्तता तथ मूल्य के सही रूप में समझाया। जब मेंने पर्वत पर के उपदेश की इन लाइनों को पढ़ा कि बुरे आदमी का नहीं वरन बुराइ का प्रतिरोध करो। यदि कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो झट से अपना बांया गाल भी आगे कर दो तथा अपने दुश्मन को भी अपने प्रियजनों की तरह ही प्रेम करो तथा उसकी भलाई के लिए प्रार्थना करो क्योंकि वह स्वर्ग में रहने वाले तुम्हारे पिता के पुत्रों में कोई एक हो सकता है तो में आनन्द और हर्ष से अभिभूत हो गया तथा मुझे लगा कि इसने मेंरे अपने विचारों को वहां पक्का कर दिया जहां इसकी मुझे सबसे कम आशा थी। भगवद्गीता ने इस सोच को गहराई प्रदान की तथा टाल्सटाय के स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है ने इसे स्थायित्व प्रदान किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सत्याग्रह की उत्पत्ति सामाजिक शान्ति बढ़ाने तथा नैतिक उत्थान के लिए आवश्यक मानी गयी। सत्याग्रह ने आपसी समझ, शान्ति व सौहार्द्र बढ़ाने का कार्य किया है इसकी उत्पत्ति जगत में क्रांतिकारी घटना थी।

3.4 सत्याग्रहो की योग्यता

महात्मा गाँधी ने कहा में भारतवर्ष के प्रत्येक सत्याग्रही के लिए इसे अनिवार्य योग्यता मानता हूं सत्याग्रही की निम्न योग्यताएं हैं।

1. ईश्वर के प्रति उसके मन में जीवन्त आस्था होनी चाहिए।
2. किसी भी प्रकार के नशा से उसे मुक्त होना चाहिए।
3. स्वभाव से वह खादी बुनने वाला तथा कातने वाला हो हिन्दुस्तानी के लिए यह परम आवश्यक है।
4. समय–समय पर तय किये जाने वाले सभी अनुशासनात्मक नियमों के प्रति वह वफादार हो।
5. सत्य के प्रति उसके मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिए। अर्थात उसे मानवीय प्रकृति में चिन्हित भलमनसाहत के प्रति उसके मन में पूरी श्रद्धा होनी चाहिए। जिसे वह अपने प्रेम व सत्य से सराबोर कर जागृत करने की अपेक्षा रखता है।
6. जेल के नियमों को वह तन–मन से तब तक स्वीकार करें तब तक कि वह उसके आत्मसम्मान को विशेष रूप से ठेस पहुंचाने वाला न हो।

इस प्रकार सत्याग्रह का पालन वही कर सकता है जो उपरोक्त नियमों का पालन सहृदयता के साथ कर सके। सत्याग्रह की योग्यता ही उसे सफलता तक ले जाता है।

सत्याग्रह का मर्म यह है कि जिन्हें अत्याचार सहना पड़े सिर्फ वे ही सत्याग्रह करें। ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है, जिसमें सहानुभूति पूर्ण कहा जा सकने वाला सत्याग्रह करना उचित हो।सत्याग्रही की जड़ में

विचार यह है कि अन्यायी का हृदय परिवर्तन किया जाए कि पीड़ित पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना अन्यायी मन चाहा अन्याय नहीं कर सकता। दोनो ही स्थितियों में अगर लोग अपने ध्येय के लिए कष्ट सहने को तैयार न हो तो सत्याग्रह के रूप में किसी बाहरी सहायता से उनकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती।

सत्याग्रह के आन्दोलन में लड़ाई का तरीका और रणनीति का चुनाव अर्थात आगे बढ़े या पीछे हटे सविनय कानून भंग करे या रचनात्मक कार्य तथा शुद्ध निःस्वार्थ मानव सेवा के द्वारा अहिंक बल संगठित करें आदि बातों का निर्णय परिस्थिति की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। सत्याग्रही के लिए जो भी योजना बना दी जाए उस पर उसे ठंडे निश्चय के साथ अमल करना चाहिए, न उसे उत्तेजित होना चाहिए और न निराश होना चाहिए।

3.5 विभिन्न आयामा एवं समीक्षा

सत्याग्रह का नियम कठोर है। जिसका पालन करना सरल नहीं है। अतः इसका उपयोग तभी किया जा सकता है जबकि अन्य उपाय से सफलता नहीं मिली हो। गाँधी जी का मता है कि सर्वप्रथम अधिकरियों से प्रार्थना करना चाहिए यदि उनमें असफलता मिली तो साधारण जनता को प्रचार द्वारा युक्तिपूर्वक अपने अनुकूल कर लेना चाहिए । जब इन सभी उपायों में सफलता मिलती है तो सत्याग्रह का सहारा लेना चाहिए। यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि सत्याग्रही का उद्‌देश्य विरोधी को पराजित करना नहीं अपितु उसका अपने अनुकूल हृदय परिवर्तन करना चाहिए। हो सके तो विरोधियों को सीमित मात्रा में केवल उस कानून का विरोध करना चाहिए जो अन्या पूर्ण हो। सभी कानूनों को तोड़ना नहीं चाहिए। अन्यथा समाज में उच्छृंखलता, अराजकता आ जायेगी। अधिक से अधिक जन समाज तक आन्दोलन के विवरण को पंहुचाना चाहिए जिससे सत्याग्रह आन्दोलन में तीब्रता आ जायेगी।

सत्याग्रही वही हो सकता है जो शुद्ध विचार के, अनुशासन प्रिय, सत्य और अहिंसा के प्रति श्रद्धा रखता हो, ईमानदार, कर्तव्यनिश्ठ, ईश्वर में आस्था रखता हो। शान्त मनः स्थिति वाला तथा जिसमें भारतीयता की भावना हो। साध्य अच्छे होने के लिए गाँधी जी ने साधन को अच्छा होना आवश्यक माना है। इसलिए सत्याग्रही को सभी प्रकार के दुर्व्यसनों से रहित होना चाहिए। यह एक ऐसी कठोर तपस्या है जिसमें पाप से घृणा, किन्तु पापी से प्रेम तथा जितना आत्मपीड़न वह स्वयं करेगा उतना ही निरन्तर सच्चाई की ओर अग्रसर होगा। मानवता को सर्वोपरि स्थान देकर विरोधी को कोई दूसरा भी कश्ट पंहुचाए तो उसकी सहायता करना सत्याग्रही का फर्ज बनता है। जो भी इस अहिंसात्मक आन्दोलन में भाग लेगा। उसे जेल के नियमों का ईमानदारी पूर्वक पालन करना चाहिए और नेता का आदेश मानना चाहिए। राजनीतिक आन्दोलनों को अधिक क्रियात्मक रूप देने के लिए गाँधी जी ने सत्याग्रह को और निम्न रूप बताये हैं :–

1. असहयोग– अंग्रेजी राज्यो के विरुद्ध जो एक शक्तिशाली और शुभ साधना है।
2. सविनय – अंग्रेजों के विरुद्ध नमक कानून को तोड़ा यह एक शक्ति पूर्वक विजय है जिसका दमन नहीं हो सकता है।
3. उपवास – चौरी–चौरा काण्ड में पांच दिन का उपवास। यह विशुद्ध और प्रिय हृदय की प्रार्थना की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है। इसके द्वारा बुराई करने वाले को अच्छी पद्धति से अपील की जाती है।
4. विश्रतः– स्थायी निवास को अथवा देश को त्याग करके चले जाना।
5. धरना – एक ही स्थान पर बैठे रहना।
6. हड़ताल– अपनी बात मनवाने के लिए सरकार पर दबाव।
7. सामाजिक बहिस्कार।

संक्षेप में सत्याग्रह सच्चाई के लिए निरन्तर खोज है और सच्चाई तक पंहुचने का दृढ़ निश्चय है। यह एक ऐसा आदर्श है जिसके द्वारा विरोधी का शुभत्व जागृत होता है। और यह सत्याग्रही की बातों को स्वीकार करता है।

आध्यात्मिक स्तर पर यद्यपि यह गाँधीजी की बहुत बड़ी देन है किन्तु अध्यात्म की साधना जो गिरीप्रकोश्ठाओं एवं कन्दराओं में छिपी थी उसका कम से कम इन्होंने नयी शब्दावली में समाजीकरण किया। राजनीति स्तर पर विश्व में एक क्रान्ति लायी। इस प्रकार सत्याग्रह युद्ध और क्रान्ति के विकल्प के रूप में महत्वपूर्ण साधन बना। गाँधी जी का ऐसा मार्ग दर्शन विश्व इतिहास में बेजोड़ हैं।

हालांकि आलोचकों की दृष्टि में अहिंसा की धारणा पर सत्याग्रह अनुकूल नहीं है। आर्थर मूर ने इसे मानसिक हिंसा की संज्ञा दी है। उपवास भी एक राजनीतिक आतंकवाद है। पुनः सभी परिस्थितियों में इसका प्रयोग जैसे युद्ध आदि में सम्भव नहीं है। साम्यवादी और क्रान्तिकारी विचारधारा वाले इसकी आलोचना में कहते हैं कि अहिंसक साधनों के द्वारा सामाजिक और आर्थिक स्थिति को पूर्णतया परिवर्तित नहीं किया जा सकता। इसके लिए हिंसा या शक्ति भी आवश्यक है। नेहरू भी इसे नकारात्मक दृष्टिकोण से व्याख्यायित करते हैं। फिर भी वर्तमान में लोकतान्त्रिक प्रक्रियाओं के तहत अपनी राजनीतिक मांगों को प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन सत्याग्रह हो सकता है।

3.6 सत्याग्रह और आतंकवाद

राजनीतिक परिवर्तन की प्रणाली के रूप में जहां एक ओर, सत्याग्रह साधन के रूप में अहिंसा को अपनाता है तो वहीं दूसरी ओर, आतंकवाद साधन के तौर पर हिंसा को स्वीकार करता है।

आतंकवाद राज्येत्तर कर्त्ता के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर प्रकट हुआ है। इसे एक राजनैतिक प्रणाली के रूप में प्रयुक्त करके वांछनीय समाज निर्माण के कवाद है। जिसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय माना जाता है। और पिछले एक दशक में यह एक प्रभावशाली प्रविधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद का आधुनिक स्वरूप मध्य पूर्व एशिया में देखने को मिलता है जब म्युनिख ओलम्पिक खेलों के दौरान (1969) फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चे ने इजराइली खिलाड़ियों की हत्या कर दी जिसके बाद फिलिस्तीनी समर्थकों ने स्वीकार कर लिया था कि अपनी समस्या और वेदना को मुखर करने के लिए फिलिस्तीनियों के सामने कोई दूसरा विकल्प शेष नहीं बचा क्योंकि इजराइल उनके विरूद्ध वंश नाशक हिंसा का प्रयोग कर रहे थे।

सामान्यतः आतंकवाद विद्यमान राजनैतिक संस्थाओं या सरकार को स्थिर करते या हटाने के प्रयासों से पहचाना जाता है और इसे सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तन हेतु एक पद्धत्ति के तौर पर स्वीकार किया जाने लगा है; आज भारत सहित सम्पूर्ण विश्व में इसका प्रसार हो चुका है। जिससे इसका स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय बन गया है। इस समय प्रचलित आतंकवाद को अन्तर्राष्ट्रीय कहने के अनेक आधार है। प्रथम अनेक आतंकवादी तत्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं। इनकी गतिविधियां अनेक राज्यों में संचालित होती है; आर्थिक एवं सैनिक सहायता जुटाने के लिए वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसी अन्य देश में सक्रिय होते हैं; आतंकवादी गतिविधियों को सभी प्रकार से सही मानने के कारण यह संगठित अपराधियों, के देशों की गुप्तचर एजेंसियों से गठबन्धन कर लेते हैं।

आतंकवाद के स्वरूप एवं परिभाषा को लेकर मतभेद की स्थिति है। शाब्दिक दृष्टि से टेरोरिज्म शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा टेरिरि शब्द से हुयी है जिसका अर्थ है भयाक्रान्त करना इसी प्रकार आतंकवाद का शाब्दिक अर्थ आतंक को निश्चित विधि के रूप में स्वीकार करना है। इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज के अनुसार आतंकवाद में एक संगठित समूह या पार्टी अपने स्पष्ट लक्ष्यों को प्राप्ति हेतु मुख्य रूप से व्यवस्थित हिंसा का प्रयोग करती है। इस प्रकार आतंकवाद की राजनैतिक पृष्ठभूमि होत है। वैचारिक कट्टरता उसका आधार है जबकि भौतिक रूप से जनमाल को नुकसान पहुँचाना साधन के तौर पर प्रयुक्त होता है।

पुनः आतंकवाद को परिभाषित करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने (मार्च, 2005) कहा है कि किसी सरकार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को किसी कार्य को करने अथवा नहीं करने के लिए दबाव बनाने के उद्देश्य से सामान्य लोगों की हत्या अथवा उन्हें गम्भीर रूप से शारीरिक क्षति पहुंचाने वाले कृत्यों को आतंकवाद की संकल्पना में शामिल किया जा सकता है।

एक अन्य व्याख्या में राजनैतिक आतंकवाद किसी व्यक्ति या समूह द्वारा सत्ता के पक्ष या विपक्ष में हिंसा का प्रयोग या हिंसा के प्रयोग की धमकी है। यद्यपि हिंसा का शिकार सामान्य जनता होती है तथापि उसकाक लक्ष्य राजनैतिक होता है; इसलिए आतंकवादी क्रियायें सामान्यतः इस प्रकार की जाती है जिससे अधिकतम प्रचार एवं भय उत्पन्न किया जा सके इसलिए आतंकवाद को सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित कार्यवाही कहा जाता है।

3.7 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत हमने सत्याग्रह, इसका अर्थ तथा उत्पत्ति के बारे में गहनता से अध्ययन किया। सर्वप्रथम हमने सत्याग्रह की परिभाषा इसका अर्थ के साथ–साथ इमें शामिल तत्वों के बारे में विवेचना किया। सत्याग्रह के अनिवार्य तत्वों में सत्य, अहिंसा, ईश्वर में श्रद्धा, भाई चारा, नैतिक मूल्यों की सर्वाच्चता तथा साधनों की सुचिता।

तत्पश्चात हमने सत्याग्रह की उत्पत्ति तथा उसका गीता से तुलनात्मक अध्ययन किया। सत्याग्रही की आवश्यक योग्यता के बारे में गहनता से विवेचन किया। सत्याग्रह सत्य को सर्वश्रेष्ठ मानकर उस पर चलने की सीख देता है जो समाज के सभी लोगों के लिए लाभदायक है।

3.8 शब्दावली

- तत्पश्चात – एक के बाद दूसरे का वर्णन करना।
- आत्मविश्वास– आत्मा की बातों पर विश्वास करना।
- पाश्चात्यवासियों पर विचार– पश्चिमी देशों के विचार का वर्णन।
- अनुपम हथियार– इसके समान कोई दूसरा हथियार नहीं।
- बुराई का प्रतिरोध– बुराई को रोकना/विरोध करना।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1. गौरीकांत ठाकुर– महात्मागाँधी फिलासफी आफ सत्याग्रह किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी।
2. महत्मागाँधी – सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका, प्रथम संस्करण, एस. गणेशन, मद्रास।
3. जे.बी. कृपलानी– गांधियन टर्निनलाजी
4. यंग इण्डिया
5. सम्पूर्ण गाँधी वाड्0मय खण्ड –XIII
6. हरिजन
7. अनिल दत्त मिश्र– गांधी एक अध्ययन
8. एम.के. गाँधी– सत्य के प्रयोग

इकाई–4 सत्याग्रह के व्रत

ईकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 सत्याग्रह के व्रत

4.3 मुख्य व्रत

4.3.1 सत्य

4.3.2 अहिंसा

4.3.3 ब्रह्मचर्य व्रत

4.3.4 जीभ पर संयम

4.3.5 अस्तेय

4.3.6 अपरिग्रह

4.4 गौणव्रत

4.4.1 सामाजिक व धार्मिक सममानसिकता

4.4.2 जीविका श्रम

4.4.3 स्वदेशी

4.4.4 निडरता

4.4.5 अस्पृश्यता निवारण

4.5 सत्याग्रह संहिता

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप सत्याग्रह के निम्नलिखित पक्षों को जान सकेंगे–

- सत्याग्रह के मूल व्रत तथा गौण व्रत की जानकारी हो जाएगी।
- मूलव्रत के अन्तर्गत सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्यव्रत, जीभ पर संयम, अस्तेय तथा अपरिग्रह के बारे में गहनता से अध्ययन कर लेंगे।
- गौण व्रत के प्रमुख तत्व जैसे –जीविका श्रम, स्वदेशी, निडरता, सामाजिक व धार्मिक मानसिकता तथा विनम्रता के बारे में जान सकेंगे।
- सत्याग्रह के विविध विधियों को जान सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई का उद्देश्य सत्याग्रह के व्रत जिसमें प्रमुख व गौण व्रतों की विस्तृत जानकारी प्रदान करना है। सत्याग्रह के व्रतों को किस प्रकार से पालन करना चाहिए तथा उसके लिए क्या–क्या विधियां हैं इन सबका हम विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं।

सत्याग्रह के व्रतों में स्वदेशी तथा ब्रह्मचर्य व्रतों का महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ब्रह्मचर्य का पालन करने पर सत्याग्रह के व्रतों का आसानी से पालन स्वतः हो जाता है। इसीलिए स्वदेशी के साथ ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध अनिवार्य

हो जाता है। सत्याग्रह के व्रत के मूल अर्थ को समझने के लिए हम इसके विभिन्न व्रतों का विस्तृत अध्ययन करके देखेंगे।

4.2 सत्याग्रह के व्रत :

महान मानवतावादी कर्मयोगी एवं आध्यात्मिक पुरुष महातत्मा गाँधी ने अहिंसा के सिद्धान्त को मूर्तरूप देने के लिए राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में जिस कार्य पद्धति का प्रयोग किया इसी का नाम है 'सत्याग्रह'। इसका अर्थ है सत्य पर आग्रह करना अर्थात् सत्य पर डटे रहना। राजनीतिक रूप में अन्याय का प्रतिकार करना, उसके सामने सिर न झुकाना और उस अन्यायी के द्वारा लागू सिद्धान्त को न स्वीकार करना।

दूसरे शब्दों में किसी अन्याय, दमन, अत्याचार या नियम और सत्य के विपरीत किसी तन्त्र के द्वारा किये गये दमनात्मक कार्य के विरोध में सत्य की रक्षा की रक्षा के लिए अहिंसात्मक रूप से सत्य पर डटे रहना सत्याग्रह है। व्यक्ति और समाज के विकास में ऐसी अहिंसात्मक क्रान्ति आवश्यक है।

'यंग इण्डिया' में सत्याग्रह के सम्बन्ध में गाँधी ने लिखा है कि 'यह आत्मा की शक्ति है।' यह सत्य पर आग्रह दूसरों को कष्ट देकर नहीं बल्कि स्वयं कष्ट सहकर संभव है। सच्चाई के लिए तपस्या है। यह एक आयात्मिक प्रत्यय है। अपने विरोधी को हमेशा केवल तर्क द्वारा या तो उसके बुद्धि को प्रेरित करता है यह आत्म बलिदान द्वारा उसके हृदय को। इस प्रकार सत्याग्रह दुहरा बरदान सिद्ध होता है। सत्याग्रह सत्य का प्रतीक है और सत्य शाश्वत है। सत्याग्रही हारना नहीं जानता और इस संग्राम में मृत्यु मोक्ष होती है और काराग्रह स्वतन्त्रता का द्वार। गाँधी जी ने कश्ट दुःख का प्राचीन सिद्धान्त भारत के सामने रखा था।

हालाकि सत्याग्रह निष्क्रिय नहीं बल्कि सक्रिय प्रतिरोध है। गाँधी जी ने सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में उसी प्रकार अन्तर बतलाया जिस प्रकार उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव में है।

सत्याग्रह बलवानों का शस्त्र है, सक्रिया प्रतिरोध है, विरोधियों का इसमें हृदय परिवर्तन किया जाता है, जिसमें उनका शुद्धत्व जाग्रत हो जाता है। इसमें विरोध को समाप्त किया जाता है विरोधियों को नहीं साध्य और साध्न के मध्य भिन्नता नहीं समझा जीती है। राजकीय नियमों और कनूनों को सत्याग्रह में आदर दिया जाता है। यह रचनात्मक सिद्धान्त हैं इसे प्रत्यक्ष जीवन में अपनाया जा सकता है। किसी से विरोध नहीं होने पर भी इसे खादी ग्रामोद्योग, प्रौढ़ शिक्षा, अस्पृश्यता निवारण, समग्र ग्राम सेवा, साक्षरता का प्रयास, जातीय एकता आदि कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। अहिंसा को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी छोड़ा नहीं जा सकता है। नैतिकता इसका शस्त्र है जिसमें मनुष्य की दैवी शक्तियों को उभारा जाता है। इसको कायरता भी नहीं कहा जा सकता है। गाँधी जी कायरता के सख्त खिलाफ थे। उनका कथन था कि 'मैं भारत को अपने मान—सम्मान की रक्षा के लिए शस्त्रों के प्रयोग की आज्ञा दूंगा, बजाय इसके कि वह कायरता पूर्वक अपना अपमान सहन करने के लिए विवशता का शिकार हो जाय या बना रहे।

आज एक—एक पहलू पर सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोधों में अन्तर है। जैसा कि हम देखते हैं कि निष्क्रिय प्रतिरोध निर्बलों का साधन है। जिसमें हिंसा का महत्व है। साध्य और साधन में भिन्नता होती है। विरोधियों के प्रति घृणा द्वेष यह रचनात्मक सिद्धान्त नहीं है, सार्वभौम नहीं है, राजनीतिक परिवर्तन का शस्त्र है। अब उपर्युक्त विवरण से स्पश्ट है कि गाँधी जी ने जो अन्तर किया है उनमें सत्याग्रह अधिक आदर्शमूलक है, जबकि निष्क्रिया प्रतिरोध आदर्शमूलक नहीं है।

सत्याग्रही के आवश्यक गुणों की चर्चा गाँधी जी ने 1908 ई0 में 'हिन्द स्वराज' में किया है। ये गुण है—सत्य, निष्ठा, निर्भयता, ब्रह्मचर्य, निर्धनता और अहिंसा। हिन्द स्वराज में गाँधीजी ने प्रतिपादित उपरोक्त गुणों की वृद्धि कर

के 11 गुणों का पालन और साधना आवश्यक बताया है जो इस प्रकार है– अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीर श्रम, निर्भयता, सब धर्मों को समान दृष्टि से देखना, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण आदि।

सत्याग्रह की सफलता तथा सत्याग्रही को विषम परिस्थितियों में कार्य हेतु शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक रूप से तैयार करने के लिए गाँधीजी ने कुछ विशेष व्रत निर्धारित किये हैं जो एकादश व्रत के नाम से प्रसिद्ध है, सत्याग्रहियों को उन विशेष व्रतों को अपने निजी तथा सार्वजनिक जीवन में पूरी तरह अपनाने की अपेक्षा रची गई। इस व्रतों को मुख्य तथा गौण दो वर्गों में बांटा गया है।

4.3 मुख्य व्रत

4.3.1 सत्य

सभी वतों में सत्य का व्रत सबसे पहले आता है, सत्य के व्रत के अनुपालन को सामान्यतः सत्य बोलने मात्र तक सीमित मान लिया जाता है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार इसका वास्तविक अर्थ है विचार, तथाकार्य में सात्विकता सत्यता का अनुपालन। इसलिए सत्य के अनुपालन के दौरान, दुराव, छिपाव,चालाकी, धोखेबाजी तथा कपट को पूर्णतः परे रखा जाता है। सत्य का अनुपालन अनवरत प्रयास तथाजीवन के अन्य निहित स्वार्थों के प्रति उदासी के भाव के साथ किया जाना चाहिए।

इसका अर्थ है सतत् तथा पूर्ण अनाशक्ति। गाँधी जी के अनुसार सत्य के दर्शन का अनुभव अनाशक्ति से ही संभव है। क्रोध, लोभ, डर, दंभ आदि ऐसी बुराई है जो साधनों को भटकाने का कार्य करती है।

गाँधीजी ने सत्य को मूल अर्थ में लिया है। सत्य का आदर्श प्रहलाद का आदर्श है, ईश्वर है अतः अन्तरात्मा के अनुसार जो सही हो उसका मनसा, वाचा एवं कर्मणा आचरण ही सत्य आचरण है। यही सत्याग्रह है। सत्याग्रह निष्क्रिय विरोध नहीं है। उन्होंने इसका प्रारम्भ 1908 में दक्षिण अफ्रिका में किया था। सत्याग्रह शारीरिक बल नहीं है अपितु आत्मबल है आत्मा में प्रेम की लौ जलती है। सत्याग्रही कभी भी जिसका विरोध करता है उसका अहित नहीं चाहता, राम सत्याग्रह–आत्मबल के प्रतीक है। रावण की अनन्त भौतिक शक्ति आत्मबली राम के सामने कुछ भी नहीं है। सत्याग्रह कामधेनु है। सत्याग्रह से सत्याग्रही एवं विरोधी दोनों का लाभ होता है। हरिश्चन्द्र, मीराबाई, डेनियल, एवं सुकरात सत्याग्रही थे। सत्याग्रही अपने सत्य पर अड़ जाता है, 'हार' शब्द उसके शब्दकोष में नहीं है। वह किसी अन्य की प्रतिक्षा नहीं करता, वह निर्भय होता है। सत्याग्रह मात्र सरकार के विरुद्ध ही नहीं होता, वह किसी भी अत्याचार या अन्याय के विरोध में ही सकता है चाहे वह व्यक्तिगत द्वारा ही, समाज द्वारा हो सरकार द्वारा। गाँधी लिखते है कि वह व्यक्ति द्वारा हो, समाज द्वारा हो या सरकार द्वारा। गाँधी लिखते है कि थोरो ने अपने ही समाज का जो दास व्यापार में संलग्न था, विरोध किया। इसी प्रकार महान लूथर ने ही अपने ही लोगों के विरुद्ध सत्याग्रह के बल पर जर्मनी को स्वतंत्र किया। गैलीलियों सत्याग्रही था। उसने समाज का विरोध कर, मृत्यु को स्वीकारना अच्छा समझा, किन्तु सत्य से प्रतिमुख नहीं हुआ और इस प्रकार खगोल विज्ञान को उसी की अक्षुण्ण देन पृथ्वी गोल है जो सूर्य को चारो ओर चक्कर लगाती है सत्याग्रही का प्रतीक है।

4.3.2 अहिंसा

गाँधी जी कहते हैं मेंरी राय में अहिंसा केवल व्यक्तिगत सद्गुण नहीं है। वह एक सामाजिक सद्गुण भी है जिसका विकास अन्य सद्गुणों की भांति किया जाना चाहिए। अवश्य ही समाज का नियमन ज्यादातर आपस के व्यवहार में अहिंसा के प्रकट होने से होता है। मेंरा अनुरोध इतना ही है कि इसका राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर अधिक विस्तार किया जाए।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ हिंसा का परित्याग है। किसी जीवित प्राणी के प्राण नहीं लेने ही काफी नहीं है। इस व्रत के अनुपालक उन लोगों को भी शारीरिक या मानसिक नुकसान पहुंचाते हैं या पहुंचाने की चेष्टा नहीं करते हैं। जो उनके विचार में अन्यायी व अत्याचारी हैं। सो एक अहिंसा व्रती से इस बात की अपेक्षा की जाती है कि वह अपने धुरविरोधियों पर भी क्रोध न करें वरन् उसे प्रेम करें। अन्याय व अत्याचार का विरोध करना अहिंसा व्रतियों का धर्म है फिर वह अन्याय माता–पिता का हो, सरकार का हो या किसी और का हो लेकिन अन्यायियों या अत्याचारियों को चोट पहुंचाने की किसी की कार्यवाही अहिंसा में पूर्णतः निषेध हैं अहिंसा व सत्यव्रत के साधक अत्याचारियों पर प्रेम से विजय पाने की कोशिश करते हैं। वे शोषकों की इच्छा को ढोने के बजाय सजा भोगना पसंद करते हैं तथा

उनकी अवज्ञा तब तक जारी रहती है जब तक शोषक खुद परास्त नहीं हो जाते।

मात्र हिंसा न करना ही हिंसा नहीं है। इसका गाँधी ने अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का अमंगल न होने देना अहिंसा है। ईट का जवाब पत्थर के स्थान पर 'जो तू को काँटा बुवै ताहि बोई तू फुल' में विश्वास करना अहिंसा है। अहिंसक का कोई शत्रु नहीं होता। गाँधी के अनुसार अहिंसा की साधना के द्वारा संसार अहिंसा के व्रती के पैरो में नतमस्तक हो जाता है। सचमुच गाँधीजी अहिंसा को सत्य का पयार्य मानते है। उन्होंने सत्य एवं अहिंसा की अभिन्नता पर बार–बार बल दिया; वे दोनो इस प्रकार गुथे है कि व्यवहारतः दोनों को पृथक कर पाना असंभव है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। कौन कह सकता है कि सीधा है और कौन उल्टा? कभी–कभी गाँधी के सत्य एवं साध्य अन्त में एक ही हो जाते है किन्तु स्वयं ईश्वर अत्यन्त प्रेम है। गाँधी ने अहिंसा को प्रेम माना है। अहिंसा मात्र निषेधात्मक अमंगलताहीनता ही नहीं है बल्कि प्रेम की विधायक स्थिति है।

4.3.3 ब्रह्मचर्य व्रत

उपर्युक्त दोनों व्रतों का अनुपालन तब तक संभव नहीं है जब तक ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं किया जाए। इस व्रत के लिए सिर्फ यही काफी नहीं है कि कोई किसी औरत को कामुक नजरों से नहीं देखें वरन् उसे अननी पाशविक इच्छाओं को इस तरह से काबू में रखना चाहिए कि वह अपने विचार या कल्पना में भी इन इच्छाओं के वसीभूत नहीं हो पाए। यदि व्यक्ति शादी शुदा है तो उसे अपने पत्नी के प्रति विषयासक्त नहीं रहना चाहिए। वरन् इसके बजाय उसे अपनी पत्नी को जीवन पर्यन्त सखा मानना चाहिए तथा उसके साथ पूर्णतः संबंध स्थापित करना चाहिए।

सचमुच कामेंच्छा पर अधिकार है। राष्ट्र सेवी अथवा धर्मव्रती के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य है, चाहे वह विवाहित हो अथवा अविवाहित। गॉधी के अनुसार विवाह से एक पुरुष एवं एक स्त्री मात्र जीवन साथी बनते है– इस जीवन में एवं आने वाले जीवनों में भी। विवाह का आदर्श मांसल प्रेम एवं विषय वासन की तृप्ति नहीं है। अपितु धर्म साधन हेतु सन्तानोत्पत्ति। कामेंच्छा मात्र पुत्रैषण का साधन है गाँधी हिन्दूष्शास्त्र की इस उक्तियों में अक्षरषः विश्वास करते है गाँधी ने तो यहाँ तक लिख है कि सत्य एवं अहिंसा का व्रत बिना ब्रह्मचर्य के संभव नहीं है।

4.3.4 जीभ पर संयम (अस्वाद)

जीभ पर संयम रखे बिना उपर्युक्त वर्णित व्रतों पर खरा उतरना संभव नहीं है यह व्रत विशेषकर ब्रह्मचर्य को साधने का सबसे पहला मंत्र है। यौन पिपासा भी निश्चित रूप से स्वाद से इस तरह जुड़ी हुई है कि बिना इस पर प्रभावी नियंत्रण के पाशविक इच्छाओं पर नियंत्रण संभव नहीं हैं सो एक ब्रह्मचर्य व्रत के साधक को भोजन इस विचार से करना चाहिए कि वह इसे स्वाद के लिए नहीं वरन शरीर मस्तिष्क व आत्मा को पूर्णतः स्वस्थ रखने के लिए खाता है।

4.3.5 अस्तेय

किसी दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति उसकी अनुमति या जानकारी के बिना लेना या यह सोच रखना कि यह बेनामी सम्पत्ति है, निश्चित रूप से चोरी है। लेकिन गाँधीजी के अनुसार चोरी में बिना वास्तविक जरूरत के दूसरों से कुछ ग्रहण करना या तत्काल जरूरत से कहीं अधिकमात्रा में किसी सामान को प्राप्त करना या फिर तय समय सीमा से अधिक उसका उपभोग करना इच्छाओं में बेलगाम गुणोत्तर वृद्धि तथा भविष्य हेतु संचय की असीमित ख्वाहिश जबकि किसी और को इसकी तत्काल जरूरत है। वे सब शामिल हैं। उनकें अनुसार अपनी वैध जरूरत से अधिक सम्पत्ति रखना या उसकी चाह करना चोरी है।

गाँधीजी के अनुसार प्रकृति हमारी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। सिवाय लालच को छोड़कर। इसका तात्पर्य है कि यदि जरूरत भर की चीजों को लिया जाए तो सभी को सब कुछ मिल सकता है समस्या तब होती है जब व्यक्ति लालच के चक्कर में भण्डारण करने लगता है तो इससे दूसरों को वह वस्तु नहीं मिल पाती जिसकी उसे जरूरत है।

4.3.6 अपरिग्रह

सिर्फ यही काफी नहीं है कि संचय अधिक नहीं किया जाए वरन यह भी आवश्यक है कि अपनी शारीरिक

जरूरतों के लिए अत्यंत जरूरी सामानों के अलावा कुछ और नहीं रखा जाए। सो यदि कोई कुर्सी के बिना कार्य करता है तो उसे ऐसा अवश्य करना चाहिए। अतः इस व्रत के अनुपालक अपने जीवन को निरंतर सरलीकृत करेंगे।

अपरिग्रह का अस्तेय के साथ चोली दामन का सम्बन्ध है। कोई चीज वास्तव में चुराई न गई हो तो भी अगर आवश्यकता के बिना उसका संग्रह करते हैं तो वह चोरी का माल समझा जाना चाहिए। परिग्रह का अर्थ है भविष्य के लिए संग्रह करना। सत्य शोधक, प्रेम धर्म का पालन करने वाले कल के लिए कोई चीज संग्रह करके नहीं रख सकता। ईश्वर परिग्रह नहीं करता। वह जिस समय कितनी चीज की जरूरत है उससे अधिक कभी उत्पन्न नहीं करता।

4.4 गौण व्रत

4.4.1 सामाजिक व धार्मिक सम मानसिकता (सर्व धर्म समभाव)

गाँधीजी के अनुसार सत्याग्रही को सामाजिक, धार्मिक तथा लैंगिक समानता में पूर्ण विश्वास होनाचाहिए। उसे जाति, रंग, नस्ल, लिंग, व्यवसाय, धर्म, जन्मस्थान तथा वास–स्थान से इतर सभी लोगों के प्रति सम मानसिकता की भावना का विकास करना चाहिए इसके साथ ही उसे सभी धर्मों के प्रति सम–आधार भाव रखना चाहिए। उसे छुआ–छूत सहित समाज की सभी विद्रूपताओं तथा असंगतियों के उन्मूलन का प्रयास करना चाहिए। उसे सांप्रदायिकता समरसता कायम करते हुए समाज के दबे कुचले तबकों के निरंतर उत्थान में अपने आपको समर्पित कर देना चाहिए।

4.4.2 जीविका श्रम (ब्रेड लेबर)

जीविका श्रम के व्रत से आशय है कि प्रत्येक व्यक्ति विशेषकर एक सत्याग्रही को अपनी जीविका पोषण अपने हाथों से उपार्जित श्रम से करनी चाहिए। क्योंकि प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में शारीरिक श्रम की पहली भूमिका होती है। जीविका श्रम उन लोगों के लिए सच्चा आशीर्वाद है जो अहिंसा का पालन करते हैं। सत्य की पूजा करते हैं तथा ब्रह्मचर्य को अपने जीवन का सहज स्वाभाविक धर्म मानते हैं। यह आज्ञा पालन आत्म सम्मान तथा आत्म दृढ़ता, दूसरों के साथ एकत्व की भावना, सहयोग व व्यवस्था, ऊर्जा साहस, समरसता तथा भौतिक मूल्यों पर दृढ़ रहने जैसी आदतों में निर्णायक भूमिका अदा करता है। गाँधीजी ने जीविकोपार्जन हेतु चरखे को एकमात्र वैश्विक साधन बताया लेकिन उन्होंने कृषि को भी हमेंशा आदर्श व सम्मान के भाव से देखा। कताई के अतिरिक्त गाँधीजी ने कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना सफाई कर्मी खुद होना चाहिए।

उन्होने महसूस किया कि इस समय समाज में निश्चित रूप से कुछ ऐसी जगह मौजूद है जहां सफाई कार्य में संलग्न लोगों को समाज का बहिस्कृत अंग बनने पर मजबूर किया जाता है। सो प्रत्येक को एक सफाई कर्मी के रूप में अपनी रोटी कमानी चाहिए। इस प्रकार यदि सफाई–कर्म को सही रूप में किया जाय तथा इस पर बुद्धिमत्ता पूर्ण विचार किया जाए तो यह मानवीय एकता की वाहक बन सकती है।

4.4.3 स्वदेशी

गाँधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना है था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे। उद्योग धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलम्बन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है। उनका मानना था कि यदि हम एक एक रूपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

स्वदेशी का उपासक अपने निकट के पड़ोसियों की सेवा को प्रथम कर्तव्य मानकर अपने को समर्पित कर देगा इसमें बाकी के लोगों के हितों को छोड़ने या कुर्बान करने की भी नौबत आ सकती है। इन वस्तुओं को उपयोग करना जिसके निर्माता के प्रति यह भाव हो कि वह संभवतः धोखा दे रहा है, सत्य के सरोकारों के विपरीत है। जो सत्य के व्रती मेंनचेस्टर, जर्मनी या फिर अपने खुद के देश के मीलों जहां कि कपट विहीनता के बारे में वे सुनिश्चित नहीं हो में वस्तुओं का प्रयोग किसी प्रकार से नहीं करेंगे।

स्वदेशी व्रत का अनुपालन करने के लिए यह जरूरी है कि वह सादे, सरल तथा फैशन विहीन वस्तुओं का उपयोग करें। उसके कपड़े साधारण ढंग से निर्मित व सादे हों तथा उसमें फैशनेबल बटनों, विदेशी कटावों का भी पूर्णतया निषेध हो। स्वदेशी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू होगी। स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाए तो अच्छा है, परदेशी तो भयानक है ही।

'स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'

स्वदेशी का व्रती ऐसी किसी वस्तु का प्रयोग न करे जिसके निर्माण में ऊपर के व्रतों का उल्लघंन होता हो। इस प्रकार स्वदेशी भावना का व्यक्ति मेंनेचेस्टर जर्मनी अथवा भारत में भी मिल की बनी वस्तुओं का प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि वह निष्चित रुप से नहीं जाना जा सकता कि मिलों में अस्तेय के व्रत का उल्लघंन नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त मिलों में मजदूरों का शोषण तो होता ही है, मिल की मषीनों के निर्माण में उनके जीवन के साथ खेल खेला जाता है। यही नहीं, अत्याधिक गर्मी से अन्य जीवों की भी हत्या होती है। गंभीर चिंतन से मिलों में ऊपर के कई व्रतों का उल्लघंन होता है। अप्राकृतिक ढंग से शरीर को सुन्दर बनाने से ब्रह्मचर्य में भी बाधा होती है। स्वदेशी भावना का विकास कई स्तरों पर हुआ है। आगे चलकर स्वदेशी खादी–हाथ का कटा–बुना कपड़ा हो गया। खादी चरखा है क्योंकि बिना चर्खे क खादी का निर्माण हो नहीं सकता और भी आगे चलकर स्वदेशी स्वराज का पयार्य हो गया। स्वदेशी भावना के पीछे 'स्वयमदासाः तपस्विंन' का मूल विचार है।

गांधी जी का स्वदेशी प्रेम भारत की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक गतिविधि का मूल था। उन्होंने अपने व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक प्रयास द्वारा अधिकाधिक स्वदेशी वस्तुओं का उत्पादन तथा प्रयोग करने का प्रयास किया। इनका मानना था इसके द्वारा न केवल लोगों को रोजगार प्राप्त होगा बल्कि सभी सम्पन्न होंगे उद्योग–धन्धे विकसित होंगे तथा स्वावलंबन को बढ़ावा मिलेगा। स्वदेशी एक विचार है उनका मानना था कि यदि हम एक एक रुपया बचाते हैं तो भारत को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में प्रयास करते हैं। स्वदेशी के द्वारा श्रम को भी सुरक्षित, सुविधापूर्ण तथा लाभकारी बनाने के लिए गाँधी जी स्वदेशी पर सर्वाधिक बल दिये।

4.4.4 निडरता

सत्य और अहिंसा या प्रेम सत्याग्रह के प्रमुख अस्त्र हैं तथा इसके लिए अपेक्षित है पूर्ण निडरता या डरपोक यानी डरने वाला सत्य का अन्वेषण नहीं कर सकता है। सो सत्याग्रहियों को राजा, प्रजा, जाति, परिवार, चोर, डकैत, भयानक, जानवरों तथा मृत्यु तक के भय से अपने आप को आजाद करने की जरूरत है। साहसी बनने तथा अपने आप को बलिदान तथा पीड़ा–भोग हेतु तत्पर रहने के लिए भी निडरता एक आवश्यक शर्त है क्योंकि एक अहिंसक संघर्ष कर्ता को उनकी जरूरत हर वक्त होती है। सभी प्रकार से निडर को बिना पूर्णतः त्यागे अहिंसा के व्रत के मूल रूपेण पालन करना संभव नहीं है।

4.4.5 अस्पृश्यता निवारण

अस्पृश्यता निवारण गाँधी जी का एक व्रत था जो उन्होंने अपनी सामाजिक साधना और जीवनशैली में अपनाया था। यह व्रत उनके ग्यारह (एकादश) व्रतों में शामिल था। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिंदू समाज का एक बड़ा पाप और कलंक माना और इसे मिटाने के लिए कठोर प्रयास किए। उन्होंने अस्पृश्यता को धार्मिक, सामाजिक और मानवीय दृ ष्टि से नकारा और इसके खिलाफ संघर्ष को स्वराज्य की स्थापना से भी जरूरी बताया।

गाँधीजी के एकादश व्रतों में अस्पृश्यता निवारण का व्रत यह संदेश देता था कि किसी भी प्रकार के छूतछायतित्र या अस्पृश्यता के कुप्रथा को समाप्त करना चाहिए। उन्होंने श्हरिजनश शब्द का प्रयोग कर अंत्यजों के साथ समान व्यवहार और मानवाधिकारों की माँग की। इस व्रत के तहत गाँधीजी ने अपने विचारों और व्यवहार से अस्पृश्यता के विरोध का प्रबल संकल्प दिखाया और समाज में इसे खत्म करने के लिए सक्रियता दिखाई।

इस तरह अस्पृश्यता निवारण गाँधीजी का सामाजिक सुधार का व्रत था, जो मानवता, समानता और अहिंसा के सिद्धांतों पर आधारित था और समाज में छूत–छाट तथा भेदभाव के खिलाफ एक शक्तिशाली संदेश था.

4.5 सत्याग्रह संहिता

पूर्व के पृष्ठों पर सत्याग्रह के व्रतों की विस्तार से चर्चा करने के बाद अब हम सत्याग्रह के नियमों की चर्चा करते हैं।

सत्याग्रही डर को अलविदा कह देता है तथा विरोधियों पर विश्वास करने से कभी भयभीत नहीं होता है। यदि विरोधी पक्ष उसके साथ बीसों बार हल करता है तो भी सत्याग्रही उस पर 21वीं बार विश्वास करने के लिए तत्पर रहता है। मानवीय प्रकृति में पूर्णविश्वास सत्याग्रही का मूल धर्म होता है। एक सत्याग्रही का कोई अर्थ नहीं रह जाता यदि वह नैसर्गिक रूप से नियम निष्ठावान न हो और यह उसकी स्वाभाविक नियम निष्ठा ही है जो सर्वोच्च कानून के प्रति उसकी निर्विवाद निष्ठा को सुस्पष्ट करती है। यह निष्ठा उसके अन्तःकरण की आवाज है। जो सभी कानूनों व नियमों से कहीं अधिक प्रभावी है।

चूंकि प्रत्यक्ष कार्यवाही का सबसे ताकतवर व प्रभावी तरीका सत्याग्रह है सो एक सत्याग्रही, सत्याग्रह शुरू करने से पहले अन्य सभी साधनों को पृष्ठभूमि में छोड़ देता है। वह अनवरत व सतत् रूप से सत्ता के अन्यायपूर्ण कायदे कानूनों को चुनौती पेश करेगा, लोकमत को तैयार करेगा, शिक्षित करेगा तथा उन्हें सुप्तावस्था से जाग्रतावस्था में लाएगा, वह अपनी बातों को उन सब श्रोताओं तक सौम्य व शांतिपूर्ण तरीके से पहुंचाएगा जो उनमें रुचि रखते हैं। तथा पसंद करते हैं। इस प्रकार इन तरीकों को सफलतापूर्वक आजमाने व अपनाने के बाद ही वह सत्याग्रह के पवित्र यज्ञ में होम करेगा। लेकिन जब वह अपनी अन्तर्आत्मा की आवाज पर सत्याग्रह के पवित्र जंग में कूदेगा तो फिर वह इससे पीछे कभी न रहेगा।

एक सत्याग्रही के लिए आवश्यक है कि वह संघर्ष के साथ–साथ शांति के प्रतिभी अपनी उत्सुकता कायम रखे। उसे शांति के किसी भी अवसर का पुरजोर स्वागत करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

सत्याग्रह ही मेंरी पहली और अन्तिम सलाह है आजादी का इससे बेहतर कोई मार्ग नहीं हैं सत्याग्रह संहिता में पाशविक शक्तियों के समक्ष घुटने टेकने जैसी कोई बात नहीं है और यदि समर्पण है पीड़ा का न कि संगीन के खौफ के सामने आत्मसमर्पण का।

बोध प्रश्न–2–(1) सत्याग्रही किसको अलविदा कह देता है–

(क) क्रोध (ख) अहम् (ग) डर (घ) चोरी

(2) प्रत्यक्ष कार्यवाही का सबसे ताकतवर व प्रभावी तरीका है –

(क) विश्वास (ख) साधन (ग)सत्याग्रह (घ) आत्मसमर्पण

(3) सत्याग्रही के लिए संघर्ष के साथ–साथ किसके प्रति उत्सुकता कायम रखें।

(क) शांति (ख) विनम्रता (ग) ज्ञान (घ) अन्तर्रात्मा

सारांश

इस इकाई में हमने मुख्य तौर पर सत्याग्रह के व्रत की विस्तृत व्याख्या की है। हमने प्रारम्भ में इसके मुख्य व्रत को बताया जिसके अन्तर्गत हम सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य व्रत, जीभ पर संयम, अस्तेय तथा अपरिग्रह के बारे में जानकारी प्राप्त की। तत्पश्चात सत्याग्रह के गौण व्रत जिसमें स्वदेशी नडरता, विनम्रता, जीविका श्रम तथा सामाजिक व धार्मिक सम मानसिकता की व्याख्या की जो सत्याग्रही के लिए अनिवार्य व्रत है।

सत्याग्रह–संहिता में हमने सत्याग्रही के विभिन्न गुणों का विश्लेषण किया। एक सत्याग्रही, सत्याग्रह शुरू करने से पहले अन्य सभी साधनों को पृष्ठभूमि में छोड़ देता है जो इसकी प्रमुख विशेषता है।

4.6 शब्दावली

आधार : बुनियाद, मूल।

कार्यात्मक : सकारात्मक, उपयोगी, समाज के एकीकरण के लिए अनावश्यक।

अनवरत प्रयास : लगातार प्रयास करना।

जीविका पोषण : जीवन जीने के लिए रोटी की आवश्यकता।

स्वदेशी : अपने देश का, देश में बनने वाला।

प्रत्यक्ष कार्यवाही : जो आंखों के सामने किया गया कार्य हो।

4.7 उपयोगी पुस्तकें

1. एम के गाँधी, सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका
2. एम0के0 गाँधीः हिंद स्वराज
3. यंग इंडिया
4. सम्पूर्ण गाँधी वाड्0मय खण्ड –8
5. गौरीकांत ठाकुर, महात्मा गाँधी फिलास्फी आप सत्याग्रह

खंड–3 (सर्वोदय)

खंड परिचय

महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय का सिद्धांत एक ऐसी विचारधारा है जो समाज के सभी वर्गों के उत्थान और कल्याण पर केंद्रित है। 'सर्वोदय' शब्द का अर्थ है 'सभी का उदय' या 'सबका विकासष। यह विचार गाँधीजी के जीवन दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था, जिसे उन्होंने अपने राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चिंतन में गहराई से समाहित किया। गाँधीजी का मानना था कि सच्चा विकास तभी संभव है जब समाज के सभी वर्गों का समान रूप से उत्थान हो। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि केवल कुछ लोगों या वर्गों की उन्नति पर्याप्त नहीं है, बल्कि समाज के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों का उत्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है। सर्वोदय की अवधारणा में व्यक्तिगत हित और सामूहिक हित के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया गया है।

गाँधीजी ने सर्वोदय के सिद्धांत को जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरणा लेकर विकसित किया। उन्होंने इस पुस्तक का गुजराती में अनुवाद किया और इसे 'सर्वोदय' नाम दिया। गाँधीजी ने इस विचार को भारतीय संदर्भ में विकसित किया और इसे अपने स्वदेशी और स्वराज के विचारों के साथ जोड़ा। सर्वोदय का सिद्धांत अहिंसा और सत्य के गाँधीवादी मूल्यों पर आधारित है। गाँधीजी का मानना था कि समाज का विकास हिंसा या शोषण के माध्यम से नहीं, बल्कि सहयोग, करुणा और न्याय के माध्यम से होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों के कल्याण के लिए काम करना चाहिए, क्योंकि इससे अंततः पूरे समाज को लाभ होगा।

सर्वोदय की अवधारणा में आर्थिक समानता का विचार भी शामिल है। गाँधीजी ने धन के असमान वितरण की आलोचना की और एक ऐसी अर्थव्यवस्था की वकालत की जो सभी के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करे। उन्होंने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को प्रस्तावित किया, जिसके अनुसार संपन्न लोगों को अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए। ग्रामीण विकास सर्वोदय का एक महत्वपूर्ण पहलू था। गाँधीजी का मानना था कि भारत की आत्मा गांवों में निवास करती है, और इसलिए देश का वास्तविक विकास तभी संभव है जब गांवों का विकास हो। उन्होंने ग्राम स्वराज की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें गांव आत्मनिर्भर और स्वशासित इकाइयों के रूप में कार्य करते हैं। उन्होंने कुटीर उद्योगों और हस्तशिल्प को बढ़ावा देने पर जोर दिया, जो न केवल ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करेंगे बल्कि लोगों को रोजगार भी प्रदान करेंगे।

शिक्षा सर्वोदय के एक अन्य महत्वपूर्ण स्तंभ के रूप में उभरी। गाँधीजी ने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की वकालत की जो न केवल बौद्धिक विकास पर केंद्रित हो, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास को भी बढ़ावा दे। उन्होंने बुनियादी शिक्षा या नई तालीम की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें शारीरिक श्रम और व्यावहारिक कौशल को अकादमिक शिक्षा के साथ जोड़ा गया। उनका मानना था कि यह शिक्षा प्रणाली छात्रों को न केवल आत्मनिर्भर बनाएगी, बल्कि उनमें सामाजिक जिम्मेदारी की भावना भी विकसित करेगी। सर्वोदय के सिद्धांत में स्वास्थ्य और स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। गाँधीजी ने स्वस्थ जीवन शैली और प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों को बढ़ावा दिया। उन्होंने समुदाय स्तर पर स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों की आवश्यकता पर जोर दिया, जो सर्वोदय के व्यापक लक्ष्य का एक अभिन्न अंग थे।

गाँधीजी ने सर्वोदय के माध्यम से एक ऐसे समाज की कल्पना की जहां जाति, धर्म या वर्ग के आधार पर कोई भेदभाव न हो। उन्होंने अस्पृश्यता के उन्मूलन और सभी धर्मों के बीच सद्भाव के लिए अथक प्रयास किए। उनका मानना था कि सच्चा सर्वोदय तभी संभव है जब समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और सम्मान मिले। सर्वोदय का सिद्धांत केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं थी, बल्कि गाँधीजी ने इसे व्यावहारिक रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने सर्वोदय आंदोलन की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य समाज में इन विचारों को लागू करना था। स्वतंत्रता के बाद, विनोबा भावे और जयप्रकाश नारायण जैसे उनके अनुयायियों ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया।

सर्वोदय की अवधारणा आज भी प्रासंगिक है, खासकर एक ऐसे समय में जब दुनिया असमानता, पर्यावरण संकट और सामाजिक तनाव जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। यह एक ऐसे समाज का विजन प्रस्तुत करती है जो न्याय, समानता और सतत विकास पर आधारित है। हालांकि इसके कुछ पहलुओं को आधुनिक संदर्भ में अनुकूलित करने की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन इसके मूल सिद्धांत – सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय (सभी का हित, सभी का सुख) – आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने गाँधीजी के समय में थे। निष्कर्ष के रूप में, सर्वोदय का सिद्धांत एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो व्यक्तिगत और सामाजिक विकास को एक साथ जोड़ता है। यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहां प्रत्येक व्यक्ति न केवल अपने लिए, बल्कि पूरे समुदाय के कल्याण के लिए काम करता है। गाँधीजी के इस विचार ने न केवल भारत के स्वतंत्रता आंदोलन को प्रभावित किया, बल्कि दुनिया भर में सामाजिक न्याय और शांति के लिए काम करने वाले लोगों को प्रेरित किया है। आज के वैश्वीकृत और तकनीकी रूप से उन्नत दुनिया में भी, सर्वोदय के मूल्य मानवता के सामने मौजूद चुनौतियों के समाधान में मार्गदर्शक बने हुए हैं।

इकाई–5 में सर्वोदय के अर्थ एवं उत्पत्ति की चर्चा की गई है।

इकाई–6 में साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है।

इकाई–5 अर्थ एवं उत्पत्ति

इकाई की रूपरेखा–

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सर्वोदय की अवधारणा– एक परिचय

5.3 सर्वोदय का अर्थ

5.4 सर्वोदय की उत्पत्ति

5.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

5.4.2 रस्किन के 'अन्टू दिस लास्ट' का प्रभाव

5.4.3 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

5.5 सर्वोदय के मूल सिद्धांत

5.6 सर्वोदय के विभिन्न आयाम एवं समीक्षा

5.7 सर्वोदय और मार्क्सवाद

5.8 निष्कर्ष

5.9 सारांश

5.10 प्रश्न बोध

5.11 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य सर्वोदय की अवधारणा, उसके अर्थ और उत्पत्ति को समझना है। सर्वोदय, जो महात्मा गाँधी के दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, का अर्थ है 'सबका उदय' या 'सर्वजन हित'। यह विचार समाज के सभी वर्गों के कल्याण और उत्थान पर केंद्रित है। इस इकाई में हम सर्वोदय की अवधारणा के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करेंगे। हम इसके ऐतिहासिक विकास, दार्शनिक आधार और समकालीन महत्व पर चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम यह भी समझेंगे कि कैसे सर्वोदय का विचार भारतीय सामाजिक–राजनीतिक चिंतन को प्रभावित करता रहा है। इस इकाई का लक्ष्य छात्रों को सर्वोदय के सिद्धांत से न केवल परिचित कराना है, बल्कि उन्हें इस विचार के व्यावहारिक अनुप्रयोगों और वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता पर गंभीरता से सोचने के लिए प्रेरित करना भी है। अंत में, यह इकाई छात्रों को सर्वोदय के विचार की आलोचनात्मक समझ विकसित करने में मदद करेगी, जो उन्हें समाज और राजनीति के बारे में अपने स्वयं के विचारों को आकार देने में सहायक होगी।

5.1 प्रस्तावना

सर्वोदय का विचार भारतीय दर्शन और राजनीतिक चिंतन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अवधारणा महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित की गई थी और बाद में विनोबा भावे जैसे विचारकों द्वारा आगे बढ़ाई गई। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है 'सबका उदय' या 'सर्वजन हितश। यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ हर व्यक्ति का कल्याण और विकास सुनिश्चित हो। यह विचार भारतीय संस्कृति की गहरी जड़ों से जुड़ा हुआ है और आधुनिक समय में सामाजिक–आर्थिक न्याय के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उभरा है। सर्वोदय न केवल एक दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि यह एक व्यावहारिक जीवन दर्शन भी है जो व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। यह इकाई सर्वोदय के विचार की गहराई से पड़ताल करेगी, इसके ऐतिहासिक विकास

को समझेगी, और इसके विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करेगी। हम यह भी देखेंगे कि कैसे सर्वोदय का विचार आज के वैश्वीकृत और तकनीकी रूप से उन्नत दुनिया में प्रासंगिक हो सकता है।

5.2 सर्वोदय की अवधारणा : एक परिचय

सर्वोदय की अवधारणा भारतीय दर्शन और राजनीतिक चिंतन में एक अनूठा स्थान रखती है। यह विचार महात्मा गाँधी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, जो मानते थे कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब सभी व्यक्तियों का समान रूप से उत्थान हो। सर्वोदय शब्द का अर्थ है 'सबका उदय' या 'सर्वजन हितश। यह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण सुनिश्चित हो, न कि केवल बहुसंख्यक या सबसे शक्तिशाली वर्ग का। सर्वोदय का विचार व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है – आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक। यह अहिंसा, सत्य, न्याय, समानता और स्वावलंबन जैसे मूल्यों पर आधारित है। सर्वोदय समाज में, प्रतिस्पर्धा की जगह सहयोग लेता है, और व्यक्तिगत लाभ के बजाय सामूहिक कल्याण को प्राथमिकता दी जाती है। यह विचार गाँधीजी के ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण के सिद्धांतों से भी जुड़ा हुआ है। सर्वोदय न केवल एक दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि एक व्यावहारिक जीवन दर्शन भी है जो समाज के पुनर्गठन का मार्ग प्रशस्त करता है।

5.3 सर्वोदय का अर्थ

सर्वोदय शब्द संस्कृत के दो शब्दों 'सर्व' (सभी) और 'उदय' (उत्थान) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है 'सबका उदय' या 'सर्वजन हित'। यह अवधारणा एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण और विकास सुनिश्चित हो। महात्मा गाँधी ने इस शब्द को जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' के हिंदी अनुवाद के लिए चुना था। गाँधीजी के अनुसार, सर्वोदय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जहाँ किसी एक वर्ग या समूह के हित के लिए दूसरों का शोषण नहीं होता। इसमें सभी व्यक्तियों के समान अधिकार और अवसर सुनिश्चित किए जाते हैं। सर्वोदय का अर्थ केवल भौतिक समृद्धि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति को भी समाहित करता है। यह विचार व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सामूहिक हित को प्राथमिकता देता है। सर्वोदय में 'अंत्योदय' की अवधारणा भी निहित है, जिसका अर्थ है समाज के सबसे कमजोर वर्ग का उत्थान। इस प्रकार, सर्वोदय एक समग्र दृष्टिकोण है जो समाज के सभी वर्गों के समान विकास पर जोर देता है।

5.4 सर्वोदय की उत्पत्ति

सर्वोदय की अवधारणा की उत्पत्ति कई स्रोतों से हुई है। इसकी जड़ें भारतीय दर्शन और परंपराओं में गहरी हैं, लेकिन इसे आधुनिक रूप महात्मा गाँधी ने दिया। गाँधीजी ने इस विचार को जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरणा लेकर विकसित किया। उन्होंने इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से किया। रस्किन के विचारों ने गाँधीजी को गहराई से प्रभावित किया और उन्होंने इसे भारतीय संदर्भ में विकसित किया। सर्वोदय की अवधारणा में भारतीय दर्शन के कई तत्व भी शामिल हैं, जैसे वसुधैव कुटुम्बकम (पूरी दुनिया एक परिवार है) और सर्वे भवन्तु सुखिनः (सभी सुखी हों) की भावना। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अहिंसा के सिद्धांत ने भी सर्वोदय के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके अलावा, भारत के स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद के समय में सामाजिक–आर्थिक न्याय की आवश्यकता ने भी सर्वोदय के विचार को आकार दिया। इस प्रकार, सर्वोदय की उत्पत्ति विभिन्न दार्शनिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक प्रभावों का एक संश्लेषण है।

5.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सर्वोदय की अवधारणा का विकास 20वीं सदी के प्रारंभ में भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुआ। यह समय भारत में सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन का था, जहाँ राष्ट्रीय आंदोलन के साथ–साथ समाज सुधार की प्रक्रिया भी चल रही थी। महात्मा गाँधी, जो इस काल के प्रमुख नेता थे, ने सर्वोदय के विचार को प्रस्तुत किया। उन्होंने महसूस किया कि स्वतंत्रता के साथ–साथ समाज का समग्र विकास भी आवश्यक है। 19वीं सदी के अंत और 20वीं सदी के प्रारंभ में भारत में औद्योगीकरण और पश्चिमीकरण की प्रक्रिया तेज हो रही थी। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता और आर्थिक शोषण बढ़ रहा था। इस पृष्ठभूमि में, गाँधीजी ने एक ऐसे समाज

की कल्पना की जो सभी के कल्याण पर आधारित हो। उन्होंने पारंपरिक भारतीय मूल्यों और आधुनिक विचारों का संश्लेषण करते हुए सर्वोदय का विचार प्रस्तुत किया। यह विचार न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता, बल्कि सामाजिक–आर्थिक न्याय और आध्यात्मिक उन्नति की भी वकालत करता था। इस प्रकार, सर्वोदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भारत के स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक सुधार आंदोलनों से गहराई से जुड़ी हुई है।

5.4.2 रस्किन के 'अन्टू दिस लास्ट' का प्रभाव

जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' ने सर्वोदय की अवधारणा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महात्मा गाँधी ने 1904 में दक्षिण अफ्रीका में यात्रा के दौरान इस पुस्तक को पढ़ा और इससे गहराई से प्रभावित हुए। उन्होंने इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद 'सर्वोदय' नाम से किया, जो बाद में इस पूरे दर्शन का नाम बन गया। रस्किन की पुस्तक में तीन मुख्य सिद्धांत थे– सबकी भलाई में व्यक्ति की भलाई निहित है, हर व्यवसाय का समान महत्व है, और किसान या श्रमिक का जीवन ही सच्चा जीवन है। इन विचारों ने गाँधीजी के आर्थिक और सामाजिक दर्शन को आकार दिया। रस्किन के विचारों ने गाँधीजी को यह समझने में मदद की कि कैसे एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज का निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार, 'अन्टू दिस लास्ट' ने सर्वोदय के मूल सिद्धांतों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसने बाद में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्र भारत के सामाजिक–आर्थिक विचारों को प्रभावित किया।

5.4.3 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

सर्वोदय की अवधारणा पर भारतीय दर्शन और परंपराओं का गहरा प्रभाव है। वेदांत दर्शन का 'अद्वैत' सिद्धांत, जो सभी जीवों की एकता का प्रतिपादन करता है, सर्वोदय के मूल में है। उपनिषदों का 'वसुधैव कुटुम्बकम' (पूरी दुनिया एक परिवार है) का विचार भी सर्वोदय में प्रतिबिंबित होता है। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के अहिंसा और करुणा के सिद्धांत सर्वोदय के केंद्रीय तत्व हैं। भारतीय परंपरा में 'धर्म' की अवधारणा, जो व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्यों पर जोर देती है, सर्वोदय के सिद्धांतों में दिखाई देती है। भक्ति आंदोलन के समानता और सामाजिक न्याय के विचार भी सर्वोदय में शामिल हैं। इसके अलावा, भारतीय ग्राम व्यवस्था और पंचायत प्रणाली ने सर्वोदय के विकेंद्रीकरण के विचार को प्रभावित किया। इस प्रकार, सर्वोदय भारतीय दर्शन और परंपराओं का एक आधुनिक संश्लेषण है, जो प्राचीन मूल्यों को वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक बनाता है।

5.5 सर्वोदय के मूल सिद्धांत

सर्वोदय के मूल सिद्धांत इसके दार्शनिक और व्यावहारिक पहलुओं को प्रतिबिंबित करते हैं। पहला और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है 'सबका हितश। यह मानता है कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब सभी व्यक्तियों का कल्याण सुनिश्चित हो। दूसरा सिद्धांत है अहिंसा, जो न केवल शारीरिक हिंसा से बचने की बात करता है, बल्कि विचारों और व्यवहार में भी अहिंसा का पालन करने पर जोर देता है। तीसरा सिद्धांत है स्वावलंबन और स्वदेशी, जो आर्थिक स्वतंत्रता और स्थानीय उत्पादन को बढ़ावा देता है। चौथा सिद्धांत है ट्रस्टीशिप, जो संपत्ति के स्वामित्व के बजाय उसके न्यायसंगत उपयोग पर जोर देता है। पांचवां सिद्धांत है विकेंद्रीकरण, जो स्थानीय स्वशासन और ग्राम स्वराज की वकालत करता है। छठा सिद्धांत है श्रम की गरिमा, जो सभी प्रकार के कार्यों के समान महत्व को स्वीकार करता है। सातवां सिद्धांत है सादा जीवन, जो भौतिकवाद के विरोध में सादगी और संयम पर जोर देता है। ये सिद्धांत एक साथ मिलकर सर्वोदय के समग्र दर्शन को आकार देते हैं।

5.6 सर्वोदय के विभिन्न आयाम एवं समीक्षा

इस अर्थ में कह सकते हैं कि महात्मागांधी ने सत्य व अहिंसा के आधार पर सर्वोदय दर्शन के विचार को सैद्धांतिक स्वरूप दिया है जो सामाजिक रूप में गतिशील व कर्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था, दार्शनिक अराजकतावाद एवं स्वराज्य, आर्थिक रूप से विकेन्द्रीकरण एवं ट्रस्टीशिप, धार्मिक रूप से सर्वधर्म समभाव तथा नैतिक रूप से साध्य के साथ साधन की पवित्रता को मानते हैं।

सर्वोदय एक गतिशील वर्णव्यवस्था पर बल देता है। प्राचीन हिन्दूमत के अनुसार मनुष्य एक आध्यात्मिक प्राणी है तथा समाज एक ईश्वरीय तथा दिव्य तंत्र है। मनुष्य पूर्वजन्मों के कर्मानुसार चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व

और शूद्र तथा चार आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास में जीवन व्यतीत करते हुए जन्म व मृत्यु के चक्रों से गुजरता रहता है। मनुष्य तथा समाज की इस अवधारणा को तकनीकी रूप से वर्णाश्रम धर्म की संज्ञा प्रदान की जाती है।

उपरोक्त वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करने के साथ ही महात्मागांधी उसे परिमार्जित करते हैं। सर्वोदय दर्शन में जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था के स्थान पर व्यक्ति के कर्म के आधार पर एक प्रगतिशील वर्ण व्यवस्था को मान्यता दी गयी है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार उच्च अथवा निम्न श्रेणी में आ सकता है। इस व्यवस्था को परिमार्जित करने के प्रयास के अन्तर्गत जातिप्रथा, अस्पृश्यता, दासप्रथा तथा अन्य सामाजिक बुराइयों एवं रूढ़ियों का निरपेक्ष रूप से उन्मूलन तथा बहिस्कार किया गया।

उल्लेखनीय है कि वर्णव्यवस्था को मानने के कारण प्रायः गांधी एवं सर्वोदय दर्शन की आलोचना की जाती है किन्तु यह आलोचना तर्कसंगत नहीं है क्योंकि जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था के बजाय सर्वोदय कर्म पर आधारित प्रगतिशील वर्णव्यवस्था को स्वीकार करता है।

वर्णव्यवस्था की कमियों में सुधार हेतु गांधी जी ने लोकतंत्र तथा अहिंसा को सअंगीकार करने का सुझाव दिया हे। उनके अनुसार लोकतंत्र अपनी पूर्णता को तभी प्राप्त कर सकता है जबकि वह अहिंसा पर आधारित हो। इस प्रकार अहिंसा पर आधारित और व्यवस्थित समाज पूर्ण अरजकतावादी होगा और यह पूर्ण अहिंसक लोकतंत्र रामराज्य के समकक्ष होगा।

सर्वोदय समजा राजनीतिक रूप से विकेन्द्रीकरण पर आधारित स्वराज्य है जिसका अर्थ है –आत्मा का शासन। सर्वोदय एक राज्य विहीन शासन की अवधारणा को स्वीकार करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के अनुशासन से संचालित होगा अर्थात् वाह्य दबाव के बजाय आत्मिक दबाव से मनुष्य स्वतंत्रतापूर्वक जीवन यापन करेगा।

स्पष्टतः सर्वोदय राज्य को व्यक्ति के विकास में बाधक समझता है। उन विचारों के कारण सर्वोदय को व्यावहारिक रूप से व्यक्तिवादी दर्शन तथा आदर्श की दृष्टि से दार्शनिक अराजकतावादी दर्शन समझा जाता है।

सर्वोदय के आर्थिक चिंतन में प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका चलाने का समान अधिकार है। प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना चाहिए और श्रमशील व्यक्ति के जीवन में ही गरिमा पैदा हो सकती है। आर्थिक रूप से विकेन्द्रीकरण के पक्षधर गांधी के सर्वोदयी विचारधारा का केन्द्र नगर न होकर गांव है। सर्वोदय विचारधारा में ऐसे आत्मनिर्भर गांव की रचना की बात की गयी है जहां कोई किसी व्यक्ति का शोषण न करता हो। इस आत्मनिर्भरता की प्राप्ति हेतु लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिया है ताकि प्रत्येक गांव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर अपना विकास कर सके।

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गांधी औद्योगीकरण का विरोध करते हैं बल्कि इसके सीमित प्रयोग का समर्थन करते हैं। गांधी की मान्यता है कि व्यापक औद्योगीकरण में शोषण की सम्भावना निहित है जिससे केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती है और उपभोक्तावादी एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों के विस्तार का खतरा बढ़ जाता है। पुनः मशीन के साथ काम करते–करते मानवीय मूल्यों का ह्रास होने लगता है। यही कारण है कि भारत की विशाल जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में गांधी लघु एवं कुटीर उद्योगों का समर्थन करते हैं। सम्पत्ति के सन्दर्भ में महात्मागांधी ने ट्रस्टीशिप का समर्थन किया है। उनके अनुसार धनी लोगों को स्वेच्छा से यह समझना चाहिए कि उनके पास जो धन है वह समाज की धरोहर है इसलिए वे उस धन में से केवल अपने निर्वाह हेतु आवश्यक धनराशि ले सकते हैं शेष राशि को समाज की दृष्टि से हितकारी कार्यों में लगा देना चाहिए। गांधी जी ''अनटू दिस लास्ट'' की इस युक्ति से प्रभावित थे जिसमें कहा गया है कि सम्प्रति जल की भांति निर्धनों की तरफ बहनी चाहिए।

स्पष्ट है कि ट्रस्टीशिप सिद्धांत की दृष्टि से पूंजीवादी और वितरण की दृष्टि से समाजवादी है। इसमें धनी

लोगों की आत्मा को जगाने तथा हृदय परिवर्तन पर बल दिया जाता है।

धार्मिक रूप से सर्वोदय धर्म को स्वकर्तव्यपालन के अर्थ में ग्रहण करता है। यह धर्म को सम्पूर्ण जीवन की धुरी मानता है। धर्मविहीन अर्थ व्यवस्था अथवा धर्मविहीन राजनीति गांधी को अमान्य है। गांधी जी की स्पष्ट मान्यता है कि भारत की समस्या धर्म नहीं साम्प्रदायिकता है। इसलिए सर्वोदय मूल्य के स्तर पर ''सर्व धर्म समभाव'' पर बल देता है जिसे धर्मनिरपेक्षता से व्यापक माना जाता है। इसमें सभी धर्मों के प्रति समान आदर तथा सहिष्णुता को महत्व दिया जाता है। मूलतः सर्वोदय दर्शन ''विश्व बन्धुत्ववाद'' में विश्वास करता है जो कि वसुधैव कुटुम्बकम की सूत्र पर आधारित है।

सर्वोदय की नैतिक अभिव्यक्ति साध्य से साथ ही साधन की पवित्रता पर बल दिये जाने के रूप में होती है। साध्य एवं साधन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं यदि साधन अनैतिक है तो साध्य अपने अन्तिम रूप में पथभ्रष्ट होने से नहीं बच सकता है।

उपर्युक्त सर्वोदय दर्शन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यक्ति को संयमपूर्ण जीवन यापन की शिक्षा दी गयी है जिसके तहत एकादशव्रतों –सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, शारीरिक श्रम, स्वदेशी, अअस्पृश्यता, निर्भीकता एवं सर्वधर्म समभाव, का पालन अनिवार्य है। नैतिकता पर अत्यधिक बल देते हुए गांधीजी ने कहा है कि मनुष्य को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी कार्यों को नैतिक बल के साथ करना चाहिए।

महात्मागांधी सर्वोदय के सिद्धांत को मूर्तरूप देने के लिए राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में जिस कार्यपद्धति का प्रयोग करते हैं वह नवीन मार्ग सत्याग्रह है। सत्याग्रह दो शब्दों सत्य एवं आग्रह से मिलकर बना है जिसमें सत्य सच्चाई का परिचायक, है जबकि आग्रह नैतिक बल, प्रार्थना तथा आत्मशक्ति का बोध कराता है। वस्तुतः सत्याग्रह सत्य की विजय हेतु किये जाने वाले आध्यात्मिक एवं नैतिक संघर्ष का नाम है। दूसरे शब्दों में किसी अन्याय, दमन, अत्याचार तथा सत्य का नाम है। दूसरे शब्दों में किसी अन्याय, दमन, अत्याचार तथा सत्य के विपरीत किसी तंतु द्वारा किये जा रहे कार्यों के विरोध स्वरूप सत्य की रक्षार्थ अहिंसात्मक रूप से सत्य पर अडिग रहना सत्याग्रह है। उल्लेखनीय है कि व्यक्ति के समाज के विकास में सत्याग्रह अहिंसक क्रान्ति को जन्म देता है इसमें अहिंसा एवं साहस आवश्यक है। इसमें स्वयं को दुःख में डालकर सत्य की विजय की जाती है और विरोधियों का हृदय परिवर्तन होता है।

सर्वोदय की प्राप्ति हेतु एक निश्चित कार्यप्रणाली का स्वरूप महात्मागांधी, विनोबा भावे ने सर्वोदय को साम्ययोग भी कहा है। उनके अनुसार इन्द्रिय निग्रह अध्यात्म व योग की साधना ऐसे माध्यम है जिनसे मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को सीमित कर सकता है।

सर्वोदय के आदर्शों पर आधारित अनेक कार्यक्रम विनोबा भावे के द्वारा शुरू किये गये। जिसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति भूदान, सम्पत्तिदान तथा ग्रामदान आन्दोलन है। भू–दान एवं सम्पत्तिदान का अगला चरण ग्रामदान है जिसके द्वारा सर्वोदय के अनुयायी न केवल आर्थिक असमानता को समाप्त करना चाहते हैं वरन इसके द्वारा भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व को ही अहिंसक ढंग से समाप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करते है।

उपर्युक्त दार्शनिक मान्यतायें मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष से जुड़ी हुई है किन्तु समीक्षक सर्वोदय चिन्तन को एक स्वप्नलोकीय सिद्धांत या यूटोपिया कहते हैं। उनके अनुसार आज की परिस्थितियों ओर भविष्य में भी जटिलतायें इतनी बढ़ती जा रही है जिसमें गांधीवादी लक्ष्य स्वप्न मात्र रग गया है। इनके चिन्तन में व्यवहारिकता का अभाव है विशेषकर राज्यविहीन अवधारणा प्रासंगिक नहीं है। भू–दान आन्दोलन की विफलता पर डा0 लोहिया ने कहा है कि कार्यक्रम बहुत अच्छा है किन्तु कई शताब्दियों में शायद ही पूरा हो। आलोचकों के अनुसार सर्वोदयी चिन्तन में औद्योगिकरण के कारण उत्पन्न हुए श्रमिक वर्ग और वर्तमान स्थितियों में प्रभावशाली भूमिका का निर्वहन कर रहे मध्य वर्ग की उपेक्षा की गयी है। गांधीजी जिस नैतिकता को आदर्श स्वीकार करते हैं। वर्तमान समय में उसकी

अभिव्यक्ति सर्वत्र नहीं दिखाई देती।

आलोचक, सत्याग्रह को उचित कार्यप्रणाली नहीं मानते राजनीतिक आतंकवाद युद्ध आदि में यह प्रासंगिक नहीं रह जाता। इन कमियों के कारण कुछ आलोचक सर्वोदय को अप्रासंगिक एवं असंभव लक्ष्य मानते हैं।

उपर्युक्त आक्षेप के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि महात्मागांधी, विनोबा भावे, जय प्रकाश आदि के द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलन एवं उसके उपरान्त किये गये सफल कार्यक्रम सर्वोदय की महत्ता को दर्शाते हैं। पुनः हम किसी भी सिद्धांत को अव्यवहारिक या अप्रासंगिक मात्र इसलिए नहीं कह सकते कि उसके कुछ लक्ष्य को प्राप्त करना मुश्किल है। हृदय परिवर्तन सह अस्तित्व, बिकेन्द्रीकरण, ट्रस्टीशिप सिद्धांत आदि सर्वोदयी अवधारणा सदैव महत्वपूर्ण रहेगी साथ ही भूमण्डलीकरण के साथ उत्पन्न हो रही नयी समस्याओं कार्पोरेट, उपनिवेशवाद, उपभोक्तावाद, रासायनिक युद्ध, आदि के सन्दर्भ गांधी चिन्तन प्रासंगिक हो गया है।

वस्तुतः सर्वोदय एक उच्च आदर्श है जिसकी तरफ हमें चलना है और इस विश्वदृष्टि को प्राप्त करकने की कोशिश भी की जानी चाहिए। यह बसुधैव कुटुम्बकम और सर्वे भवन्तु सुखिनः के उच्च आदर्श को प्राप्त करने हेतु कृत संकल्प। अतः सर्वोदय तब तक प्रासंगिक है जब तक हम इसके उच्च आदर्श को प्राप्त नहीं कर लेते।

5.7 सर्वोदय और मार्क्सवाद

सर्वोदय का आधार आध्यात्मिक है। मार्क्सवादी भौतिकवादी है। सर्वोदय साध्य व साधन दोनों की पवित्राता पर बल देता है। दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। गाँधीजी के अनुसार साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू है और इनमे बीज और वृक्ष के जैसा सम्बन्ध है।

मार्क्स के अनुसार श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार का साधन अपनाया जा सकता है।

इस सम्बन्ध में नैतिक मापदण्ड पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। गाँधी जी सामाजिक परिवर्तन के लिए अहिंसा, सत्याग्रह और वर्ग सहभाग पर बल देते थे। मार्क्स सामाजिक परिवर्तन के लिए वर्ग संघष पर बल देते हैं।

धर्म मानव जीवन का आधार स्तम्भ है। जीवन के सभी पक्ष धर्म से प्रभावित हैं इसमे राजनीति भी सम्मिलित है। यहाँ धर्म से गाँधी जी का तात्पर्य धर्म के आन्तरिक पक्ष से है अर्थात् मानव कल्याण के प्रेरक सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों से है।

धर्म अफीम है यह मानव को कर्म करने की प्रेरणा न देकर भाग्यवादी बना देता है। धर्म के कारण व्यक्ति में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। धर्म समाज में अन्याय और शोषण को तर्कसंगत और न्यायपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करता है। अतः धर्म त्याज्य है, उसे मानव जीवन से बहिष्कृत कर देना चाहिए।

राज्य शक्ति के बल पर बना संगठन है। यह दार्शनिक, नैतिक ऐतिहासिक आर्थिक कारणों से राज्य की समाप्ति के पक्षबर है। पारस्परिक सहयोग सत्य व अहिंसा पर आधारित समाज को ही वे रामराज्य की संज्ञा प्रदान करते हैं, जो श्रम आधारित होगा। मार्क्स के अनुसार, राज्य की उत्पत्ति का आधार शोषण है। राज्य पूंजीपतियों द्वारा शोषण करने का यंत्र है। संघर्ष व हिंसा द्वारा राज्य की समाप्ति आवश्यक है।

गाँधी सम्पत्ति के स्वामित्व के प्रश्न पर ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। उनके अनुसार, व्यक्तिगत, सम्पत्ति होगी, किन्तु उसमें सम्पत्ति धारक केवल अपनी आवश्यकता के अनुरूप उसका उपयोग करेगा, शेष सम्पत्ति समाज की थाती के रूप में रहेगी।

अतः समाज की सम्पत्ति को समाज की सेवा में लगाने के उद्देश्य से वर्ग संघर्ष और समाजवादी क्रान्ति के माध्यम से पूंजीर्वतियों का स्वत्वहरण आवाश्यक है।

गाँधी श्रम की गरिमा के आधार पर वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं। मार्क्स निजी सम्पत्ति को समाप्त करके वर्गहीन समाज लाना चाहते हैं।

5.8 निष्कर्ष

सर्वोदय की अवधारणा, जिसका अर्थ है 'सबका उदयश, एक समग्र सामाजिक–आर्थिक दर्शन है जो समाज के सभी वर्गों के समान विकास पर जोर देता है। यह महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित और विकसित किया गया था, जिन्होंने इसे जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' और भारतीय दर्शन से प्रेरणा लेकर आकार दिया। सर्वोदय के मूल सिद्धांत जैसे सबका हित, अहिंसा, स्वावलंबन, ट्रस्टीशिप, विकेंद्रीकरण, और श्रम की गरिमा, एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जो न्यायसंगत, समतामूलक और टिकाऊ हो। यह विचार भारत के स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद के समय में महत्वपूर्ण रहा है, और आज भी विकास के वैकल्पिक मॉडल के रूप में प्रासंगिक है। सर्वोदय केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करने वाला एक व्यावहारिक दर्शन भी है। यह वैश्वीकरण और तकनीकी प्रगति के युग में भी मानवीय मूल्यों और सामुदायिक कल्याण की याद दिलाता है। निष्कर्षतः, सर्वोदय एक ऐसे समाज का विजन प्रस्तुत करता है जहाँ विकास का लाभ सभी तक पहुंचे, न कि केवल कुछ चुनिंदा लोगों तक।

5.9 सारांश

सर्वोदय, जिसका अर्थ है 'सबका उदयश, महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित एक सामाजिक–आर्थिक दर्शन है। यह अवधारणा जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरित है और भारतीय दर्शन तथा परंपराओं से गहराई से जुड़ी हुई है। सर्वोदय का मूल विचार है कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब सभी व्यक्तियों का कल्याण सुनिश्चित हो। इसके प्रमुख सिद्धांतों में शामिल हैं– सबका हित, अहिंसा, स्वावलंबन, ट्रस्टीशिप, विकेंद्रीकरण, श्रम की गरिमा, और सादा जीवन। यह दर्शन भारत के स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद के समय में महत्वपूर्ण रहा है, और आज भी विकास के वैकल्पिक मॉडल के रूप में प्रासंगिक है। सर्वोदय न केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा है, बल्कि यह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करने वाला एक व्यावहारिक दर्शन भी है। यह समानता, न्याय, और सामुदायिक कल्याण पर आधारित एक समाज की कल्पना करता है, जहाँ विकास का लाभ सभी तक पहुंचे।

5.10 प्रश्न बोध

1. सर्वोदय का क्या अर्थ है और इसके मूल सिद्धांत क्या हैं?
2. सर्वोदय की अवधारणा के विकास में जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' की क्या भूमिका थी?
3. भारतीय दर्शन और परंपराओं ने सर्वोदय के विचार को कैसे प्रभावित किया?
4. सर्वोदय के दर्शन में 'अंत्योदय' की अवधारणा को समझाइए।

5.10 उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, डॉ रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकेडमी, 2015.
2. गाँधी, एम. के, सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 1951.
3. भावे, विनोबा, सर्वोदय विचार, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, 1954.
4. शर्मा, आर. पी., गाँधीवादी अर्थशास्त्र और सर्वोदय, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2010.
5. दत्त, धीरेंद्र मोहन, भारत में समाजवाद का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, 1961.

इकाई–6 साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय

इकाई की रूपरेखा –

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सर्वोदय की अवधारणा– एक परिचय

6.3 साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय का अर्थ

6.3.1 साम्यवाद की परिभाषा

6.3.2 समाजवाद की परिभाषा

6.3.3 सर्वोदय की परिभाषा

6.4 सर्वोदय की उत्पत्ति और विकास

6.4.1 गाँधीजी का योगदान

6.4.2 विनोबा भावे का प्रभाव

6.5 साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय के मूल सिद्धांत

6.5.1 साम्यवाद के प्रमुख तत्व

6.5.2 समाजवाद के मुख्य आधार

6.5.3 सर्वोदय के आधारभूत विचार

6.6 तीनों विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

6.6.1 समानताएँ

6.6.2 अंतर

6.7 सर्वोदय का आधुनिक समाज पर प्रभाव

6.8 सर्वोदय की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

6.9 निष्कर्ष

6.10 सारांश

6.11 प्रश्न बोध

6.12 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय की अवधारणाओं को समझना और उनके बीच संबंध स्थापित करना है। हम इन तीनों विचारधाराओं के मूल सिद्धांतों, उनकी उत्पत्ति और विकास का अध्ययन करेंगे। साथ ही, हम यह भी जानेंगे कि कैसे ये विचारधाराएँ एक–दूसरे को प्रभावित करती हैं और आधुनिक समाज में उनकी प्रासंगिकता क्या है। इस इकाई के अंत तक, छात्र इन तीनों विचारधाराओं के बीच तुलना करने में सक्षम होंगे और उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रभावों को समझ पाएंगे। हम गाँधीजी और विनोबा भावे जैसे महान विचारकों के योगदान पर भी प्रकाश डालेंगे, जिन्होंने सर्वोदय के विचार को आकार दिया। इसके अलावा, हम इन विचारधाराओं की वर्तमान समय में प्रासंगिकता, उनकी चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर भी चर्चा करेंगे। अंत में, छात्रों को इन विचारों के व्यावहारिक पहलुओं को समझने और उनके दैनिक जीवन में लागू करने के लिए

प्रोत्साहित किया जाएगा।

6.1 प्रस्तावना

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय तीन ऐसी विचारधाराएँ हैं जो समाज के कल्याण और उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं। ये तीनों अवधारणाएँ एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज की स्थापना का लक्ष्य रखती हैं, लेकिन अपने दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में भिन्न हैं। साम्यवाद, जो बौद्ध दर्शन से प्रेरित है, सामाजिक समानता और न्याय पर जोर देता है। समाजवाद, जो पश्चिमी विचारधारा से उत्पन्न हुआ, आर्थिक समानता और संसाधनों के समान वितरण पर केंद्रित है। वहीं सर्वोदय, जो गाँधीवादी दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग है, सभी के उत्थान और कल्याण की बात करता है। यह इकाई इन तीनों विचारधाराओं के विकास, उनके मूल सिद्धांतों और आधुनिक समाज पर उनके प्रभाव का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करेगी। हम यह भी देखेंगे कि कैसे ये विचारधाराएँ एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं और कैसे वे एक बेहतर समाज के निर्माण में योगदान दे सकती हैं।

6.2 सर्वोदय की अवधारणा : एक परिचय

सर्वोदय शब्द का अर्थ है 'सबका उदय' या 'सबका उत्थानश। यह एक ऐसी विचारधारा है जो समाज के हर वर्ग और व्यक्ति के कल्याण पर जोर देती है। सर्वोदय का मूल विचार यह है कि समाज का विकास तभी संभव है जब उसके सभी सदस्यों का समान रूप से उत्थान हो। यह विचारधारा व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सामूहिक हित को महत्व देती है। सर्वोदय की अवधारणा मुख्य रूप से महात्मा गाँधी द्वारा विकसित की गई थी, जिन्होंने जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरणा ली थी। गाँधीजी ने इस विचार को भारतीय संदर्भ में विकसित किया और इसे अपने सामाजिक–आर्थिक दर्शन का आधार बनाया। सर्वोदय अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और श्रम की गरिमा जैसे मूल्यों पर आधारित है। यह विचारधारा ग्राम स्वराज, स्वदेशी और ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धांतों को भी समाहित करती है। सर्वोदय का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जहाँ शोषण, असमानता और अन्याय का कोई स्थान न हो।

महात्मागांधी का ध्येय एक ऐसी नवीन सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना था जो कि सत्य और अहिंसा पर आधारित हो। मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण न हो, विषमता के स्थान पर समानता, प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग और संघर्ष के स्थान पर सद्भावना व प्रेम हो। इस पूर्ण अथवा अहिंसक आदर्श को राम राज्य की संज्ञा दी जाती है। इस आदर्श को स्वीकार करने मात्र से महात्मागांधी संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने सर्वोदय के सिद्धांत पर आधारित समाज के विकास की अवधारणा प्रस्तुत की जिसके फलस्वरूप मनुष्य की एक सर्वथा नवीन अवधारणा का आविर्भाव सर्वोदय के रूप में होता है।

सर्वोदय दर्शन मूलतः एक आध्यात्मिक दर्शन है जिसे भारतीय चिन्तन धारा के रूप में स्वीकार किया जाता है। उपनिषदों में ''सर्वेभवन्तु सुखिनः'' का उल्लेख मिलता है। गीता में कहा गया है ''सर्वभूतं हितेरत''। जैनमुनि समन्तभद्र कहते हैं ''सर्वापदामन्तकर निरतं सर्वोदयं तीर्थमिदं तदैव'' इसी में महत्मागांधी के उपरान्त विनोवा भावे ने इस सिद्धांत को विकसित किया एवं जय प्रकाश नारायण, धीरेन्द्र मजूमदार आदि राजनीतिक विचारकों ने समय–समय पर सर्वोदय दर्शन के आम जनता तक पंहुचाया। यद्यपि सर्वोदय दर्शन के विकास में ''अनटू द लास्ट'' विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जिसे जान रस्किन ने लिखा है इसके अतिरिक्त थोरो, टालस्टाय आदि ने भी सर्वोदय दर्शन को मूल आधार देने का कार्य किया है।

महात्मागांधी ने ''अनटू द लास्ट'' का गुजराती में अनुवाद–'सर्वोदय' शीर्षक से किया है जिसमें कहा गया है कि सबके हित में ही व्यक्ति का हित निहित है। किसी भी व्यक्ति का कार्य छोटा या बड़ा नहीं है एवम् श्रमिक जीवन ही एकमात्र जीने योग्य जीवन है। एक प्रश्न के उत्तर में विनोबा भावे ने सर्वोदय के पांच आधारभूत तत्वों को उद्धृत किया है –

1. जाति रहित वर्ग रहित समाज की स्थापना।
2. सार्वजनिक क्षेत्र में स्वच्छ एवं कुशल प्रशासन

3. सामाजिक व्यवस्था का आधार विकेन्द्रीकरण
4. समस्त शक्ति जनता को प्राप्त होना
5. अधिकारी वर्ग द्वारा अपने आप को जनता का सेवक समझना।

दादा धर्माधिकारी के विचार में सर्वोदय का आदर्श अद्वैत है और उसकी नीति समन्वय है। जिसे वर्गविहीन जाति विहीन और शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति और समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन और अवसर मिलेंगें। यह क्रान्ति सत्य और अहिंसा के द्वारा ही संभव है।

स्पष्ट है कि सर्वोदय एक ऐसे समग्र समाज कके रचना का दावा करता है। जिसमें सभी का, सभी प्रकार से उत्थान संभव है। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है 'सभी का एवं सभी प्रकार से उदय' अर्थात् मनुष्य का भौतिक और आध्यात्मिक दोनों तरीके से उत्थान होना। महात्मागांधी ने सर्वोदय शब्द का प्रयोग ऐसी जीवन पद्धति या विचारधारा को इंगित करने के लिए किया है। जो सत्य एवं अहिंसा पर आधारित है। उसमें समाज के सभी अंगों का समग्र विकास या उदय का मन्तव्य निहित है।

इस दृष्टि से यह दर्शन अपने समकालीन अन्य सिद्धांतों मार्क्सवाद, लोकतंत्र आदि से मात्रामूलक, गुणात्मक एवं भावनात्मक रूप से व्यापक है। मात्रात्मक दृष्टि से देखें तो बेन्थम और मिल द्वारा स्थापित उपयोगितावाद अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख पर बल देता है। जबकि लोकतंत्र बहुमत के कल्याण की बात करता है। इन सबके विपरीत सर्वोदय सभी व्यक्तियों के उदय की कामना करता है जिससे अखण्डता, समग्रता एवम् अद्वैत का बोध होता है।

गुणात्मक दृष्टि से देखें तो उपयोगितावाद एवं मार्क्सवाद सामान्यतः भौतिक सुखों को महत्व देते हैं। वहीं सर्वोदय मनुष्य जीवन के विभिन्न पक्षों के समग्र उत्थान की बात करता है। वेदान्त से प्रभावित गांधी प्रत्येक मानव में समान आत्मा को उपस्थित मानते हैं। इसलिए समस्त मनुष्यों में किसी प्रकार के भेदभाव का निषेध करते हैं।

भावनात्मक रूप से सर्वोदय डार्विन की तरह मानव के संघर्ष को नहीं मानता न ही जूलियन हक्सले की तरह ''जियो और जीने दो'' कहकर मानव को परस्पर तटस्थ बनाता है बल्कि सर्वोदय प्रत्येक मानव से प्रेम करने की बात करता है। इस सन्दर्भ में विनोबा भावे का कथन महत्वपूर्ण है कि ''जितनी हवा है, जितना पानी है, जितनी रोशनी है और जितनी धरती है वह सारी की सारी सबकी है'' – यही व्यापक दृष्टिकोण है।

सर्वोदय दर्शन में जीवन का चरम लक्ष्य व्यक्ति का आत्मिक विकास है। जिसे सत्य एवं अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी के लिए सत्य स्वयमेव सत्ता है, सत्य ईश्वर है और ईश्वर सत्य है। उनका विश्वास है कि प्रत्येक वस्तु व प्रत्येक प्राणी एक अपरिवर्तनीय नियम से संचालित है और यह नियम ईश्वर है जिसे गांधी सत्य के रूप में परिभाषित करते हैं। यह सर्वोच्च और अन्तिम सत्य व्यवहारिक जगत में अहिंसा के रूप में अभिव्यक्त होता है जिससे प्रत्येक प्राणी संचालित है। सत्य और अहिंसा साध्य और साधन है किन्तु साधन और साध्य एक–दूसरे से अपृथक है। सत्य साध्य अपने अहिंसक साधन की अन्तिम परिणति है।

6.3 साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय का अर्थ

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय तीनों ही समाज के कल्याण और उत्थान से संबंधित विचारधाराएँ हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में अंतर है। साम्यवाद, जो बौद्ध दर्शन से प्रेरित है, सामाजिक समानता और न्याय पर जोर देता है। यह मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है और चरम विचारों से बचने की सलाह देता है। समाजवाद एक आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था है जो उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व और नियंत्रण की वकालत करती है। यह आर्थिक असमानता को कम करने और संसाधनों के समान वितरण पर जोर देती है। सर्वोदय, जो गाँधीवादी दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग है, सभी के उत्थान और कल्याण की बात करता है। यह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व पर बल देता है। सर्वोदय का लक्ष्य एक ऐसे समाज की

स्थापना है जहाँ हर व्यक्ति का समग्र विकास हो और कोई भी पीछे न रहे।

6.4 सर्वोदय की उत्पत्ति और विकास सर्वोदय की अवधारणा का विकास

महात्मा गाँधी द्वारा किया गया, लेकिन इसकी जड़ें भारतीय संस्कृति और दर्शन में गहरी हैं। गाँधीजी ने जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरणा लेकर इस विचार को विकसित किया। उन्होंने भारतीय परंपराओं और मूल्यों के साथ इस विचार को जोड़ा और इसे एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक दर्शन का रूप दिया। गाँधीजी के बाद, विनोबा भावे ने सर्वोदय आंदोलन को आगे बढ़ाया। उन्होंने भूदान और ग्रामदान जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सर्वोदय के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप दिया। जयप्रकाश नारायण जैसे अन्य नेताओं ने भी इस विचारधारा को समृद्ध किया। सर्वोदय आंदोलन ने स्वतंत्रता के बाद भारत में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने का प्रयास किया। यह आंदोलन ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय जैसे क्षेत्रों में सक्रिय रहा। हालांकि समय के साथ इसका प्रभाव कम हुआ है, फिर भी सर्वोदय के मूल सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं।

6.4.1 गाँधीजी का योगदान

महात्मा गाँधी ने सर्वोदय की अवधारणा को विकसित करने और उसे व्यावहारिक रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन्टू दिस लास्ट' से प्रेरणा लेकर सर्वोदय के विचार को भारतीय संदर्भ में विकसित किया। गाँधीजी ने सर्वोदय को अपने सामाजिक–आर्थिक दर्शन का आधार बनाया और इसे स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ा। उन्होंने अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, और श्रम की गरिमा जैसे मूल्यों को सर्वोदय का अभिन्न अंग बनाया। गाँधीजी ने ग्राम स्वराज की अवधारणा को प्रस्तुत किया, जिसमें गांवों को आत्मनिर्भर और स्वशासित इकाइयों के रूप में विकसित करने की बात की गई। उन्होंने स्वदेशी और खादी आंदोलन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने का प्रयास किया। गाँधीजी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को भी प्रतिपादित किया, जिसमें धनी लोगों को समाज के ट्रस्टी के रूप में कार्य करने की बात कही गई। उनके इन विचारों ने सर्वोदय को एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक दर्शन का रूप दिया, जो भारत के स्वतंत्रता संग्राम और उसके बाद के पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा।

6.4.2 विनोबा भावे का प्रभाव

विनोबा भावे ने गाँधीजी के विचारों को आगे बढ़ाते हुए सर्वोदय आंदोलन को एक नई दिशा दी। उन्होंने 1951 में भूदान आंदोलन की शुरुआत की, जिसका उद्देश्य भूमिहीन किसानों को जमीन उपलब्ध कराना था। यह आंदोलन जमींदारों से स्वैच्छिक दान के रूप में जमीन प्राप्त करने पर आधारित था। भूदान की सफलता के बाद विनोबा ने ग्रामदान की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसमें पूरे गांव को एक इकाई मानकर सामूहिक विकास पर जोर दिया गया। विनोबा ने सर्वोदय के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप देने के लिए पदयात्राएं कीं और लोगों से सीधा संवाद स्थापित किया। उन्होंने शांति सेना की स्थापना की, जो सामाजिक सद्भाव और अहिंसक समाज निर्माण के लिए काम करती थी। विनोबा ने सर्वोदय के विचारों को आध्यात्मिक आधार प्रदान किया और इसे केवल एक सामाजिक–आर्थिक दर्शन से आगे बढ़ाकर एक जीवन पद्धति के रूप में प्रस्तुत किया। उनके प्रयासों ने सर्वोदय आंदोलन को जन आंदोलन का रूप दिया और इसे भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचाया।

6.5 साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय के मूल सिद्धांत

साम्यवाद के मूल सिद्धांतों में संतुलित जीवन शैली, मध्यम मार्ग का अनुसरण, और सामाजिक समानता शामिल हैं। यह विचारधारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अतिवाद से बचने पर जोर देती है। समाजवाद के प्रमुख सिद्धांतों में उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व, आर्थिक समानता, और वर्गहीन समाज की स्थापना शामिल हैं। यह पूंजीवाद के विरोध में खड़ा है और श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा पर बल देता है। सर्वोदय के आधारभूत विचारों में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, सर्वधर्म समभाव, और ट्रस्टीशिप शामिल हैं। यह ग्राम स्वराज और स्वदेशी जैसे सिद्धांतों को भी महत्व देता है। सर्वोदय का लक्ष्य समाज के सभी वर्गों का समग्र विकास है। ये तीनों विचारधाराएँ समाज में न्याय, समानता और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में अंतर है।

6.5.1 साम्यवाद के प्रमुख तत्व

साम्यवाद, जो बौद्ध दर्शन से प्रेरित है, कई महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित है। इसका मूल तत्व 'मध्यम मार्ग' है, जो अतिवाद से बचने और संतुलित जीवन जीने पर जोर देता है। साम्यवाद व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में संतुलन की आवश्यकता पर बल देता है। यह विचारधारा सही दृष्टि, सही संकल्प, सही वाणी, सही कर्म, सही जीविका, सही प्रयास, सही स्मृति और सही समाधि जैसे अष्टांगिक मार्ग के सिद्धांतों को महत्व देती है। साम्यवाद में करुणा और मैत्री के भाव को विशेष स्थान दिया गया है, जो सामाजिक सद्भाव और शांति के लिए आवश्यक माने जाते हैं। यह विचारधारा अनित्यता, दुःख और अनात्म के सिद्धांतों को स्वीकार करती है, जो व्यक्ति को वास्तविकता को समझने में मदद करते हैं। साम्यवाद में आत्म–जागरूकता और आत्म–सुधार पर विशेष ध्यान दिया जाता है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तन का आधार बनते हैं। यह विचारधारा हिंसा, लोभ और मोह से मुक्ति पर जोर देती है, जो एक न्यायसंगत और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण के लिए आवश्यक माने जाते हैं।

6.5.2 समाजवाद के मुख्य आधार

समाजवाद एक आर्थिक और राजनीतिक विचारधारा है जो समाज में आर्थिक समानता और न्याय स्थापित करने का प्रयास करती है। इसका मूल सिद्धांत उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व है, जिसका उद्देश्य संपत्ति के केंद्रीकरण को रोकना और समाज के सभी वर्गों के बीच संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करना है। समाजवाद पूंजीवाद के विरोध में खड़ा है और श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा पर बल देता है। यह विचारधारा वर्गहीन समाज की स्थापना का लक्ष्य रखती है, जहां शोषण और आर्थिक असमानता का अंत हो। समाजवाद में राज्य की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है, जो आर्थिक नियोजन और संसाधनों के वितरण में प्रमुख भूमिका निभाता है। यह विचारधारा सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा, निरूशुल्क शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा जैसे उपायों पर जोर देती है। समाजवाद लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने का समर्थन करता है और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ सामूहिक हित के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

6.5.3 सर्वोदय के आधारभूत विचार

सर्वोदय, जिसका अर्थ है 'सबका उदयश, एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक दर्शन है जो समाज के सभी वर्गों के समग्र विकास पर केंद्रित है। इसके मूल सिद्धांतों में अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह, और श्रम की गरिमा शामिल हैं। सर्वोदय व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व पर बल देता है। यह विचारधारा ग्राम स्वराज की अवधारणा को महत्व देती है, जिसमें गांवों को आत्मनिर्भर और स्वशासित इकाइयों के रूप में विकसित करने की बात की गई है। स्वदेशी और खादी जैसे सिद्धांत सर्वोदय के अभिन्न अंग हैं, जो स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने पर जोर देते हैं। सर्वोदय ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को भी महत्व देता है, जिसमें धनी लोगों को समाज के ट्रस्टी के रूप में कार्य करने की अपेक्षा की जाती है। यह विचारधारा शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय पर विशेष ध्यान देती है। सर्वोदय का लक्ष्य एक ऐसे समाज की स्थापना है जहां शोषण, असमानता और अन्याय का कोई स्थान न हो और हर व्यक्ति का समग्र विकास हो सके।

6.6 तीनों विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय में कई समानताएँ हैं। ये सभी समाज में न्याय, समानता और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। तीनों ही विचारधाराएँ व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सामूहिक हित को महत्व देती हैं। हालांकि, इनके दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में अंतर है। साम्यवाद मध्यम मार्ग पर जोर देता है, जबकि समाजवाद आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की बात करता है। सर्वोदय इन दोनों से अलग, व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों के महत्व पर बल देता है। समाजवाद राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक मानता है, जबकि सर्वोदय स्वैच्छिक कार्यों और व्यक्तिगत नैतिकता पर अधिक निर्भर करता है। साम्यवाद मुख्य रूप से एक दार्शनिक दृष्टिकोण है, जबकि समाजवाद और सर्वोदय राजनीतिक और सामाजिक आंदोलनों के रूप में भी विकसित हुए हैं। इन तीनों विचारधाराओं का लक्ष्य एक बेहतर समाज का निर्माण है, लेकिन उस लक्ष्य तक पहुंचने के मार्ग अलग–अलग हैं।

6.6.1 समानताएँ

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय में कई महत्वपूर्ण समानताएँ हैं। सबसे पहले, ये तीनों विचारधाराएँ समाज में न्याय, समानता और सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती हैं। इनका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहाँ हर व्यक्ति का कल्याण हो। दूसरा, ये सभी व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर सामूहिक हित को महत्व देती हैं। तीसरा, इन तीनों विचारधाराओं में शोषण, असमानता और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रतिबद्धता है। चौथा, ये सभी मानव मूल्यों और नैतिकता को महत्व देती हैं, हालांकि इनके दृष्टिकोण अलग–अलग हो सकते हैं। पांचवाँ, ये तीनों विचारधाराएँ समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान पर विशेष ध्यान देती हैं। छठा, इनमें से प्रत्येक एक आदर्श समाज की कल्पना करती है जहाँ सभी लोग समृद्ध और खुशहाल हों। सातवाँ, ये सभी विचारधाराएँ व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तन को एक साथ देखती हैं, यानी व्यक्ति के विकास के साथ–साथ समाज का विकास भी आवश्यक मानती हैं। अंत में, ये तीनों विचारधाराएँ मानते हैं कि आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक और नैतिक विकास भी महत्वपूर्ण है।

6.6.2 अंतर

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय में कुछ महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। पहला, साम्यवाद मुख्य रूप से एक दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण है, जबकि समाजवाद एक राजनीतिक–आर्थिक विचारधारा है और सर्वोदय एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक दर्शन है। दूसरा, साम्यवाद व्यक्तिगत आचरण और मध्यम मार्ग पर जोर देता है, जबकि समाजवाद संरचनात्मक परिवर्तन पर केंद्रित है और सर्वोदय दोनों पहलुओं को महत्व देता है। तीसरा, समाजवाद राज्य के हस्तक्षेप को आवश्यक मानता है, जबकि सर्वोदय स्वैच्छिक कार्यों और व्यक्तिगत नैतिकता पर अधिक निर्भर करता है। साम्यवाद राज्य की भूमिका पर कम ध्यान देता है। चौथा, समाजवाद वर्ग संघर्ष को महत्व देता है, जबकि सर्वोदय सहयोग और सामंजस्य पर जोर देता है। साम्यवाद इन दोनों से अलग, व्यक्तिगत मध्यम मार्ग पर ध्यान केंद्रित करता है। पांचवाँ, साम्यवाद और सर्वोदय में आध्यात्मिक पहलू महत्वपूर्ण है, जबकि समाजवाद मुख्य रूप से भौतिक परिवर्तन पर केंद्रित है। अंत में, इन तीनों विचारधाराओं का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संदर्भ अलग–अलग है, जो उनके दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है।

6.7 सर्वोदय का आधुनिक समाज पर प्रभाव

सर्वोदय की विचारधारा ने आधुनिक भारतीय समाज को कई तरह से प्रभावित किया है। इसने ग्रामीण विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और सामाजिक न्याय के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सर्वोदय आंदोलन ने भूदान और ग्रामदान जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से भूमि सुधार और ग्रामीण पुनर्निर्माण को प्रोत्साहित किया। इसने स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के विचारों को बढ़ावा देकर स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत किया। सर्वोदय के सिद्धांतों ने पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा, सर्वोदय ने सामाजिक समरसता और धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया है। हालांकि वर्तमान में सर्वोदय आंदोलन की गति धीमी हो गई है, फिर भी इसके मूल सिद्धांत जैसे अहिंसा, सत्य और सेवा आज भी प्रासंगिक हैं और विभिन्न सामाजिक संगठनों और कार्यकर्ताओं को प्रेरित कर रहे हैं।

6.8 सर्वोदय की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

सर्वोदय की विचारधारा आज कई चुनौतियों का सामना कर रही है। वैश्वीकरण और तीव्र आर्थिक विकास के इस युग में, सर्वोदय के मूल्यों को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है। भौतिकवाद और उपभोक्तावाद की बढ़ती प्रवृत्ति सर्वोदय के सादगी और अपरिग्रह के सिद्धांतों के विपरीत है। राजनीतिक स्तर पर भी सर्वोदय के विचारों को लागू करना कठिन हो गया है। हालांकि, इन चुनौतियों के बावजूद सर्वोदय की संभावनाएँ अभी भी मौजूद हैं। पर्यावरण संकट और सामाजिक असमानता जैसी वैश्विक समस्याओं के समाधान में सर्वोदय के सिद्धांत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। सामुदायिक सशक्तिकरण और सहकारी आंदोलनों के माध्यम से सर्वोदय के विचारों को पुनर्जीवित किया जा सकता है। शिक्षा और युवा पीढ़ी के बीच जागरूकता फैलाकर सर्वोदय के मूल्यों को आगे बढ़ाया जा सकता है।

6.9 निष्कर्ष

साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय तीनों ही विचारधाराएँ एक न्यायसंगत और समतामूलक समाज की स्थापना का लक्ष्य रखती हैं। हालांकि इनके दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में अंतर है, लेकिन ये सभी मानव कल्याण और सामाजिक न्याय के लिए प्रतिबद्ध हैं। सर्वोदय, जो इन तीनों में सबसे व्यापक है, न केवल आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन बल्कि व्यक्तिगत नैतिक उत्थान पर भी जोर देता है। यद्यपि वर्तमान परिदृश्य में सर्वोदय आंदोलन की गति धीमी हो गई है, फिर भी इसके मूल सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं। वैश्विक चुनौतियों जैसे पर्यावरण संकट, आर्थिक असमानता और सामाजिक अशांति के समाधान में सर्वोदय के विचार महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। भविष्य में, इन विचारधाराओं को समकालीन संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित करने और उन्हें व्यावहारिक रूप देने की आवश्यकता है ताकि एक अधिक न्यायसंगत और समावेशी समाज का निर्माण किया जा सके।

6.10 सारांश

इस इकाई में हमने साम्यवाद, समाजवाद और सर्वोदय की अवधारणाओं का विस्तृत अध्ययन किया। हमने देखा कि कैसे ये तीनों विचारधाराएँ समाज के कल्याण और उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं, लेकिन अपने दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली में भिन्न हैं। साम्यवाद, जो बौद्ध दर्शन से प्रेरित है, मध्यम मार्ग और संतुलित जीवन शैली पर जोर देता है। समाजवाद आर्थिक समानता और संसाधनों के समान वितरण पर केंद्रित है। सर्वोदय, जो गाँधीवादी दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग है, सभी के उत्थान और कल्याण की बात करता है। हमने सर्वोदय की उत्पत्ति, विकास और आधुनिक समाज पर इसके प्रभाव का भी अध्ययन किया। साथ ही, हमने सर्वोदय की वर्तमान चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर भी चर्चा की। अंत में, हमने देखा कि इन विचारधाराओं की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है और वे वर्तमान सामाजिक–आर्थिक समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

6.11 प्रश्न बोध

1. सर्वोदय की अवधारणा को विस्तार से समझाइए। इसके मूल सिद्धांत क्या हैं?
2. साम्यवाद , समाजवाद और सर्वोदय में क्या समानताएँ और अंतर हैं? तुलनात्मक विवेचना कीजिए।
3. सर्वोदय आंदोलन के विकास में गाँधीजी और विनोबा भावे के योगदान पर प्रकाश डालिए।
4. आधुनिक समाज पर सर्वोदय के प्रभाव की विवेचना कीजिए। क्या आप मानते हैं कि सर्वोदय के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं?
5. सर्वोदय की वर्तमान चुनौतियाँ क्या हैं? इन चुनौतियों का सामना करने के लिए क्या किया जा सकता है?

6.12 उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, डॉ रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकेडमी, 2015
2. सिंह, राजेंद्र, गाँधी और सर्वोदय– एक विश्लेषण, प्रभात प्रकाशन, 2018.
3. शर्मा, विनोद कुमार, महात्मा गाँधी का सर्वोदय दर्शन, राजकमल प्रकाशन, 2015.
4. त्रिपाठी, रामनाथ, सर्वोदय– गाँधीजी का समाज दर्शन, वाणी प्रकाशन, 2012.
5. गुप्ता, रमेश चंद्र, गाँधी और सर्वोदय समाज, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2019.
6. मिश्रा, अनुपम, 'सर्वोदय की अवधारणा और गाँधी, राजपाल एंड संस, 2017

खण्ड–4 स्वदेशी

स्वदेशी आर्थिक विकल्पों को नैतिक दिशा प्रदान करता है तथा इससे एक मानवीय और समतावादी सामाजिक व्यवस्था का आधार बनता है। यह भाईचारे और सहयोग को मजबूती प्रदान करता है। 23 फरवरी 1935 को नागपुर के ग्रामीण कार्यकर्ताओं की बैठक में गाँधीजी ने कहा– अगर आप अपनी तरह अपने पड़ोसी को प्रेम करेंगे तो वे भी आपकों वैसा ही प्रेम प्रदान करेंगे। आगे गाँधीजी कहते है कि– वास्तव में स्वदेशी ही एक ऐसा सिद्धान्त है जिसमें मानवता व प्रेम समाहित है। वास्तव में स्वदेशी, प्रेम और मातृभूमि की सेवा में है। मानव की सेवा हम अपने ज्ञान तथा जिस संसार में हम रहते हैं के दायित्व से अलग नहीं है। इसका मतलब है कि हम जिसे जानते है तथा पड़ोसी की सेवा के द्वारा देशवासियों की सेवा कर रहें है। सही मायने में यह मानवतावाद या मानवता से प्रेम के अलावा और कुछ नहीं हैं।

प्रस्तुत खण्ड में स्वदेशी का विचार दो इकाइयों में व्यक्त किया गया है। इकाई 7 स्वदेशी की अवधारणा और उसके आयामों की चर्चा की गयी है। इकाई 8 में स्वराज की चर्चा है, स्वदेशी की अवधारणा की सम्पूर्णता स्वराज में अभिव्यक्त होती है।

7. स्वदेशी की अवधारणा

7.0 उद्देश्य

7.1 इकाई का परिचय

7.2 स्वदेशी का अर्थ एवं विकास

7.3 गाँधीजी की दृष्टि में स्वदेशी

7.3.1 स्वदेशी के प्रमुख आयाम

7.3.2 गाँधीजी की दृष्टि का मौलिकपन

7.4 स्वदेशी का आर्थिक दर्शन

7.4.1 स्वदेशी के आर्थिक दर्शन के प्रमुख आयाम

7.5 स्वदेशी का सामाजिक और राजनीतिक आयाम

7.5.1 स्वदेशी का सामाजिक आयाम

7.5.2 स्वदेशी का राजनीतिक आयाम

7.6 आलोचनात्मक दृष्टि

7.7 सारांश

7.8 बोध प्रश्न

7.9 उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद छात्ररू

1. स्वदेशी की परिभाषा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझ सकेंगे।
2. गाँधीजी की स्वदेशी सम्बन्धी अवधारणा को दार्शनिक दृष्टि से विश्लेषित कर सकेंगे।
3. स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के बीच संबंध स्पष्ट कर सकेंगे।
4. स्वदेशी आंदोलन का सामाजिक–राजनीतिक प्रभाव समझ पाएँगे।
5. स्वदेशी की प्रासंगिकता को आज के वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के संदर्भ में परख सकेंगे।

7.1 इकाई का परिचय

गाँधीजी के दर्शन में स्वदेशी की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह केवल आर्थिक नीति का प्रश्न नहीं था, बल्कि एक गहन दार्शनिक, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण था। गाँधीजी के लिए स्वदेशी आत्मनिर्भरता, आत्मगौरव, नैतिक जीवन और सत्य–अहिंसा की साधना से जुड़ा हुआ था। यह आत्म–अनुशासन और आत्म–बलिदान की चेतना है, जो व्यक्ति और समाज दोनों को आत्मनिर्भर, स्वतंत्र और न्यायपूर्ण बनाती है।

इस इकाई में हम स्वदेशी के दार्शनिक आधार, गाँधी का व्याख्यान, आर्थिक–सामाजिक महत्त्व, आलोचनाएँ, और समकालीन प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

7.2 स्वदेशी का अर्थ एवं विकास

स्वदेशी केवल एक राजनीतिक नारा नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी दार्शनिक चेतना है जो व्यक्ति, समाज और

राष्ट्र की जीवन–पद्धति को दिशा प्रदान करती है। गाँधीजी ने इसे व्रत, धर्म और आचार–दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया। इस भाग में हम स्वदेशी की दार्शनिक जड़ें और ऐतिहासिक विकास क्रम को विस्तार से समझेंगे।

'स्वदेशी' शब्द दो भागों से मिलकर बना हैकृ स्व. देशी। स्व का अर्थ है – अपना, स्वयं का, आत्मा या आंतरिक सत्ता। देशी का अर्थ है – अपने देश का, अपने भूभाग से जुड़ा हुआ। अर्थात् स्वदेशी का तात्पर्य है – अपने देश की वस्तुओं, संसाधनों, उद्योगों और परंपराओं को अपनाना तथा पराए पर अनावश्यक निर्भरता से बचना। परंतु गाँधीजी के लिए स्वदेशी केवल देशी वस्त्र पहनना या विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं था। यह एक ऐसी नैतिक वृत्ति थी, जिसमें आत्मनिर्भरता, संयम, नैतिक उपभोग और सामाजिक न्याय की भावना निहित थी।

स्वदेशी गाँधी दर्शन की सहज परिणति है और इसीलिए यह गाँधी चिंतन के सत्य, अहिंसा, स्वराज, साधन–साध्य के विचारों से निकटता से जुड़ा दिखाई पड़ता है। गाँधीजी के दर्शन में सत्य सर्वोपरि है। स्वदेशी का पालन व्यक्ति को अपने वास्तविक स्वरूप और आवश्यकताओं के प्रति ईमानदार बनाता है। यदि हम अपने देश की वस्तुओं और साधनों को अपनाते हैं, तो हम अपने जीवन के सत्य से जुड़ते हैं और अनावश्यक विलासिता या शोषणकारी वस्तुओं से दूर रहते हैं। गाँधीजी के अनुसार – हिंसा केवल शारीरिक नहीं, बल्कि आर्थिक और सांस्कृतिक भी होती है। जब हम विदेशी वस्तुओं पर निर्भर होते हैं, तो यह कहीं–न–कहीं दूसरों के शोषण से जुड़ा होता है। जबकि स्वदेशी अपनाना अहिंसक जीवन की दिशा में एक कदम है। यह दूसरों की श्रम–शक्ति और संसाधनों के शोषण को कम करता है। दार्शनिक रूप से स्वदेशी आत्मनिर्भरता का विचार है। गाँधीजी के लिए स्वराज का वास्तविक अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं था, बल्कि यह प्रत्येक गाँव और व्यक्ति की आत्मनिर्भरता थी। स्वदेशी इस आत्मनिर्भरता का साधन है। गाँधीजी ने स्वदेशी को धर्म कहा। उनके शब्दों में "स्वदेशी धर्म है, केवल आर्थिक नीति नहीं। यह पड़ोसी की सेवा और उसके संसाधनों के सम्मान का व्रत है।" इस प्रकार स्वदेशी का आधार नैतिक–धार्मिक है, जो व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाता है। गाँधीजी मानते थे कि यदि साधन अशुद्ध होंगे तो साध्य भी अपवित्र होगा। विदेशी वस्तुओं के प्रयोग में शोषण और असमानता के साधन छिपे हैं, इसलिए उनसे स्वतंत्रता प्राप्त करना संभव नहीं। स्वदेशी शुद्ध साधन है, जिससे शुद्ध साध्यकृ स्वराज प्राप्त हो सकता है।

स्वदेशी का विचार गाँधी की भारतीय चेतना और इतिहास की सूक्ष्म समझ का परिणाम है। ऐतिहासिक रूप से ये विचार भारतीय मनीषा में सदैव विद्यमान रहा है। वैदिक परम्परा और उपनिषदों में आत्मनिर्भरता और स्वावलंबन को उच्च आदर्श माना गया। 'आत्मनं विद्धि' (स्वयं को जानो) की परंपरा आत्मनिर्भरता और आत्मचेतना पर आधारित थी। भारतीय ग्राम–व्यवस्था में प्रत्येक गाँव लगभग आत्मनिर्भर इकाई थाकृ वस्त्र, अन्न, औजार आदि स्थानीय स्तर पर बनते थे। मध्य काल में भी गाँव–आधारित अर्थव्यवस्था और कुटीर उद्योगों की परंपरा जारी रही। स्थानीय शिल्पकार, बुनकर, किसान और कारीगर अपनी आवश्यकताओं और स्थानीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। इस व्यवस्था ने भारतीय समाज को संतुलित और स्थायी बनाया।

अंग्रेजों के आगमन के बाद भारतीय उद्योग और हस्तशिल्प को योजनाबद्ध ढंग से नष्ट किया गया। भारत से कच्चा माल इंग्लैंड ले जाकर वहाँ उद्योग चलाए गए और फिर वही वस्तुएँ महँगे दामों पर भारत में बेची गईं। इससे भारतीय कुटीर उद्योग चौपट हुए, बेरोजगारी बढ़ी और भारत 'कच्चा माल आपूर्ति करने वाले उपनिवेश' में बदल गया। इस शोषणकारी व्यवस्था ने भारत की अर्थव्यवस्था को गुलाम बना दिया।

आधुनिक काल में स्वाधीनता संघर्ष के दौरान बंगाल विभाजन (1905) के समय स्वदेशी आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इसमें विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और देशी वस्तुओं के प्रयोग का आह्वान किया गया। यह आंदोलन केवल राजनीतिक प्रतिरोध नहीं था, बल्कि भारतीयों के आत्मगौरव और आत्मनिर्भरता का उद्घोष था। यहीं से स्वदेशी भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का प्रमुख हथियार बना। गाँधीजी ने स्वदेशी को नैतिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान कर उसे व्यापक कर दिया। उनके लिए यह केवल 'विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार' नहीं था, बल्कि यह चरखा, कुटीर उद्योग, ग्राम स्वराज, और आत्मनिर्भर समाज की परिकल्पना थी। गाँधीजी ने इसे लोकधर्म का स्वरूप दिया, जिसमें पड़ोसी की सेवा और शोषण–मुक्त व्यवस्था की साधना छिपी थी।

स्वदेशी का दार्शनिक आधार सत्य, अहिंसा, आत्मनिर्भरता और धर्म में निहित है, जबकि इसका ऐतिहासिक आधार भारत की पारंपरिक ग्राम–व्यवस्था और औपनिवेशिक काल के शोषण से जुड़ा हुआ है। गाँधीजी ने इस ऐतिहासिक पीड़ा और दार्शनिक दृष्टि को मिलाकर स्वदेशी को राष्ट्रीय आंदोलन का नैतिक दर्शन बना दिया।

7.3 गाँधीजी की दृष्टि में स्वदेशी

गाँधीजी के दर्शन में स्वदेशी एक केंद्रीय सिद्धांत है। यह केवल राजनीतिक रणनीति या आर्थिक नीति नहीं, बल्कि एक नैतिक व्रत और दार्शनिक दृष्टिकोण है। गाँधीजी ने इसे सत्य और अहिंसा की तरह जीवन का अनिवार्य अंग माना। उनके अनुसार स्वदेशी का अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं है, बल्कि यह अपने पड़ोसी और अपने समाज के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व की भावना है। गाँधीजी ने कहा कि स्वदेशी का अर्थ है कि हम अपने पड़ोसी की सेवा को प्राथमिकता दें। उनका कथन है कि "स्वदेशी का अर्थ यह नहीं कि हम अन्य देशों की वस्तुओं से घृणा करें। इसका अर्थ है कि हम पहले अपने पड़ोसी की वस्तुओं का उपयोग करें, और केवल तभी बाहर की वस्तु लें जब वह वस्तु हमारे यहाँ उपलब्ध न हो।" उनका मानना था कि स्वदेशी केवल आर्थिक नीति नहीं बल्कि धर्म है और इस धर्म के पालन के लिए अपने आस–पड़ोस के संसाधनों और श्रम का सम्मान करना आवश्यक है। उन्होने कहा है कि "स्वदेशी धर्म है। यह हमें आत्मनिर्भर बनाता है और दूसरों के शोषण से बचाता है।" स्वदेशी गाँधीजी के लिए केवल देशी वस्तुओं का प्रयोग नहीं, बल्कि यह जीवन का नैतिक अनुशासन है। इसी संदर्भ में वो कहते हैं कि "स्वदेशी आत्मनिर्भरता का मार्ग है और आत्मनिर्भरता ही सच्चा स्वराज है।"

गाँधीजी ने स्वदेशी को व्रत कहा। जैसे सत्य और अहिंसा जीवन के व्रत हैं, वैसे ही स्वदेशी भी व्रत है। इसका पालन केवल आर्थिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि आत्म–शुद्धि, आत्म–अनुशासन और आत्मनिर्भरता के लिए किया जाता है। गाँधीजी का मानना था कि स्वदेशी व्रत अपनाने से व्यक्ति अपने जीवन को संयमित, संतुलित और अहिंसक बना सकता है। गाँधीजी के अनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति करना धर्म है, लेकिन विलासिता हिंसा है। स्वदेशी का पालन व्यक्ति को आवश्यक और अनावश्यक के बीच अंतर करना सिखाता है। यह उपभोग को संयमित और नैतिक बनाता है। गाँधीजी की दृष्टि में स्वदेशी एक नैतिक व्रत है, एक आर्थिक स्वावलंबन का साधन है, एक सामाजिक एकता का सूत्र है, और एक राजनीतिक स्वतंत्रता का मार्ग है।

7.3.1 स्वदेशी के प्रमुख आयाम

गाँधी जी का स्वदेशी का विचार मात्र आर्थिक दर्शन तक सीमित नहीं है बल्कि आर्थिक आयाम के साथ साथ इसके नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और दार्शनिक आयाम भी हैं।

नैतिक रूप से स्वदेशी व्यक्ति को संयम और संतोष का पाठ पढ़ाता है। यह व्यक्ति में यह समझ पैदा करता है कि अधिक उपभोग और विलासिता की प्रवृत्ति हिंसा को जन्म देती है। इस प्रकार व्यक्ति अपनी आवश्यकता और विलासिता के अंतर को समझ कर अपनी आवश्यकताओं को सीमित करता है और दूसरों कि आवश्यकताओं कि पूर्ति कि संभावनाओं को सुरक्षित करता है। साथ ही यह सिखाता है कि यदि हम अपनी आवश्यकताओं को स्थानीय स्तर पर पूरा करते हैं, तो हम दूसरों के शोषण से बचते हैं।

गाँधीजी का स्वदेशी दृष्टिकोण ग्राम–आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था पर आधारित था। उनके अनुसार प्रत्येक गाँव को आत्मनिर्भर इकाई बनना चाहिए। कुटीर उद्योग और चरखा इस स्वदेशी अर्थशास्त्र के प्रतीक थे। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार केवल आर्थिक कदम नहीं, बल्कि गुलामी के विरुद्ध आत्मगौरव का प्रतीक था।

सामाजिक रूप से स्वदेशी से सामूहिक श्रम और सहकारिता की भावना विकसित करता है। जब समाज अपने श्रम और संसाधनों पर आधारित होता है, तो सामाजिक एकता और आत्मबल बढ़ता है। गाँधीजी का विश्वास था कि स्वदेशी भारतीय समाज को सामूहिक आत्मनिर्भरता की ओर ले जाएगा।

राजनीतिक रूप से स्वदेशी आंदोलन अंग्रेजी शासन के विरुद्ध अहिंसक प्रतिरोध का प्रमुख हथियार बना। यह आंदोलन लोगों को आत्मनिर्भरता और आत्मगौरव के माध्यम से स्वराज्य के लिए तैयार करता था। गाँधीजी का कहना था – "स्वदेशी स्वराज्य का मार्ग है।"

दार्शनिक संदर्भ में गाँधीजी ने स्वदेशी को धर्म कहा। धर्म का तात्पर्य उनके लिए संकीर्ण धार्मिकता नहीं, बल्कि नैतिकता और सत्यनिष्ठा था। गाँधीजी मानते थे कि स्वदेशी अपनाना ईश्वर की रचना और अपने पड़ोसी का सम्मान करना है।

7.3.2 गाँधीजी की दृष्टि का मौलिकपन

गाँधीजी से पहले भी स्वदेशी का विचार मौजूद था (विशेषकर 1905 के बंगाल विभाजन के समय), लेकिन वह मुख्यतः राजनीतिक आंदोलन तक सीमित था। गाँधीजी ने उसमें नैतिकता, धर्म, आत्मनिर्भरता, और जीवन–दर्शन का तत्व जोड़ दिया। यही कारण है कि उनके स्वदेशी की परिभाषा केवल आर्थिक स्वावलंबन तक सीमित नहीं रही, बल्कि यह सत्य, अहिंसा और स्वराज की त्रिवेणी में बदल गई।

गाँधीजी ने स्वदेशी को केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन बना दिया। यही कारण है कि आज भी जब हम आत्मनिर्भर भारत या वोकल फॉर लोकल की बात करते हैं, तो उसकी जड़ें गाँधीजी के स्वदेशी विचार में ही मिलती हैं।

7.4 स्वदेशी का आर्थिक दर्शन

गाँधीजी के चिंतन में स्वदेशी का आर्थिक स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके लिए आर्थिक जीवन केवल धन–संपत्ति का संचय नहीं, बल्कि नैतिक साधना था। पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता जहाँ लाभ और उपभोग को प्रमुख मानती थी, वहीं गाँधीजी का आर्थिक दर्शन मानव कल्याण, न्याय और आत्मनिर्भरता पर आधारित था। गाँधीजी का मानना था कि "अर्थशास्त्र को नैतिकता से अलग नहीं किया जा सकता। यदि अर्थशास्त्र अन्याय और शोषण पैदा करता है, तो वह शुद्ध अर्थशास्त्र नहीं है।" इस प्रकार स्वदेशी का आर्थिक दर्शन गाँधीजी की नैतिक अर्थशास्त्र की संकल्पना से जुड़ा हुआ है।

गाँधी जी ने पाश्चात्य अर्थशास्त्र की आलोचना की। उनका मानना था कि औद्योगिक क्रांति के बाद पश्चिम में अर्थशास्त्र लाभ और उत्पादन की अधिकता पर केंद्रित हो गया। बड़े कारखाने, मशीनें और पूँजीवादी व्यवस्था ने श्रमिकों का शोषण किया और उपभोगवाद को बढ़ाया। गाँधीजी ने इसे अनैतिक और अमानवीय कहा। भारत सदियों से ग्राम–आधारित अर्थव्यवस्था पर टिका था। अंग्रेजी औपनिवेशिक नीतियों ने कुटीर उद्योगों को नष्ट कर भारत को कच्चा माल आपूर्ति करने वाला उपनिवेश बना दिया। गरीबी, बेरोजगारी और शोषण का परिणाम यह हुआ कि भारत आत्मनिर्भरता खो बैठा।

इस स्थिति का समाधान गाँधीजी ने स्वदेशी आधारित अर्थव्यवस्था में देखा। इसका मूल तत्व था – ग्राम स्वराज, कुटीर उद्योग, चरखा, स्थानीय उत्पादन और उपभोग, तथा संयमित उपभोग।

7.4.1 स्वदेशी के आर्थिक दर्शन के प्रमुख आयाम

स्वदेशी ग्राम स्वराज और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था लक्ष्य रखती है। गाँधीजी का आदर्श था – प्रत्येक गाँव एक आत्मनिर्भर गणराज्य बने। जहाँ गाँव की आवश्यकताओं (अन्न, वस्त्र, औजार, शिक्षा आदि) की पूर्ति स्थानीय स्तर पर हो। वे चाहते थे कि गाँव उत्पादन और उपभोग दोनों का केंद्र बने। जिससे उनकी बड़े उद्योगों पर निर्भरता न्यूनतम रहे। गाँधीजी का कथन है कि "भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। जब तक गाँव आत्मनिर्भर नहीं होंगे, भारत स्वतंत्र नहीं हो सकता।"

गाँधी के स्वदेशी के आर्थिक पक्ष में कुटीर उद्योग और चरखा केंद्र में हैं। चरखा गाँधीजी के आर्थिक स्वदेशी का सबसे बड़ा प्रतीक था । चरखा श्रम, समानता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक है। गाँधी जी के अनुसार चरखा गरीबों की आजीविका का साधन था और अमीरों के लिए आत्म–शुद्धि का मार्ग था। उनका मानना था कि कुटीर उद्योग (हस्तशिल्प, बुनाई, मिट्टी के बर्तन आदि) को बढ़ावा देकर बेरोजगारी कम की जा सकती थी। इससे गाँव–गाँव में उत्पादन बढ़ेगा और आर्थिक न्याय स्थापित होगा।

स्वदेशी उपभोग के नैतिक सिद्धांत पर आधारित है। गाँधीजी मानते थे कि आवश्यकता से अधिक उपभोग हिंसा है। उनका प्रसिद्ध कथन है कि "संसार में सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त है, लेकिन किसी के लोभ के लिए पर्याप्त नहीं।" स्वदेशी व्यक्ति को संयमित उपभोग का मार्ग सिखाता है। स्थानीय वस्तुओं के प्रयोग से संतुलित अर्थव्यवस्था और सामाजिक न्याय सुनिश्चित होता है।

स्वदेशी के अंतर्गत विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार केवल आर्थिक कदम नहीं था, बल्कि यह मानसिक दासता से मुक्ति का प्रतीक था। विदेशी कपड़ों को जालना एक आर्थिक–सांस्कृतिक क्रांति का प्रतीक था। इससे भारतीयों के

आत्मगौरव और आत्मनिर्भरता की चेतना जागृत हुई।

स्वदेशी का आर्थिक दर्शन श्रम की गरिमा पर आधारित था। गाँधीजी मानते थे कि हर व्यक्ति को कुछ श्रम करना चाहिएकृ यह न केवल उत्पादन बढ़ाता है, बल्कि व्यक्ति को अहंकार–मुक्त और आत्मनिर्भर बनाता है। चरखा कातना इसी श्रम–साधना का प्रतीक था। इसके माध्यम से हर व्यक्ति राष्ट्र निर्माण में योगदान कर सकता है।

गाँधी जी केन्द्रीयकरण का विरोध और विकेन्द्रीयकरण का समर्थन करते थे। गाँधीजी के आर्थिक दर्शन में विकेन्द्रीयकरण पर बल था। उनका मानना था कि बड़े उद्योग और पूँजी का केंद्रीकरण आर्थिक असमानता और शोषण को जन्म देता है। स्वदेशी छोटे–छोटे उद्योगों और विकेन्द्रित उत्पादन पर आधारित है, जो समाज में समानता और न्याय को बढ़ावा देता है।

स्वदेशी का विचार पूंजीवाद और समाजवाद दोनों से पृथक है। पूँजीवाद लाभ और अधिक उत्पादन पर आधारित है, जबकि स्वदेशी आधार न्याय और आत्मनिर्भरता हैं। पूँजीवाद में उपभोग बढ़ता है, जबकि स्वदेशी संयम सिखाता है। समाजवाद समानता और श्रम के महत्व की बात करता है परंतु वह समानता और श्रम के महत्त्व को स्थापित करने के लिए हिंसा को उचित मानता है। गाँधीजी का स्वदेशी भी समानता और श्रम का सम्मान करता है, लेकिन यह अहिंसा और नैतिकता पर अधिक बल देता है। स्वामित्व के प्रश्न पर पूंजीवाद व्यक्ति को सर्वोच्च मानता है जबकि समाजवाद राज्य को सर्वोपरि रखता है। गाँधीजी का मानना था कि धनवान व्यक्ति अपने धन को ट्रस्टी की तरह समाज की सेवा में लगाए। स्वदेशी आर्थिक व्यवस्था में यह ट्रस्टीशिप सिद्धांत लागू होता है, जहाँ उत्पादन और उपभोग दोनों समाज के हित के लिए हों।

गाँधीजी का स्वदेशी–आधारित आर्थिक दर्शन केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक सीमित नहीं है। यह एक नैतिक अर्थशास्त्र है, जो ग्राम स्वराज, आत्मनिर्भरता, श्रम का सम्मान, संयमित उपभोग,और न्यायपूर्ण समाज की परिकल्पना करता है। आज के वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के युग में, जब असमानता और पर्यावरण संकट बढ़ रहा है, गाँधीजी का स्वदेशी–आधारित आर्थिक दर्शन मानवता के लिए एक विकल्पात्मक मार्ग प्रस्तुत करता है।

7.5 स्वदेशी का सामाजिक और राजनीतिक आयाम

गाँधीजी के विचारों में स्वदेशी केवल आर्थिक नीति या उत्पादन की पद्धति नहीं था, बल्कि यह एक संपूर्ण जीवन–दर्शन था। इसमें सामाजिक और राजनीतिक दोनों ही स्तरों पर गहरे आयाम निहित थे। गाँधीजी का मानना था कि यदि समाज आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनेगा, तभी राजनीतिक स्वतंत्रता सार्थक होगी।

7.5.1 स्वदेशी का सामाजिक आयाम

गाँधीजी के लिए समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं, बल्कि एक जीवंत सामुदायिक इकाई था। स्वदेशी का अभ्यास समाज को आत्मनिर्भर और नैतिक जीवन की ओर अग्रसर करता है। उनका ये चिंतन संकीर्ण राष्ट्रवाद कि ओर नही ले जाता। उनका कहना था कि "स्वदेशी का अर्थ यह नहीं कि हम अन्य देशों की वस्तुओं से घृणा करें। इसका अर्थ है कि हम पहले अपने पड़ोसी की सेवा करें और अपने संसाधनों का सम्मान करें।" इस प्रकार वे स्वदेशी के माध्यम से भारत के सामाजिक ताने–बाने को सुदृढ़ करते हैं।

स्वदेशी सामूहिक आत्मनिर्भरता का निर्माण करता है। स्वदेशी का पहला सामाजिक प्रभाव था – आत्मनिर्भर समाज का निर्माण। यदि प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक गाँव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं करने लगे, तो पूरा समाज आत्मनिर्भर हो जाएगा। यह आत्मनिर्भरता समाज को शोषण और पराधीनता से मुक्त करती है। स्वदेशी श्रम की गरिमा और सामाजिक समानता का आधार है। गाँधीजी का मानना था कि स्वदेशी श्रम की गरिमा को स्थापित करता है। चरखा कातने और श्रम करने में अमीर–गरीब सब समान होते हैं। इससे समाज में जाति, वर्ग और धन की विषमता कम होती है। जिससे समाज में समानता और सहयोग की भावना विकसित होती है।

स्वदेशी का पालन समाज को संयमित बनाता है। इसमें अनावश्यक विलासिता छोड़कर लोग अपनी आवश्यकताओं तक सीमित रहते हैं। यह संयम सामूहिक नैतिकता और सामाजिक संतुलन को जन्म देता है। स्वदेशी केवल आर्थिक या सामाजिक सुधार नहीं था, बल्कि यह सांस्कृतिक जागरण का भी साधन था। विदेशी वस्त्रों और जीवन–शैली का बहिष्कार करके भारतीय समाज ने अपनी संस्कृति और परंपराओं के प्रति नया विश्वास अर्जित

किया। यह सांस्कृतिक आत्मगौरव भारतीय समाज के पुनर्जागरण की नींव बना। स्वदेशी ने लोगों को एक साझा उद्देश्य से जोड़ा। जब सभी लोग विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर खादी पहनने लगे, तो समाज में एक प्रकार की सामूहिक एकता और आत्मीयता उत्पन्न हुई। इससे समाज में सहकारिता, परस्पर सहयोग और साझा संघर्ष की भावना मजबूत हुई।

7.5.2 स्वदेशी का राजनीतिक आयाम

गाँधीजी के लिए स्वदेशी केवल सामाजिक सुधार का साधन नहीं, बल्कि यह राजनीतिक स्वतंत्रता का मार्ग भी था। उनका कहना था कि "स्वदेशी धर्म है। यह केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के उत्थान का मार्ग है।" उनके अनुसार स्वराज्य और स्वदेशी परस्पर जुड़े हुए हैं। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "स्वराज्य पाने का एकमात्र साधन स्वदेशी है।" उनके लिए राजनीतिक स्वतंत्रता तभी सार्थक थी जब समाज आर्थिक और सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर हो। यदि भारत विदेशी वस्तुओं और उद्योगों पर निर्भर रहेगा, तो राजनीतिक स्वतंत्रता अधूरी होगी।

विदेशी वस्त्रों और वस्तुओं का बहिष्कार ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रत्यक्ष आर्थिक आघात था।अंग्रेजी शासन भारत के बाजारों और संसाधनों पर निर्भर था। स्वदेशी आंदोलन ने इस व्यवस्था को चुनौती दी और जनता को राजनीतिक संघर्ष के लिए तैयार किया। स्वदेशी गाँधीजी के अहिंसक प्रतिरोध का महत्वपूर्ण हथियार था। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और देशी वस्तुओं का उपयोग जनता के हाथ में एक शांतिपूर्ण लेकिन प्रभावशाली हथियार था। इससे लोगों को बिना हिंसा के राजनीतिक संघर्ष में भाग लेने का अवसर मिला। स्वदेशी आंदोलन ने जनता को राजनीति में सक्रिय भागीदारी का अवसर दिया। चरखा कातना, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करना, खादी पहननाकृ ये सब राजनीतिक कर्म बन गए। इस प्रकार राजनीति केवल नेताओं या उच्च वर्ग तक सीमित नहीं रही, बल्कि आम जनता के जीवन का हिस्सा बनी। स्वदेशी आंदोलन ने पूरे देश को एक साझा ध्येय से जोड़ा। बंगाल से लेकर गुजरात और तमिलनाडु तक लोग विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और खादी का प्रयोग करने लगे। इससे राष्ट्र की राजनीतिक एकता मजबूत हुई और स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक जनाधार मिला।

गाँधीजी की दृष्टि में स्वदेशी का सामाजिक आयाम समानता, सहयोग, आत्मनिर्भरता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण से जुड़ा है, जबकि इसका राजनीतिक आयाम अहिंसक प्रतिरोध, जन–भागीदारी और स्वराज्य की प्राप्ति से संबंधित है। इस प्रकार स्वदेशी ने न केवल समाज को आत्मनिर्भर और नैतिक बनाया, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक और जनाधारित बनाया। आज भी सामाजिक असमानता, सांस्कृतिक संकट और राजनीतिक निर्भरता के दौर में स्वदेशी का यह आयाम अत्यंत प्रासंगिक है।

7.6 आलोचनात्मक दृष्टि

गाँधीजी का स्वदेशी दर्शन भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आत्मा रहा है। इसके माध्यम से उन्होंने आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक स्तर पर आत्मनिर्भरता का मार्ग प्रस्तुत किया। यद्यपि गाँधीजी का स्वदेशी दर्शन अत्यंत प्रेरक था, फिर भी इस पर अनेक स्तरों पर आलोचना हुई है।

स्वदेशी पर सर्वप्रथम आक्षेप व्यावहारिक कठिनाई का है। आधुनिक औद्योगिक युग में केवल स्थानीय उत्पादन और कुटीर उद्योगों पर निर्भर रहना कठिन था। भारत की विशाल जनसंख्या की आवश्यकताओं को केवल हस्तशिल्प और चरखे से पूरा करना व्यावहारिक नहीं था। आलोचकों का कहना है कि यह दृष्टिकोण आदर्शवादी अधिक और व्यावहारिक कम था। दूसरा आक्षेप यह है कि स्वदेशी आर्थिक विकास को सीमित करता है। औद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास को नकारकर स्वदेशी दर्शन आधुनिक आर्थिक प्रगति से दूर हो सकता था। पश्चिमी देशों की वैज्ञानिक प्रगति और औद्योगिक क्रांति ने जिस स्तर का उत्पादन संभव किया, वह कुटीर उद्योगों से संभव नहीं था। इस दृष्टि से गाँधीजी का स्वदेशी विचार धीमी आर्थिक वृद्धि का कारण बन सकता था। आलोचकों का मत है कि गाँधीजी ने अंतरराष्ट्रीय सहयोग और परस्पर निर्भरता को पर्याप्त महत्व नहीं दिया। गाँधीजी के समय में भी देश–देशांतर व्यापार और तकनीकी सहयोग आवश्यक थे। आज के वैश्वीकरण के युग में पूर्णतः 'स्वदेशी' होना असंभव है। कुछ आलोचक मानते हैं कि 'स्वदेशी' का आग्रह कभी–कभी संकीर्ण राष्ट्रवाद का रूप ले सकता है। विदेशी वस्तुओं और विचारों को पूरी तरह अस्वीकार करना सांस्कृतिक बहुलता और वैश्विक ज्ञान–विनिमय के विरुद्ध हो सकता है। गाँधीजी ने स्वदेशी को 'व्रत' और 'धर्म' कहा। आलोचकों का कहना है कि

यह नैतिक आग्रह सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन था। हर व्यक्ति अपने आर्थिक और सामाजिक हितों से ऊपर उठकर स्वदेशी का पालन नहीं कर सकता था।

जवाहरलाल नेहरू गाँधीजी के स्वदेशी दर्शन के प्रशंसक थे लेकिन साथ ही उनका मानना था कि आधुनिक औद्योगिक प्रगति से अलग रहकर भारत का विकास संभव नहीं। डॉ. भीमराव आंबेडकर स्वदेशी को सामाजिक दृष्टि से अधूरा मानते थे क्योंकि यह जातिगत विषमता और अस्पृश्यता जैसे मुद्दों को सीधे चुनौती नहीं देता था। मार्क्सवादी आलोचक मानते हैं कि स्वदेशी ने पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की जड़ों पर सीधा प्रहार तो किया, लेकिन उत्पादन के आधुनिक साधनों और वर्ग–संघर्ष के प्रश्नों की उपेक्षा की। कुछ पश्चिमी विचारक स्वादेशी को रोमांटिक आदर्शवाद कह कर आलोचना करते हैं, जो औद्योगिकीकरण की वास्तविक आवश्यकताओं से कट जाता है।

गाँधीजी का स्वदेशी दर्शन अपनी मूल प्रकृति में नैतिक, मानवीय और आध्यात्मिक था। यह राष्ट्रीय स्वतंत्रता का प्रेरक, सामाजिक समानता का साधन, और आर्थिक आत्मनिर्भरता का मार्ग था। आज वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के दौर में स्वदेशी की अवधारणा को पुनः नए रूप में समझा जा रहा है। 'आत्मनिर्भर भारतष् 'मेक इन इंडिया' और 'वोकल फॉर लोकल' जैसी योजनाएँ गाँधीजी के स्वदेशी दर्शन की पुनः प्रासंगिकता दिखाती हैं। आलोचक मानते हैं कि पूर्णतः 'स्वदेशी' असंभव है, लेकिन 'संतुलित स्वदेशी' (Balanced Swadeshi) आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। स्वदेशी के संदर्भ में व्यावहारिक कठिनाइयाँ, औद्योगिक विकास से दूरी और वैश्वीकरण की अनदेखी जैसी इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं फिर भी, आलोचनाओं के बावजूद स्वदेशी का मूल संदेश – संयम, आत्मनिर्भरता, नैतिक उपभोग और स्थानीयता का सम्मान – आज भी अत्यंत प्रासंगिक है।

7.7. सारांश

इस इकाई में हमने गाँधीजी के दर्शन में स्वदेशी की अवधारणा का विस्तृत अध्ययन किया। स्वदेशी केवल आर्थिक नीति या राजनीतिक आंदोलन नहीं था, बल्कि यह गाँधीजी के संपूर्ण जीवन–दर्शन का अभिन्न हिस्सा था। इसमें दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी आयाम सम्मिलित हैं।

स्वदेशी का अर्थ हैकृअपने देश की वस्तुओं, संसाधनों और श्रम को प्राथमिकता देना। दार्शनिक रूप से यह सत्य, अहिंसा, स्वावलंबन और संयम पर आधारित है। ऐतिहासिक रूप से भारत की ग्राम–आधारित अर्थव्यवस्था और कुटीर उद्योग इसकी जड़ में थे। औपनिवेशिक शासन ने इन्हें नष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी आंदोलन (1905) और बाद में गाँधीजी का व्यापक स्वदेशी दर्शन सामने आया।

गाँधीजी के लिए स्वदेशी केवल विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार नहीं था, बल्कि यह एक नैतिक व्रत था। उन्होंने कहाकृ "अपने निकटवर्ती लोगों की सेवा ही सच्चा स्वदेशी है।" स्वदेशी का पालन प्रत्येक व्यक्ति से प्रारंभ होकर पूरे समाज और राष्ट्र तक जाता है। यह साधन और साध्य की शुद्धता पर आधारित है– साधन (स्वदेशी उद्योग) शुद्ध हो तो साध्य (आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता) भी शुद्ध होगा।

स्वदेशी के तहत गाँधीजी ने कुटीर उद्योग, खादी और ग्राम–स्वावलंबन को प्रोत्साहित किया। उनका विश्वास था कि सच्ची स्वतंत्रता तभी मिलेगी जब गाँव आत्मनिर्भर होंगे। आर्थिक संदर्भों में स्वदेशी का उद्देश्य था रोजगार सृजन, स्थानीय उत्पादन, गरीबी उन्मूलन और शोषण से मुक्ति।(आधुनिक शब्दों में यह "सस्टेनेबल इकॉनमी" (Sustainable Economy) और "लोकलाइजेशन" से मेल खाता है।

सामाजिक दृष्टि से स्वदेशी का मतलब हैकृ समानता, श्रम की गरिमा और सामाजिक एकता। यह जातिगत वर्चस्व और सामाजिक विभाजन को चुनौती देता है। राजनीतिक स्तर पर स्वदेशी ने स्वतंत्रता संग्राम को बल दिया और राष्ट्रवाद की भावना को प्रज्वलित किया। आज भी यह लोकतांत्रिक सहभागिता, विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराज की दिशा में मार्गदर्शक है।

कुछ विद्वानों ने स्वदेशी को आदर्शवादी और अव्यावहारिक माना। आधुनिक औद्योगिकीकरण और तकनीकी विकास के युग में पूर्ण स्वदेशी कठिन है। आलोचना यह भी रही कि स्वदेशी आंदोलन शहरी और मध्यमवर्गीय तक सीमित रह गया। फिर भी, यह माना गया कि स्वदेशी का नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

आज वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और पर्यावरण संकट के दौर में गाँधीजी का स्वदेशी दर्शन और भी प्रासंगिक है। आत्मनिर्भर भारत, वोकल फॉर लोकल, व्क्व्, मेक इन इंडिया जैसी नीतियाँ इसका आधुनिक रूप हैं। पर्यावरणीय

दृष्टि से स्वदेशी सतत विकास और हरित ऊर्जा की दिशा में प्रेरणा देता है। वैश्विक स्तर पर भी "Buy Local" और "Go Local" जैसे आंदोलन स्वदेशी की गूँज हैं। समकालीन संदर्भ में स्वदेशी का अर्थ हैकृ संतुलित आत्मनिर्भरता, जहाँ स्थानीय उत्पादन को प्राथमिकता दी जाए पर आवश्यक तकनीकी सहयोग भी लिया जा सके।

स्वदेशी केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन है। यह सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित है। यह आर्थिक आत्मनिर्भरता, सामाजिक समानता और राजनीतिक स्वतंत्रता की आधारशिला है। आलोचनाओं के बावजूद स्वदेशी का नैतिक मूल्य और व्यावहारिक प्रेरणा आज भी अविनाशी है। आधुनिक भारत की नीतियों और वैश्विक आंदोलनों में स्वदेशी की गूँज स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

स्वदेशी गाँधीजी के दर्शन का केंद्रीय तत्व है। यदि सत्य और अहिंसा गाँधीजी के जीवन का आध्यात्मिक आधार हैं, तो स्वदेशी उसका व्यावहारिक आधार है। यह हमें सिखाता है कि सच्ची स्वतंत्रता केवल राजनीतिक मुक्ति नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और नैतिक आत्मनिर्भरता में निहित है। आज जब पूरी दुनिया "स्थानीयता में वैश्विकता" (Think Global] Act Local) की ओर बढ़ रही है, तब गाँधीजी का स्वदेशी दर्शन भविष्य का मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

7.7. बोध प्रश्न

1. स्वदेशी की अवधारणा का दार्शनिक आधार स्पष्ट कीजिए।
2. गाँधीजी ने स्वदेशी को अहिंसा और सत्य से कैसे जोड़ा?
3. स्वदेशी और ग्राम स्वराज के बीच क्या संबंध है?
4. स्वदेशी की प्रासंगिकता आज के वैश्वीकरण के युग में किस प्रकार बनी हुई है?
5. स्वदेशी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विवेचन कीजिए।

7.7. उपयोगी पुस्तकें

1. महात्मा गाँधी – हिन्द स्वराज
2. महात्मा गाँधी – सत्य के प्रयोग
3. राधाकृष्णन, एस. – गाँधी का दर्शन
4. रामचन्द्र गुहा – गाँधी बिफोर इंडिया
5. धीरेंद्र शर्मा – गाँधी और आधुनिकता

इकाई–8 स्वराज की अवधारणा

इकाई की रुपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 राज्य की अवधारणा

8.3 स्वराज का अर्थ

8.4 स्वराज की अवधारणा

8.5 पूर्ण स्वराज

8.6 स्वराज एवं अराजकतावाद

8.7 सारांश

8.8 बोध प्रश्न

8.9 उपयोगी पुस्तकें

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में स्वराज का अर्थ, उसकी अवधारणा के बारें में बताया गया है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ❖ राज्य की अवधारणा जान सकेंगें।
- ❖ स्वराज के अर्थ का विष्लेषण कर सकेंगे।
- ❖ आत्मशासन पर प्रकाश डाल सकेंगें।
- ❖ गाँधीजी के सपनों का स्वराज गरीबों का स्वराज है को बता सकेंगे।
- ❖ सच्चे स्वराज की अवधारणा बच्चे, स्त्री, पुरुष सभी को होना चाहिए।
- ❖ स्वराज के लिए सत्याग्रह क्यों आवश्यक है। बता सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में स्वराज की अवधारणा के प्रारम्भिक चरण से लेकर अन्तिम तक विस्तृत व्याख्या की गयी है। इसके पूर्व राज्य की पाश्चात्य एवं भारतीय संकल्पना को समझ सकेंगे। प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में आत्मशासन के विचार सूत्र मिलते है। यह स्वराज शब्द से जुड़ा था। स्वराज विभिन्न विषिष्ट क्षेत्रों से बनी राजव्यवस्था में आत्मनिर्धारण प्राप्त करने के विशेष ढंग की ओर इषारा करता है।

आधुनिक भारत में स्वराज शब्द का प्रयोग दादा भाई नरौजी, बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविन्दों ने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के उद्देश्य के रुप में विषिष्ट तौर पर किया है। इस शब्द के सकारात्मक पक्ष की अपेक्षा नकारात्मक शब्द पर जोर दिया गया और उसके प्रयोग को व्यक्तिगत से हटाकर सामूहिकता पर लागू किया गया। 19वीं शताब्दी के अन्त में स्वराज शब्द के स्वतन्त्रता राष्ट्रवादी आंदोलन में नए रुप में प्रचलित होने से पहले बंगाली उग्रवादियों ने ब्रिटिशसामानों का बहिष्कार करने के लिए स्वदेशी या देशभक्ति को तर्कसंगत ठहराया।

जब भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी का पदार्पण हुआ तब उन्होंने सफलतापूर्वक स्वराज शब्द की फिर से स्थापना की और इस नए संदर्भ को ध्यान में रखते हुए स्वदेशी शब्द की व्याख्या की और इसके प्रयोग को काफी व्यापक बना डाला। गाँधीजी ने स्वराज व स्वदेशी व्यक्तिगत आत्मशासन व व्यक्तिगत स्वावलम्बन एवं आत्मशासन और राष्ट्रीय आत्म–निर्भरता के बीच एक निकट सम्बन्ध स्थापित किया।

गाँधीजी ने समाज के आंगिक विचार में व्यक्ति का समावेष द्वारा समुदाय में स्वतन्त्रता के विचार को मिलाने की अपेक्षा व्यक्तिगत आत्मशासन के विचार में से ही सामूहिक आत्म–निर्भरता के विचार को निकाला और गाँधीजी ने यह दर्षाया कि किस प्रकार से स्वराज के अनुकरण के लिए यह आवष्यक है कि स्वदेशी को भी शामिल किया जाए।

8.2 राज्य की अवधारणा

राज्य शब्द का प्रयोग अपने शाब्दिक अर्थ में अनेक प्रकार से होता है किन्तु प्राचीन यूनानी राजनीति–दार्शनिक राज्य शब्द का प्रयोग या तो सम्पूर्ण समाज के संगठन का संकेत देने के लिए करते थे, या सामाजिक जीवन के ध्येय का संकेत देने के लिए। सबसे पहले इतालवी राजनीति–विचारक निकोलो मेकियावेली ने सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में राज्य की परिभाषा ऐसी शक्ति के रूप में दी जो मनुष्यों के ऊपर शक्ति का प्रयोग करती है। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में प्रसिद्ध जर्मन समाज वैज्ञानिक मैक्स वेबर ने राज्य की समाजवैज्ञानिक परिभाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए विचार व्यक्त किया : राज्य ऐसा मानव समुदाय है, जो निर्दिष्ट भूभाग में भौतिक बल के विधिसम्मत प्रयोग के एकाधिकार का दावा करता है।'' आर.एम. मैकाइवर का कथन है कि राज्य ऐसा संगठन है जो विधि द्वारा शासनाधिकार से क्रियान्वित होता है और जिसे एक निश्चित भूभाग में सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने के सर्वोच्च अधिकार प्राप्त होते हैं। मैकाइवर राज्य की परिभाषाओं में उन विशेषताओं को ही स्वीकार करने पर बल देते हैं, जो सभी राज्यों में सामान्य रूप में उपस्थित होती है। प्रो0 गार्नर मानते हैं कि रोम में राज्य के लिए प्रयुक्त होने वाला सिवितास एवं रिपब्लिका शब्द क्रमशः नगर राज्य एवं नागरिकता से सम्बन्धित रहे हैं जो कि वही अर्थ सम्प्रेषित करते थे जो आधुनिक राज्य की संकल्पना के निकट हैं। उनके अनुसार राज्य न्यूनाधिक व्यक्तियों का संगठन है, जो किसी निश्चित भू–भाग पर स्थायी रूप से निवास करता हो, जो किसी बाह्य नियंत्रण से पूर्णतया अथवा लगभग मुक्त हो, जिसकी एक संगठित सरकार हो, जिसके आदेशों का पालन जनता स्वभावतः करती हो। गैटिल के शब्दों में, ''राज्य व्यक्तियों का वह समुदाय है जो स्थाई रूप से एक निश्चित भू–भाग में बसा हुआ हो, विधिक दृष्टि से बाहरी नियंत्रण से मुक्त हो, जिसकी एक संगठित सरकार हो, जो अपने क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निवास करनेवाले सभी व्यक्तियों और समूहों के लिए कानून बनाती हो और उसे लागू करती हो।''

हेरेल्ड जे. लास्की ने 'एन इन्ट्रोडक्शन टू पालिटिक्स' (राजनीति की प्रस्तावना) के अन्तर्गत यह तर्क दिया है :''अन्य सभी साहचर्यों का चरित्र तो स्वैच्छिक होता है और वे केवल व्यक्ति को केवल तभी बांध पाते हैं जब वह अपनी पसंद से उनका सदस्य बनता है। परन्तु किसी राज्य में रहनेवाले व्यक्ति के लिए उन आदेशों का पालन कानूनी रूप से अनिवार्य हो जाता है। अतः आधुनिक राज्य तो समाज रूपी अट्टालिका का शिखर है। अन्य सभी समूहों की तुलना में राज्य की सर्वोच्चता ही उसकी प्रमुख विशेषता है।'' फ्रैड्रिक एम. वाटकिंस ने राज्य की परिभाषा मानव समाज के ऐसे खंड के रूप में दी है। जो भौगोलिक सीमाओं से घिरा होता है और किसी एक प्रभुसत्ताधारी के प्रति समान रूप से आज्ञापालन के कारण एकता के सूत्र में बंधा रहता है।

राज्य के उपर्युक्त विवेचन के आधार पर जो स्वरूप उभरता है उसके अनुसार राज्य के मूल तत्वों को रेखांकित किया जा सकता है। जब राज्य को एक विशेष प्रकार का सामाजिक संगठन माना जाता हैं तब उसके मूलतत्वों का विवरण जरूरी हो जाता है। यही तत्व अन्य मानव समुदाओं की तुलना में राज्य की अलग पहचान बनाते है। ये तत्व हैं : जनसंख्या, भूभाग, सरकार और प्रभुसत्ता।

जनसंख्या : कोई भी साहचर्य मनुष्यों के संयोग से बनता है राज्य ऐसा साहचर्य है जिसमें बहुत सारे मनुष्य एकता के सूत्र के बंधे रहते हैं। अतः जनसंख्या राज्य का आवश्यक तत्व है। राज्य में कितनी जनसंख्या होनी चाहिए–यह नियत नहीं है। इतना ही कह सकते हैं कि इसके लिए पर्याप्त जनसंख्या होनी चाहिए जो जीवन के विवध पक्षों की देख–रेख कर सके। अच्छा तो यह होगा कि यह जनसंख्या जीवन की सारी आवश्यकताएं पूरी करने में समर्थ हो। यदि उसे किन्हीं वस्तुओं के लिए अन्य राज्यों पर निर्भर रहना हो तो कम से कम वह अपने यहां की वस्तुएं या सेवाएं अन्य राज्यों को देकर इनका मूल्य चुकाने में समर्थ हो। इस तरह वित्तीय दृष्टि से तो राज्य की जनसंख्या को आत्मनिर्भर अवश्य होना चाहिए। फिर भी, कुछ विशेष परिस्थितियों में कोई राज्य अस्थायी रूप से विदेशी या अन्तरर्राष्ट्रीय सहायता स्वीकार कर सकता है।

किसी राज्य की जनसंख्या के लिए यह जरूरी नहीं कि वह एक ही जाति, धर्म सम्प्रदाय, भाषा या संस्कृति से जुड़ी हो। परंतु एक ही राज्य का नागरिक होने के नाते उनकी निष्ठा का एक ही केन्द्र होना आवश्यक है।

भूभाग – भूभाग राज्य का दूसरा आवश्यक तत्व है। राज्य के अस्तित्व के लिए यह जरूरी है कि उसका अलग भू–भाग हो। इस सम्बन्ध में विवाद पैदा होने पर उसे सुलह–समझौते से, युद्ध से या किसी अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण के निर्णय से सुलझाना जरूरी हो जाता है।

संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत एक ही भूभाग पर दो तरह की सत्ता रह सकती है। इसे क्रमशः 'संघ सरकार' और 'राज्य सरकार' की सत्ता के रूप में पहचाना जाता है। परंतु इन दोनों के सीमाक्षेत्र संविधान के द्वारा निर्धारित होते हैं। अतः वहां एक ही राज्य की प्रभुसत्ता मानी जाती है।

जनसंख्या की तरह राज्य के लिए अपेक्षित भूभाग का भी कोई निश्चित आकार नहीं बताया जा सकता। यह भूभाग इतना बड़ा अवश्य होना चाहिए जहां राज्य की जनसंख्या कम से कम वित्तीय दृष्टि से आत्म निर्भर जीवन जी सके। परंतु वह इतना बड़ा नहीं होना चाहिए कि राज्य उसकी रक्षा का दायित्व न संभाल सके, अन्यथा अन्य राज्य उसे पराधीन बना देंगें। यह आवश्यक नहीं कि राज्य का सारा भूभाग एकसार हो, परंतु उसके भिन्न हिस्से प्रभावशाली ढंग से अवश्य जुड़े होने चाहिए। खानाबदोश कबीले–जो किसी निश्चित भूभाग से नहीं बंधे होते– राज्य की रचना नहीं करते, चाहे उनमें किसी न किसी तरह का राजनीतिक संगठन विद्यमान हो, अर्थात् चाहे उसके सभी सदस्य कबीले के सरदार की आज्ञाओं का पालन करते हों।

सरकार : राज्य का तीसरा मूलतत्व शासन–व्यवस्था या सरकार है जो राज्य की सेवाओं को जनसंख्या तक पंहुचा सके, राज्य के भूभाग की रक्षा कर सके, राज्य के भीतर शांति और व्यवस्था कायम कर सके, विदेशी राज्यों के साथ संबंध निभा सके और इन सब कार्यों के लिए अपेक्षित वित्त की व्यवस्था कर सके। अतः सरकार को जनता पर कर लगाने का अधिकार सब जगह होता है। आधुनिक युग में सरकार जनता के लिए बहुत तरह की सेवायें जुटाने लगी है–विशेषतः उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास, परिवहन, संचार, मनोरंजन, रोजगार, विश्राम, इत्यादि का विस्तृत प्रब्रंध करने लगी है। इससे 'कल्याणकारी राज्य' की अवधारणा का विकास हुआ है। राज्य की शासन प्रणाली चाहे कोई भी क्यों न हो, परन्तु सरकार स्थिर अवश्य होनी चाहिए। यदि किसी राज्य में क्रांति या सैनिक पराजय के फलस्वरूप सरकार कुछ समय के लिए लुप्त हो जाये तो यह नहीं माना जाता कि राज्य लुप्त हो गया है, बल्कि यह आशा की जाती है कि वहां शीघ्र ही नई सरकार स्थापित होकर सत्ता संभाल लेगी। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो वह राज्य अपना अस्तित्व खो देता है और किसी अन्य राज्य का उपाश्रित बन जाता है।

प्रभुसत्ता –

राज्य का चौथा किंतु बुनियादी तत्व प्रभुसत्ता या संप्रभुता है। राज्य अपनी प्रभुसत्ता के कारण की विधि सम्मत बल–प्रयोग का अधिकार रखता है। अन्य साहचर्य रीतिरिवाज या आवयकता पर आधारित होते हैं और उनकी सदस्यता स्वैच्छिक हो सकती है। परंतु राज्य की सदस्यता अनिवार्य होती है और राज्य की आज्ञाओं का उल्लंघन करने वाला दंड का भागी होता है।

8.3 स्वराज का अर्थ

आत्मशासन या स्वराज का अर्थ है अपना शासन अर्थात अपनी आत्मा का शासन। इसमें किसी दूसरें से प्रभावित हुए बिना ईमानदारी पूर्वक जो आत्मा कहे उसी पर अमल करना ही स्वराज है। स्वराज में निःस्वार्थ भावना रहती है, त्याग तथा संयम का संगम होता है। जिससे शान्ति तथा विकास में बाधा नहीं आती है। स्वराज गाँधीजी का सपना था जिसे उन्होंने ब्रिटिशहुकूमत से मुक्ति करके सच किया था।

हिन्द स्वराज में गाँधीजी ने कहा– स्वराज अंग्रेजों के बिना अंग्रेजी शासन से कहीं अधिक है, यह बाघ के स्वभाव को बदलना है न कि बाघ का बदलना। स्वराज के अर्थ को बताते हुए कहा कि स्वंय पर अपने आत्म–सम्मान, आत्म–उत्तरदायित्व व आत्म–साक्षात्कार हेतु एक सच्चा प्रयास। गाँधीजी ने प्रारम्भ से ही स्वराज शब्द का इसके विशेष और व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। भारतीय जनमानस को स्वराज के लिए संगठित किया

यह स्वराज एक संवैधानिक और लोकतान्त्रिक, राजनैतिक व्यवस्था थी। स्वराज को सबसे पहले नौरोजी ने राजनैतिक अर्थ के लिए प्रयोग किया और बाद में तिलक ने इसकी प्रसिद्धि दिलाई। स्वराज तप या त्याग जैसे शब्दों से निकटता से जुड़ा है।

स्वराज का शाब्दिक अर्थ 'आत्म–शासन' और इसके वास्तविक शब्द के अर्थ में नैतिक स्वशासन की स्वयत्ता है जहाँ अपनी इन्द्रियों पर एक कड़ा नियंत्रण लगाया जाता है। अन्य शब्दों में इसका अर्थ आत्म–शासन और आत्म संयम है। यह सभी नियंत्रण से स्वतंत्र नहीं है। जैसा कि प्रायः स्वतन्त्रता का अभिप्राय लगाया जाता है। 1924 में गाँधीजी ने लिखा कि मेंरे लिए स्वराज का अर्थ है अपने सर्वाधिक दीनहींन देशवासियों की स्वतंत्रता। मुझे भारत को केवल अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त कराने में ही दिलचस्पी नहीं है। में भारत को सभी प्रकार की पराधीनताओं से मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध हूँ। मूझे एक शासक के स्थान पर दूसरे शासक को लाने की जरा भी इच्छा नहीं। स्वराज से मेरा तात्पर्य ऐसी भारत सरकार से है जो देश की वयस्क जनसंख्या तथा बाहर से आये वे सभी लोग सम्मिलित होगें जिन्होंने राज्य की सेवा में किसी भी प्रकार का शारीरिक श्रमदान किया होगा तथा मतदाता के रुप में अपने नाम को पंजीकृत कराने का कष्ट किया होगा। सच्चा स्वराज मुठ्ठी भर लोगों द्वारा सत्ता–प्राप्ति से नहीं आएगा बल्कि सत्ता का दुरुपयोग किए जाने की सूरत में, उसका प्रतिरोध करने की जनता का समार्थ्य विकसित होने से आएगा। दूसरे शब्दों में स्वराज को सत्ता का नियमन तथा नियंत्रण करने की अपनी क्षमता का विकास करने की शिक्षा देने से आएगा।

8.4 स्वराज की अवधारणा

स्वराज की अवधारणा व्यापक है यह किसी एक नियम, सिद्धान्त या दर्शन के द्वारा प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है। इसको कई दृष्टि से प्रयोग किया जा सकता है। भारत का स्वराज बहुसंख्यकों अर्थात हिन्दुओं का शासन होगा इससे बड़ी भ्रांति और कोई नहीं हो सकती क्योंकि गाँधीजी कहते है कि मेरी दृष्टि में हिन्द के स्वराज का अर्थ है सब लोगों का शासन, न्याय का शासन। इस शासन में मंत्री चाहे हिन्दू हो, केवल मुसलमान हों अथवा किसी अन्य समुदाय के हो, सबको निष्पक्ष न्याय करना होगा। आज हमारे मन विभ्रांत है, हम अज्ञानवश एक–दूसरे से लड़ रहें है और अपने ही भाईयों के साथ दंगा–फसाद कर रहे हैं। ऐसे लोगों के लिए न मोक्ष है, न स्वराज। स्वशासन अथाव स्वराज की पहली शर्त आत्म अनुशासन। हमारे जैसे विशाल देश में सभी ईमानदारीपूर्वक विचार संप्रदायों के लिए स्थान होना चाहिए। इसलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम से कम यह दायित्व अवश्य है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें और यदि हम उसे स्वीकार न कर पाये ंतो उसी तरह सम्मान करें, जिस प्रकार हम चाहतें है कि वह हमारे दृष्टिकोण का करें। यह स्वरुप सार्वजनिक जीवन की एक अपरिहार्य कसौटी है और इसलिए स्वराज के लिए भी आवश्यक है।

हिन्द स्वराज में गाँधीजी ने कहा सच्चा स्वराज का अर्थ है आत्मा का राज, इसके लिए सत्याग्रह मुख्य कुंजी है। स्वदेशी आत्मिक और नैतिक स्वतन्त्रता, सत्य व अहिंसा जैसे प्राचीन सद्‌गुणों के प्रभावकारी अभ्यास पर आधारित है। नैतिक स्वतंत्रता का अर्थ है इन्द्रियों और क्षुधाओं की मांगों पर विजय करना ताकि उच्चतर सत्य को प्राप्त किया जा सके। इस प्रकार से सत्य व अहिंसा पर श्रद्धापूर्वक जोर देकर विशेष इच्छा के आत्मवृत्ति को शुद्ध करना होता है। गाँधीजी ने आध्यात्मिक और नैतिक स्वतन्त्रताा के लिए दो पूर्व शर्तो को आवश्यक माना है। प्रथम उसके नैतिक व आध्यात्मिक विचार में अनाशक्ति के विचार को उन्नत करना होता है।

अनाशक्ति के अतिरिक्त गाँधीजी ने नैतिक व आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए दूसरी आवष्यक शर्त अभय को माना है। अभय को ईश्वर के सामने समर्पित करने से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार से सांसारिक लाालच और भय के परिणाम को पूर्ण रुप से नकारना ही अभय है। जो व्यक्ति अपनी आत्मिक मानवता की अनुश्रृति कर लेता है, ईश्वर के कानून के सिवाय और किसी कानून से नहीं डरता है। गाँधीजी एक आध्यात्मिक और नैतिक आदर्शवादी होने के कारण आशावादी थे। यद्यपि गाँधीजी ने आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के यांत्रिक और प्रौद्योगिकी पक्षों की आलोचना की है, परन्तु भविष्य में स्वतन्त्रता की अनुश्रुति होने का उन्हे अटूट विश्वास था। गाँधीजी मैक्स बेबर की अपेक्षा अधिक आशावादी थे। मैक्स वैबर का मानना था कि आधुनिक युग की तकनीकि तार्किकता दबाव के कारण वास्तविक मानवीय स्वतंन्त्रता के लिए क्षीण सम्भावनाएं है तो दूसरी ओर गाँधीजी कहते है– आधुनिक युग में भी नैतिक पूनर्जागरण हो जाए।

गाँधीजी ने स्वराज की प्राप्ति के लिए कठोर आत्म–नियंत्रण, अनुशासन, नैतिक व्यवहार और धैर्य के साथ पीड़ा सहन के उपाय बताए। यहाँ तक कि अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में भी। गाँधीजी ने कहा कि स्वतन्त्रता का अर्थ छूट नहीं है। व्यक्ति अपनी वस्तु का उपभोग तो करें परन्तु अन्य लोगों की वस्तु को छीनने का अधिकार नहीं है। उन्होंने कहा कि नम्रता, सत्यता और चिंतनशीलता– स्वराज की आधार षिलाएं है। उन्होंने यह भी लिखा है कि स्वैच्छिक अनुशासन सामूहिक स्वतन्त्रता की पहली पूर्व शर्त है। यदि जनता सही व्यवहार करेगी तो सरकारी अधिकारी भी उनके सच्चे सेवक बन जायेगे। जो स्वशासन निरन्तर पीड़ा व त्याग से प्राप्त होगा वह स्थायी व ठोस होगा। राजनीतिक स्वतन्त्रता या स्वराज निरन्तर पीड़ा व संघर्ष द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इस बात पर विश्वास करना असंगत होगा कि स्वराज एक उपहार के रुप में प्राप्त होगा। बंदोपाध्याय ने स्वराज की कुछ विशेषताओं को बताया है। इनके अनुसार स्वराज आन्तरिक स्वतन्त्रता पर आधारित है। चूंकि कार्य की स्वतंन्त्रता अर्जित किए गए सद्‌गुणों से प्राप्त की जाती है तब इसका अर्थ यह है कि इन अर्जित किए गए गुणों द्वारा व्यक्ति के आत्म–पूर्णता को मात्र इस बात से प्रकट होगी कि व्यक्ति स्वराज या बाध्य स्वतंत्रता का प्रयोग कर रहा है। व्यक्ति का बाध्य स्वराज उसके आंतरिक नैतिक उत्तरदायित्व के बीच समानता यह है कि स्वराज वास्तव में एक व्यक्तिगत उपलब्धि का मामला है। गाँधीजी ने इस बात पर बल दिया है कि आवश्यक तौर पर स्वतंत्रता की पूरक के रुप में है न कि उसकी विरोधी है।

स्वराज का अर्थ सभी के लिए स्वतन्त्रता या स्वराज है। व्यक्ति के लिए स्वराज एक सनातन निगरानी है– इस प्रकार की स्वतन्त्रता किसी देश से विदेशी शासन से मिली राजनीतिक स्वतन्त्रता है। यह स्वाभाविक तौर पर अस्थायी स्वतन्त्रता है। यद्यपि गाँधीजी का तात्तकालिक उद्‌देश्य भारत में ब्रिटिश शासन की समाप्ति था। गाँधीजी ने कभी भी भारत की स्वतन्त्रता को राजनीतिक स्वतन्त्रता से जोड़कर नहीं देखा। स्वराज में समानता शामिल है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता की संकल्पना के मूलभूत रुप में तब तक नहीं स्वीकार किया जा सकता है जब तक कि पहले इस प्रकार से स्वतन्त्रता की गाँधीवादी संकल्पना में आवष्यक तौर पर समानता का विचार, स्वतंन्त्रता और सभी का समान विकास, सभी अन्तर्बदल शब्द है। गाँधीजी ने इन्हें सर्वोदय कहा है।

स्वराज में अहिंसा शामिल है। सार्वभौम स्वतन्त्रता का प्रतिनिधित्व कर रहे सर्वोदय समाज को आवष्यक तौर पर अहिंसा पर आधारित होना चाहिए। अहिंसा के द्वारा ही, गाँधीजी के अनुसार, स्वतन्त्रता का संरक्षण व संवर्धन किया जा सकता है। गाँधीजी का मानना है कि हिंसा का मार्ग निश्चय ही तानाशाही की ओर ले जाता है और अहिंसा का मार्ग लोकतंत्र की ओर जाता है। गाँधीजी ने स्पष्ट किया है कि– सच्चा लोकतंत्र यथा स्वराज झूठे और हिंसक साधनों का आश्रय लेकर कभी स्थापित नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके प्रयोग का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि आपकों अपने हर प्रकार के विरोध को समाप्त करने के लिए दमनचक्र चलाना होगा या विरोधियों को देश निकाला दे देना होगा। इसे हम व्यक्ति स्वतन्त्रता नहीं कह सकते है। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता केवल विशुद्ध अहिंसा के वातावरण में ही पल्लवित हो सकती है।

स्वराज एक व्यापक परिकल्पना है। गाँधीजी स्वराज व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, सामाजिक स्वतन्त्रता, राजनीतिक स्वतन्त्रता की सूक्ष्म व्याख्या करते है। औद्योगिकीकरण, निजीकरण एवं वैष्वीकरण के युग में स्वराज की महत्ता और भी बढ़ गई है। व्यक्ति अर्थ प्रधान हो गया है। तथा वह आधार व्यवस्था का गुलाम हो गया है। गाँधी के स्वराज की परिकल्पना को वर्तमान संदर्भ में देखना होगा आज स्वराज की अवधारणा की आवश्यकता व्यक्ति समाज वह राज्य की बदलते परिप्रेक्ष्य में और महत्वपूर्ण हो जाती है।

8.5 पूर्ण स्वराज

कलकत्ता अधिवेशन में मुख्य प्रस्ताव के प्रारुप में स्पष्ट किया गया था कि यदि दो वर्ष के भीतर यानी 1930 के अंत तक दर्जा नहीं दिया गया तो कांग्रेस पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित कर देगी। यह प्रावधान मोतीलाल की मंषा के अनुरुप था। उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि औपनिवेशिक राज्य के दर्जे की मांग पर आधारित नहेरु रिपोर्ट को यदि बहुमत के समर्थन का आष्वासन नहीं मिला तो वे अधिवेशन की अध्यक्षता नहीं करेंगे। इस प्रकार कांग्रेस के लक्ष्य के प्रति विवाद खड़ा हो गया। युवा समूह, जिसकी मद्रास में कांग्रेस के पिछले अधिवेशन में स्वतंत्रता के प्रस्ताव को पारित कराने में मुख्य भूमिका थी। औपनिवेशिक राज्य के दर्जे के बारे में प्रस्ताव के प्रारुप में संसोधन का प्रस्ताव प्रस्तुत करना और कांग्रेस द्वारा स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित करवाना चाहते थे। गाँधीजी को मध्यस्था से कार्य समिति में समझौता हुआ और इंडिपेन्डिन्स लीग के नेताओं ने भी उसे स्वीकृति देदी। उसमें

कहा गया था कि यदि एक वर्ष के भीतर यानी 1929 के अंत तक औपनिवेषिक राज्य का दर्जा नहीं दिया गया तो कांग्रेस अपनी मांग मनवाने के लिए भी सभी मुनासिब उपाय करेगी।

गाँधीजी द्वारा खुले सत्र में प्रस्तुत समझौता प्रस्ताव इस प्रकार था, ''यह अधिवेषन सर्वदलीय समिति रिपोर्ट की सिफारिष पर आधारित संविधान पर विचार करने के बाद भारत की राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं के हल के लिए योगदान के रुप में उसका स्वागत करना है तथा लगभग सर्वसम्मत सिफारिषों के लिए समिति को बधाई देता है तथा समिति द्वारा तैयार संविधान को जो देश में महत्वपूर्ण दलों के बीच अधिकांष सहमति के प्रतीक के रुप में बनाया गया है अनुमोदित करता है। राजनैतिक स्थिति की अपरिहार्यता को ध्यान में रखते हुए यह अधिवेषन संविधान को अंगीकार करेगा, बशर्ते ब्रिटेन की संसार इसे ज्यों का त्यों 31 दिसम्बर 1929 को अथवा उससे पूर्व स्वीकार कर ले, लेकिन यदि निश्चित तिथि तक इसे स्वीकृति नहीं दी गई अथवा इससे पूर्व ही ठुकरा दिया गया तो कांग्रेस अहिंसक असहयोग का अभियान चलायेगी। उसके अंतर्गत देश भर को कर न चुकाने तथा अन्य निर्णयों के अनुरुप और भी कदम उठाने की सलाह दी जायेगी। प्रस्ताव पर बोलते हुए गाँधीजी ने अधिवेषन से इस संसोधन को खारिज कर देने की अपील की। अपने भाषण के दौरान भारी मन से उन्होंने यह शब्द कहे; 'आप अपने होंठो से भले ही आजादी का नाम ले, जैसे मुसलमान अल्लाह का नाम ले अथवा आस्थावान हिन्दू, कृष्ण अथवा राम का नाम ले, लेकिन यदि उसके पीछे सम्मान का भाव नहीं है तो वह सिर्फ दिखावा होगा यदि अपनी बात की आन नहीं रखते तो आजादी कहाँ से आयेगी। आजादी का ताल्लुक अनुशासन से है। यह शब्दों की बाजीगरी से नहीं हासिल होती, सुभाष का संबोधन खारिज हो गया तथा समझौता प्रस्ताव भारी बहुमत से पारित हुआ। मोतीलाल ने समापन टिप्पणी की : सुभाष और जवाहरलाल दोनों ने ही महात्माजी के प्रस्ताव में संषोधन पर अपने भाषण में कहा है कि उनकी राय में; हम अनुभवी लोग किसी काम के नहीं है इतने मजबूत भी नहीं है तथा समय से बहुत पीछे है। इसमें नया कुछ नहीं है। इस दुनिया में बुजुर्गों को जवान लोग हमेशा ही दकियानूस समझते है। मैं आपको कुछ सलाह दे रहा हूँ। दो शब्द स्वतंत्रता एवं औपनिवेशिक दर्जा विदेशी भाषा से लिए गए है और इन्हें आज ही अपने दिमाग से मिटा दीजिए और स्वराज एवं आजादी शब्दों को अपना लीजिए। हमें स्वराज के लिए प्रयास कराना चाहिए। फिर हम उसे भले ही किसी भी नाम से पुकारें। इस बारें में मुझे रत्ती भर शक नहीं है कि कांग्रेस के अगले अधिवेशन तक हम एकजुट होकर अगला कदम बढ़ा रहें होगें।

पहली बार जारी होने पर हालांकि नेहरु रिपोर्ट को आत्म समर्थन मिला था, लेकिन समय बीतने पर मुस्लिम ने उससे असहमति जतानी आरम्भ कर दी। इसके बावजूद गाँधीजी निराष नहीं थे। उन्होंने कहा : यदि आप (जनता) मेरी सहायता करें तथा मेरे द्वारा सुझाए गए कार्यक्रम का ईमानदारी एवं समझदारी से पालन करें तो में वचन देता हूँ कि स्वराज एक ही वर्ष में स्थापित हो जायेगा।

8.6 स्वराज एवं अराजकतावाद

व्यक्तिववाद और साम्यववाद दोनों से कहीं आर्थिक उग्र एवं राज्य–विरोधी विचारधारा अराजकतावाद है। जहाँ व्यक्तिवादी राज्य के कार्यों को सीमित रखना चाहते हैं। वहीं अराजकतावाद राज्य के दायित्व को ही समाप्त करना चाहते हैं। जिस प्रकार साम्यवादियों का मुख्य शत्रु पूँजीवाद उसी प्रकार अराजकतावादियों का मुख्य शत्रु राज्य है। साम्यवादी जहाँ क्रांति के पश्चात राज्य को संक्रमण काल के लिए सर्वहारा वर्ग के अधिनायकवाद के रूप में सुरक्षित रखना चाहते हैं, वहाँ अराजकतावादियों को क्रान्ति का प्रमुख उद्देश्य राज्य का अंत कर देना है। इसलिए कहा जाता है कि ''साम्यवाद जहाँ समाप्त होता है, अराजकतावाद वहाँ आरम्भ होता है। वस्तुतः अराजकतावादी दर्शन सत्ता–विरोधी विचारधाराओं में से है जो सब प्रकार के राज्य, राजसत्ता तथा राजनीतिक नियंत्रणों का उपहास कर एक राज्यविहीन समाज की कल्पना करता है।

'अनार्की' (अराजकता) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'अनारकिया' से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'शाासन का उपभाव'। अतः अराजकतावादी एक ऐसा क्रान्तिकारी विचार धारा है जो राज्य तथा सरकार का उन्मूलन कर उसके स्थान पर राज्यहीन और वर्गहीन समाज का पुनर्गठन करना चाहती है। अराजकतावादी दर्शन के मत में सब प्रकार के राजनीतिक बल का प्रयोग समान रूप से हानिकारक है, चाहे वह राजतंत्र द्वारा प्रयुक्त किया जाए अथवा गणतंत्र द्वारा। अतः राज्य के दुर्गुण हो समाज में सर्वथा अनावश्यक, अवांछनीय तथा अत्याचारपूर्ण है।

अराजकतावादी राज्यविहीन समाज में राज्य के रिक्त स्थान की पूर्ति स्वतंत्र एवं ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा करना चाहते हैं जिससे राज्य के शासन विभाग जैसे सेना, न्यायालय, कारागार आदि सब निरर्थक हो जायेंगें।

अराजकतावाद अपने आपमे कोई नवीन विचारधारा नहीं है। यह एक प्राचीन विचारधारा है। ग्रीक दर्शन में स्टोइक प्रणाली के जन्मदाता जेनो नें एक राज्य विहीन समाज का प्रतिपादन किया था जिसमें पूर्ण समानता और स्वतत्रता मानव स्वभाव की मूल सद्वृत्तियों को पुनर्जागृत करेगी और सार्वभामिक सामंजस्य स्थापित कर देगी। भारत में भी अनेक प्राचीन संत तथा विचारक मानवीय पूर्णता तथा अलौकिक आनन्द की प्राप्ति के लिए राज्य को आवश्यक न मानकर बाधक मानते थे। 300 बी0सी0 में चीनी दार्शनिक चाँगजू ने कहा था कि एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों को अपने अधीन रखना मानव स्वभाव के प्रतिकूल है। मध्ययुग में स्पीनल तथा शैली के विचारों में भी अराजकतावादी तत्वों का परिचय प्राप्त होता है। आधुनिक युग में यद्यपि एडम स्मिथ, स्पेंसर एवं अन्य भौतिकवादी लेखकों के राज्य विरोधी विचारों द्वारा अराजकतावाद को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ तथापि अराजकतावाद को क्रमबद्ध रूप प्रदान करने का श्रेय विलियम गाडविन, थॉमस हॉगस्किन, प्रोधाँ, माइकल बैकोचिन, टॉलस्टॉय, प्रिंस क्रोपोट आदि को जाता है। इन दार्शनिके ने अराजकतावादी सिद्धान्त को एक आधुनिक राजनीतिक विचारधारा का रूप दिया है। रसल, महात्मा गाँधी तथा विनोबा भावे के विचारों में भी अराजकतावादी चिंतन पाया जाता है।

भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा को सामाजिक जीवन के मार्गदर्शक सिद्धान्त को मानते हुए यह तर्क दिया है कि राज्य बल–प्रयोग पर आधारित है। अतः वह हिंसा के साथ जुड़ी है। आदर्श समाज के अन्तर्गत जब सभी व्यक्ति अहिंसा की भावना से प्रेरित होकर एक–दूसरे के साथ सहज स्वाभाविक रूप से समायोजन कर सकेंगें, तब कोई किसी पर बल प्रयोग नहीं करेगा। बलवान निर्धन को नहीं सतायेगा, धनवान, निर्धन का शोषण नहीं करेगा। ऐसी हालत में राज्य एवं राजनीतिक शक्ति का अस्तित्व निरर्थक और अनावश्यक हो जायेगा। इस तरह गाँधी जी ने ''राज्यविहीन समाज'' की वकालत करके नैतिक आधार पर अराजकतावाद की पुष्टि की है।

अराजकतावादी दर्शन में सार इतना है कि इसने राज्य और समाज संबंधी बुराइयों का पर्दाफाश किया है तथा व्यक्ति को नैतिक रूप से उन्नत प्राणी माना है तथा इस वास्तविकता को प्रकट किया है कि जन्म से मनुष्य दुर्गुणी नहीं होता बल्कि सामाजिक परिस्थितियाँ उसे दुर्बलताओं का शिकार बना देती है। अराजकतावाद का महत्व इस बात में भी है कि इसने राज्य की अति महत्ता का खण्डन कर आत्म निर्भरता और सहयोग की भावना को उन्नति का मूलमंत्र बताया है। इसने राजनीतिक जीवन एवं पूंजीवाद के दोषों को उजागर किया है। शासन और समाज के बुद्धिजीवियों को अराजकतावादी दर्शन से रचनात्मक प्रेरणा लेकर प्रशासनिक और सामाजिक बुराइयों के निराकरण मे अधिकाधिक सक्रिय होना चाहिए।

8.7 सारांश

स्वराज का अर्थ और उसकी अवधारणा का विस्तृत अध्ययन इस इकाई में किया गया। स्वराज का शाब्दिक अर्थ ''आत्म शासन'' 'आत्म संयम' है। प्राचीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में आत्मशासन के सूत्र मिलते है। आधुनिक भारत में स्वराज शब्द का प्रयोग दादाभाई नौरोजी, तिलक और अरबिन्दों से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के उद्देश्य के रुप में विशिष्ट तौर पर किया है।

गाँधीजी ने प्रारम्भ से ही स्वराज शब्द का विशेष और व्यापक अर्थ में प्रयोग किय है। इनके अनुसार स्वराज का अर्थ है अपने सर्वाधिक दीन हीन देशवासियों की स्वतन्त्रता से है। गाँधीजी ने स्वराज प्राप्ति के लिए कठोर आत्म–नियंत्रण, अनुशासन, नैतिक व्यवहार और धैर्य के साथ पीड़ा सहन के उपाय बताए है।

8.8 बोध प्रश्न

प्रश्न –1– स्वराज की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न –2– राज्य की प्रमुख विषेशताएं बताइए।

प्रश्न –3–स्वराज नैतिक उत्थान में किस प्रकार सहायता करता है।

प्रश्न –4–सच्चा स्वराज कैसे आएगा?

8.9 उपयोगी पुस्तकें :

1. एम. के. गाँधी – हिन्द स्वराज।
2. डी.जी. तेंदुलकर – महात्मा, नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
3. एन. राघवन अय्यर – द मोरल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ महात्मा गाँधी, दिल्ली, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. बी.ए. साल्तोरी, एन्सीऐट इंडियन पॉलिकल थॉट, मुम्बई, एषिया पब्लिषिंग हाउस।
5. यंग इण्डिया, 19–3–1931, पृष्ठ 381।
6. महादेव देसाई, वीर गाँधी इन सीलोन।
7. महात्मा गाँधी के लेख – भाषण।
8. एम0के गाँधी, टू द स्टूडेन्ट, अहमदाबादः नवजीवन पब्लिशिंग हाउस।

खंड–5 (ट्रस्टीशिप)

खंड परिचय

महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप का सिद्धांत उनके आर्थिक और सामाजिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह सिद्धांत गाँधी जी के जीवन दर्शन का एक अभिन्न अंग था, जो उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ा हुआ था। ट्रस्टीशिप की अवधारणा का मूल विचार यह है कि व्यक्ति या संस्थाएँ अपनी संपत्ति और संसाधनों के मालिक नहीं, बल्कि केवल उनके ट्रस्टी (न्यासी) हैं, और उन्हें इनका उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए। गाँधी जी ने इस सिद्धांत को एक ऐसे समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जो पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच एक मध्यम मार्ग प्रदान करता है। उनका मानना था कि यह दृष्टिकोण आर्थिक असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में मदद कर सकता है, बिना किसी हिंसक क्रांति या राज्य द्वारा जबरन संपत्ति के अधिग्रहण की आवश्यकता के।

ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के अनुसार, धनी व्यक्तियों और व्यवसायों को अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के गरीब और वंचित वर्गों के उत्थान के लिए करना चाहिए। गाँधी जी का मानना था कि यह व्यवस्था स्वैच्छिक होनी चाहिए और इसे कानून द्वारा थोपा नहीं जाना चाहिए। उन्होंने आशा व्यक्त की कि लोग अपने नैतिक बोध और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना से प्रेरित होकर इस सिद्धांत को अपनाएंगे। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप को केवल धन के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि व्यापक अर्थों में देखा। उनका मानना था कि हर व्यक्ति अपने ज्ञान, कौशल और क्षमताओं का ट्रस्टी है, और उसे इनका उपयोग न केवल अपने लिए, बल्कि पूरे समाज के लाभ के लिए करना चाहिए। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच एक संतुलन स्थापित करता है।

ट्रस्टीशिप की अवधारणा गाँधी जी के अपरिग्रह (असंग्रह) के सिद्धांत से भी जुड़ी हुई है। अपरिग्रह का अर्थ है अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह न करना। गाँधी जी का मानना था कि व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखना चाहिए और अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग दूसरों की मदद के लिए करना चाहिए। ट्रस्टीशिप इस विचार को व्यावहारिक रूप देता है, जहां धनी व्यक्ति अपनी अतिरिक्त संपत्ति का प्रबंधन समाज के लाभ के लिए करते हैं। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप को एक ऐसे तंत्र के रूप में देखा जो आर्थिक असमानता को कम कर सकता है और समाज में सामंजस्य स्थापित कर सकता है। उनका मानना था कि यदि धनी व्यक्ति अपनी संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करें, तो यह गरीब और अमीर के बीच की खाई को पाटने में मदद करेगा। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप एक ऐसा साधन बन जाता है जो समाज में आर्थिक न्याय और समानता लाने में मदद कर सकता है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत व्यवसायों और उद्योगों पर भी लागू होता है। गाँधी जी का मानना था कि व्यवसाय के मालिकों और प्रबंधकों को अपने उद्यमों को समाज के ट्रस्टी के रूप में चलाना चाहिए। इसका अर्थ है कि उन्हें न केवल लाभ कमाने पर ध्यान देना चाहिए, बल्कि अपने कर्मचारियों, ग्राहकों और समुदाय के हितों का भी ध्यान रखना चाहिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) की अवधारणा के समान है, जो आज के व्यावसायिक जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप को राजनीतिक नेतृत्व पर भी लागू किया। उनका मानना था कि राजनेताओं और सरकारी अधिकारियों को अपने पदों को जनता के ट्रस्टी के रूप में देखना चाहिए। इसका अर्थ है कि उन्हें अपनी शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं, बल्कि जनता के कल्याण के लिए करना चाहिए। यह दृष्टिकोण राजनीतिक भ्रष्टाचार को रोकने और लोकतांत्रिक मूल्यों को मजबूत करने में मदद कर सकता है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी बहुत प्रासंगिक है। गाँधी जी ने प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण संबंध पर जोर दिया था। ट्रस्टीशिप के दृष्टिकोण से, हम प्राकृतिक संसाधनों के ट्रस्टी हैं और हमारा कर्तव्य है कि हम इनका उपयोग विवेकपूर्ण ढंग से करें और आने वाली पीढ़ियों के लिए इन्हें संरक्षित करें। यह ष्टिकोण सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के आधुनिक विचारों के अनुरूप है। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप को एक व्यावहारिक और नैतिक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जो समाज में आर्थिक न्याय और सामाजिक समरसता ला सकता है। हालांकि, उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इस सिद्धांत को व्यवहार में लाना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। उन्होंने माना कि सभी धनी व्यक्ति स्वेच्छा से अपनी संपत्ति का त्याग नहीं करेंगे। फिर भी, उन्होंने आशा व्यक्त की

कि समय के साथ, लोगों में नैतिक चेतना का विकास होगा और वे ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को स्वीकार करेंगे।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत गाँधी जी के 'सर्वोदय' (सभी का उदय) के विचार से भी जुड़ा हुआ है। सर्वोदय का लक्ष्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना है जहां सभी का कल्याण हो। ट्रस्टीशिप इस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है, जहां संसाधनों का न्यायसंगत वितरण समाज के सभी वर्गों के उत्थान में मदद करता है। निष्कर्ष के रूप में, गाँधी जी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत एक व्यापक और गहन अवधारणा है जो आर्थिक, सामाजिक और नैतिक पहलुओं को एक साथ जोड़ती है। यह सिद्धांत व्यक्तिगत स्वार्थ और सामाजिक कल्याण के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। हालांकि यह एक आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रतीत हो सकता है, लेकिन इसके मूल में एक गहरी नैतिक और व्यावहारिक समझ है जो आज भी प्रासंगिक है। आधुनिक संदर्भ में, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व, सतत विकास और समावेशी आर्थिक नीतियों के रूप में प्रतिबिंबित होता है। गाँधी जी का यह विचार आज भी हमें एक अधिक न्यायसंगत और समतामूलक समाज की ओर बढ़ने की प्रेरणा देता है।

प्रस्तुत खंड में ट्रस्टीशिप पर विचार करते हुए इसे दो इकाईयों में विभक्त किया गया है–

इकाई–9 में ट्रस्टीशिप के सन्दर्भ में अर्थशास्त्र का नैतिक व आध्यात्मिक सिद्धांत की चर्चा की गई है।

इकाई–10 में ट्रस्टीशिप के आधारों की चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है।

इकाई–9 अर्थशास्त्र का नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांत

इकाई की रूपरेखा–

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 गाँधी के आर्थिक दर्शन का परिचय

9.3 सत्य और अहिंसा– गाँधी के आर्थिक विचारों का आधार

9.4 स्वदेशी और स्वावलंबन की अवधारणा

9.5 ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण

9.6 मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के प्रति दृष्टिकोण

9.7 आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय

9.8 गाँधी के आर्थिक विचारों में नैतिकता का महत्व

9.9 आध्यात्मिकता और आर्थिक विकास का संबंध

9.10 गाँधी के आर्थिक दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता

9.11 निष्कर्ष

9.12 सारांश

9.13 प्रश्न बोध

9.14 उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य महात्मा गाँधी के आर्थिक दर्शन का गहन अध्ययन प्रस्तुत करना है, जो उनके नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित है। यह अध्याय छात्रों और शोधकर्ताओं को गाँधीजी के आर्थिक विचारों की व्यापक समझ प्रदान करेगा, जो उनके समग्र दर्शन का एक अभिन्न अंग है। हम गाँधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण के मूल तत्वों की खोज करेंगे, इसके साथ ही, हम यह भी समझेंगे कि कैसे उनके नैतिक मूल्य –सत्य और अहिंसा – उनके आर्थिक विचारों को आकार देते हैं। इस इकाई का लक्ष्य है कि छात्र न केवल गाँधीजी के आर्थिक सिद्धांतों को समझें, बल्कि उनके पीछे के दार्शनिक और नैतिक आधार को भी गहराई से जानें। हम यह भी विश्लेषण करेंगे कि कैसे गाँधीजी के विचार आधुनिक अर्थव्यवस्था और समाज के लिए प्रासंगिक हैं। अंत में, यह इकाई छात्रों को गाँधीजी के आर्थिक दर्शन पर चिंतन करने और उसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। इससे वे न केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, बल्कि वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के संदर्भ में भी गाँधीजी के विचारों की प्रासंगिकता को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी 20वीं सदी के सबसे प्रभावशाली विचारकों में से एक थे। उनका प्रभाव केवल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन तक ही सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने एक नए समाज और अर्थव्यवस्था की कल्पना की जो नैतिक मूल्यों और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित हो। गाँधीजी का आर्थिक दर्शन उनके समग्र जीवन दर्शन का एक अभिन्न अंग था। उन्होंने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की वकालत की जो मानवीय मूल्यों, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन पर आधारित हो। उनके विचार पश्चिमी औद्योगिक मॉडल से बिल्कुल अलग थे, जो मुख्य रूप से आर्थिक विकास और लाभ पर केंद्रित था।

गाँधीजी ने अर्थशास्त्र को नैतिकता और आध्यात्मिकता से अलग नहीं माना। उनका मानना था कि आर्थिक गतिविधियाँ मानव कल्याण और आत्म–साक्षात्कार के लिए एक साधन होनी चाहिए, न कि स्वयं में एक लक्ष्य। इस दृष्टिकोण ने उन्हें अपने समय के प्रचलित आर्थिक सिद्धांतों से अलग कर दिया। इस अध्याय में, हम गाँधीजी के आर्थिक विचारों के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करेंगे। हम देखेंगे कि कैसे उनके मूल सिद्धांत – सत्य और अहिंसा – उनके आर्थिक दृष्टिकोण को आकार देते हैं। साथ ही, हम उनके प्रमुख आर्थिक विचारों जैसे स्वदेशी, स्वावलंबन, ट्रस्टीशिप और सर्वोदय की गहराई से जांच करेंगे। अंत में, हम गाँधीजी के आर्थिक दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता पर चर्चा करेंगे, विशेष रूप से वैश्वीकरण, पर्यावरण संकट और बढ़ती आर्थिक असमानता के युग में। यह अध्याय छात्रों को गाँधीजी के विचारों को समझने और उन्हें आधुनिक संदर्भ में लागू करने के लिए प्रेरित करेगा।

9.2 गाँधी के आर्थिक दर्शन का परिचय

महात्मा गाँधी का आर्थिक दर्शन उनके समग्र जीवन दर्शन का एक अभिन्न अंग था, जो सत्य, अहिंसा और नैतिकता के मूल्यों पर आधारित था। गाँधीजी ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की जो मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर केंद्रित हो, न कि केवल भौतिक समृद्धि और आर्थिक विकास पर। उनका आर्थिक दृष्टिकोण 'सरलता' और 'आत्मनिर्भरता' के सिद्धांतों पर आधारित था। गाँधीजी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त साधन मिलने चाहिए, लेकिन लालच और अत्यधिक उपभोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। उन्होंने 'अपरिग्रह' या संग्रह न करने के सिद्धांत को बढ़ावा दिया, जिसका अर्थ है केवल आवश्यक वस्तुओं का उपयोग करना। गाँधीजी ने 'स्वदेशी' की अवधारणा को प्रोत्साहित किया, जिसका अर्थ है स्थानीय उत्पादों और सेवाओं का उपयोग करना। उनका मानना था कि यह न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा, बल्कि समुदायों को आत्मनिर्भर भी बनाएगा। साथ ही, उन्होंने बड़े पैमाने पर मशीनीकरण के खिलाफ चेतावनी दी, यह मानते हुए कि यह बेरोजगारी और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देगा।

गाँधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धांत को भी प्रस्तावित किया, जिसके अनुसार धनी व्यक्तियों को अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए। उन्होंने 'ब्रेड लेबर' या शारीरिक श्रम के महत्व पर भी जोर दिया, यह मानते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रोजी–रोटी के लिए कुछ शारीरिक श्रम करना चाहिए। गाँधीजी का आर्थिक दर्शन 'सर्वोदय' या 'सभी का उत्थान' की अवधारणा पर केंद्रित था। उनका मानना था कि आर्थिक विकास का लक्ष्य केवल कुछ लोगों की समृद्धि नहीं, बल्कि समाज के सबसे कमजोर वर्ग का उत्थान होना चाहिए। संक्षेप में, गाँधीजी का आर्थिक दर्शन एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना करता है जो नैतिक, टिकाऊ और समावेशी हो, जो मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखते हुए सामाजिक न्याय और आर्थिक समानता को बढ़ावा दे।

9.3 सत्य और अहिंसा

गाँधी के आर्थिक विचारों का आधार– गाँधीजी के आर्थिक दर्शन का मूल आधार उनके दो प्रमुख सिद्धांत – सत्य और अहिंसा थे। ये सिद्धांत न केवल उनके राजनीतिक और सामाजिक विचारों को, बल्कि उनके आर्थिक दृष्टिकोण को भी गहराई से प्रभावित करते थे। सत्य के संदर्भ में, गाँधीजी का मानना था कि आर्थिक गतिविधियाँ पारदर्शी और ईमानदार होनी चाहिए। उन्होंने व्यापार में धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार और अनैतिक प्रथाओं का विरोध किया। उनका विश्वास था कि सच्चाई पर आधारित अर्थव्यवस्था ही दीर्घकालिक समृद्धि और सामाजिक न्याय ला सकती है। यह दृष्टिकोण आज के समय में भी प्रासंगिक है, जहाँ कॉरपोरेट पारदर्शिता और नैतिक व्यवसाय प्रथाएँ महत्वपूर्ण मुद्दे बन गए हैं।

अहिंसा का सिद्धांत गाँधीजी के आर्थिक विचारों में केंद्रीय स्थान रखता था। उनका मानना था कि आर्थिक विकास किसी भी रूप में हिंसा या शोषण पर आधारित नहीं होना चाहिए। इसमें न केवल मनुष्यों के प्रति हिंसा, बल्कि प्रकृति और पर्यावरण के प्रति हिंसा भी शामिल थी। गाँधीजी ने ऐसी अर्थव्यवस्था की वकालत की जो सहयोग और परस्पर लाभ पर आधारित हो, न कि प्रतिस्पर्धा और शोषण पर। इन सिद्धांतों के आधार पर, गाँधीजी ने स्वदेशी, ग्रामीण स्वावलंबन, और लघु उद्योगों को बढ़ावा दिया। उनका मानना था कि ये विचार सत्य और अहिंसा के साथ अधिक संगत हैं, क्योंकि वे समुदायों को आत्मनिर्भर बनाते हैं और बड़े पैमाने पर शोषण को रोकते हैं।

गाँधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धांत भी सत्य और अहिंसा पर आधारित था। उन्होंने धनी लोगों से आग्रह किया कि वे अपने धन को समाज के लिए एक ट्रस्ट के रूप में देखें और इसका उपयोग सबके कल्याण के लिए करें। यह दृष्टिकोण आर्थिक असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का एक अहिंसक तरीका था। संक्षेप में, सत्य और अहिंसा गाँधीजी के आर्थिक दर्शन के आधारस्तंभ थे, जो एक नैतिक, न्यायसंगत और टिकाऊ अर्थव्यवस्था की ओर ले जाते थे। ये सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं, जब दुनिया आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय क्षति और नैतिक व्यावसायिक प्रथाओं जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है।

9.4 स्वदेशी और स्वावलंबन की अवधारणा

स्वदेशी और स्वावलंबन गाँधीजी के आर्थिक दर्शन के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। ये अवधारणाएँ न केवल आर्थिक स्वतंत्रता के लिए, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए भी महत्वपूर्ण थीं। स्वदेशी का अर्थ है 'अपने देश काश। गाँधीजी ने इस अवधारणा को केवल विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तक सीमित नहीं रखा, बल्कि इसे एक व्यापक आर्थिक और सामाजिक दर्शन के रूप में देखा। उनका मानना था कि स्थानीय उत्पादों और सेवाओं का उपयोग न केवल स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करेगा, बल्कि समुदायों को आत्मनिर्भर भी बनाएगा। स्वदेशी का विचार स्थानीय संसाधनों, कौशल और ज्ञान के उपयोग पर जोर देता है, जो टिकाऊ विकास और पर्यावरण संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण है।

स्वावलंबन या आत्मनिर्भरता गाँधीजी के आर्थिक दर्शन का एक और महत्वपूर्ण पहलू है। उनका मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए। यह अवधारणा विशेष रूप से ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संदर्भ में महत्वपूर्ण थी, जहाँ गाँधीजी चाहते थे कि गाँव अपनी अधिकांश जरूरतों के लिए आत्मनिर्भर हों। गाँधीजी ने इन अवधारणाओं को भारत की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए आवश्यक माना। उनका मानना था कि स्वदेशी और स्वावलंबन न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा देंगे, बल्कि लोगों को सशक्त भी बनाएंगे। ये विचार बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण और केंद्रीकृत आर्थिक नियोजन के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किए गए थे।

हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि गाँधीजी पूर्ण अलगाव या आत्मनिर्भरता के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने संस्कृतियों और विचारों के आदान–प्रदान का स्वागत किया, लेकिन आर्थिक शोषण और परनिर्भरता का विरोध किया।

आज के वैश्वीकृत दुनिया में, स्वदेशी और स्वावलंबन के विचार फिर से प्रासंगिक हो गए हैं। स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने, पर्यावरण संरक्षण और सामुदायिक लचीलापन बढ़ाने के लिए इन अवधारणाओं का उपयोग किया जा रहा है।

9.5 ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण

गाँधीजी का ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण का विचार उनके आर्थिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा था। यह अवधारणा भारत के लिए एक वैकल्पिक विकास मॉडल प्रस्तुत करती है, जो बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण और केंद्रीकृत नियोजन के विपरीत है। ग्राम स्वराज का अर्थ है 'गांवों का स्वशासन'। गाँधीजी का मानना था कि भारत की आत्मा उसके गांवों में निवास करती है, और देश का वास्तविक विकास तभी होगा जब गांव आत्मनिर्भर और स्वशासित हों। उन्होंने एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना की जहां –

1. गांव अपनी अधिकांश आवश्यकताओं के लिए आत्मनिर्भर हों।
2. स्थानीय संसाधनों और कौशल का उपयोग करके उत्पादन हो।
3. गांव के लोग अपने मामलों का प्रबंधन स्वयं करें।
4. पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से लोकतांत्रिक निर्णय लिए जाएं।

विकेंद्रीकरण गाँधीजी के आर्थिक दर्शन का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू था। उनका मानना था कि आर्थिक और राजनीतिक शक्ति का केंद्रीकरण शोषण और असमानता की ओर ले जाता है। इसके बजाय, उन्होंने प्रस्तावित किया–

1. छोटे पैमाने के उद्योगों और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना।

2. स्थानीय स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया को मजबूत करना।

3. आर्थिक गतिविधियों का विकेंद्रीकरण करना ताकि रोजगार के अवसर गांवों में ही उपलब्ध हों।

गाँधीजी का मानना था कि यह मॉडल न केवल आर्थिक विकास लाएगा, बल्कि सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा देगा। हालांकि, इस दृष्टिकोण की आलोचना भी हुई, विशेष रूप से तेज आर्थिक विकास और वैश्वीकरण के संदर्भ में। आज, जबकि भारत ने बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण का रास्ता अपनाया है, गाँधीजी के ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण के विचार फिर से प्रासंगिक हो गए हैं। ये विचार सतत विकास, स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने और पर्यावरण संरक्षण के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

9.6 मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के प्रति दृष्टिकोण

गाँधीजी का मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के प्रति दृष्टिकोण उनके आर्थिक दर्शन का एक विवादास्पद पहलू रहा है। उनका मत बड़े पैमाने पर मशीनीकरण और औद्योगीकरण के विरुद्ध था, जो उस समय के प्रचलित आर्थिक विकास मॉडल से अलग था। गाँधीजी के दृष्टिकोण के मुख्य बिंदु–

1. **मानवीय मूल्य** – उन्होंने माना कि बड़े पैमाने पर मशीनीकरण मानव श्रम को कम महत्व देता है और लोगों को मशीनों पर निर्भर बनाता है।

2. बेरोजगारी उनका मानना था कि मशीनीकरण बड़े पैमाने पर बेरोजगारी पैदा करेगा, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।

3. **केंद्रीकरण**– बड़े उद्योग आर्थिक शक्ति के केंद्रीकरण की ओर ले जाते हैं, जो गाँधीजी के विकेंद्रीकरण के सिद्धांत के विपरीत है।

4. **पर्यावरणीय चिंताएँ**– उन्होंने बड़े उद्योगों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के शोषण और पर्यावरण प्रदूषण की चिंता व्यक्त की।

5. **सामाजिक संरचना**– गाँधीजी का मानना था कि बड़े उद्योग ग्रामीण समुदायों को नष्ट कर देंगे और सामाजिक संरचना को बिगाड़ देंगे।

हालांकि, गाँधीजी सभी प्रकार की मशीनों या प्रौद्योगिकी के विरोधी नहीं थे। उन्होंने ऐसी मशीनों का समर्थन किया जो श्रम को कम करती हैं लेकिन बेरोजगारी नहीं बढ़ाती। उदाहरण के लिए, उन्होंने चरखे को एक उपयोगी उपकरण माना। गाँधीजी ने कुटीर उद्योगों और छोटे पैमाने के उद्योगों को बढ़ावा दिया, जो स्थानीय संसाधनों और कौशल का उपयोग करते हैं। उनका मानना था कि ये उद्योग रोजगार पैदा करेंगे, आर्थिक स्वावलंबन को बढ़ावा देंगे और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करेंगे। आज के संदर्भ में, गाँधीजी के विचार फिर से प्रासंगिक हो गए हैं, विशेषकर सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण और समावेशी विकास के संदर्भ में। हालांकि, उनके दृष्टिकोण को आधुनिक तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के युग में पूरी तरह से लागू करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।

9.7 आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय

गाँधीजी के आर्थिक दर्शन में आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय केंद्रीय स्थान रखते हैं। उनका मानना था कि वास्तविक स्वतंत्रता तभी संभव है जब समाज में आर्थिक असमानता कम हो और सभी को न्यायसंगत अवसर मिलें। प्रमुख बिंदुरू

1. **आर्थिक समानता**– गाँधीजी ने पूर्ण आर्थिक समानता की वकालत नहीं की, लेकिन उन्होंने चरम असमानता को हानिकारक माना। उनका लक्ष्य था कि समाज के सभी वर्गों की बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी हों।

2. **आय का पुनर्वितरण**– उन्होंने ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के माध्यम से धन के पुनर्वितरण का समर्थन किया, जहाँ धनी लोग अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करें।

3. **न्यूनतम जीवन स्तर**– गाँधीजी का मानना था कि प्रत्येक व्यक्ति को एक न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित किया जाना चाहिए, जिसमें भोजन, कपड़े, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएँ शामिल हों।
4. **श्रम की गरिमा**– उन्होंने सभी प्रकार के श्रम की गरिमा पर जोर दिया और शारीरिक श्रम को बौद्धिक श्रम के बराबर महत्व दिया।
5. **भूमि सुधार**– गाँधीजी ने भूमि के न्यायसंगत वितरण का समर्थन किया और जमींदारी प्रथा का विरोध किया।
6. **शोषण–मुक्त अर्थव्यवस्था**– उनका लक्ष्य एक ऐसी अर्थव्यवस्था था जहाँ कोई शोषण न हो और सभी को अपनी क्षमता के अनुसार विकास के अवसर मिलें।
7. **सामाजिक समानता**– गाँधीजी ने जाति व्यवस्था और छुआछूत जैसी सामाजिक असमानताओं का दृढ़ता से विरोध किया।
8. **महिला सशक्तिकरण**– उन्होंने महिलाओं के आर्थिक स्वतंत्रता और समान अधिकारों का समर्थन किया।

गाँधीजी का दृष्टिकोण आज भी प्रासंगिक है, विशेषकर बढ़ती आर्थिक असमानता और सामाजिक अन्याय के संदर्भ में। उनके विचार समावेशी विकास, सामाजिक उद्यमिता और कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व जैसी अवधारणाओं में प्रतिबिंबित होते हैं। हालांकि, गाँधीजी के कुछ विचारों को लागू करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, विशेषकर वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में। फिर भी, उनका दर्शन हमें याद दिलाता है कि आर्थिक विकास का लक्ष्य केवल संपत्ति का निर्माण नहीं, बल्कि सभी के लिए बेहतर जीवन की गुणवत्ता सुनिश्चित करना होना चाहिए।

9.7 गाँधी के आर्थिक विचारों में नैतिकता का महत्व

गाँधीजी के आर्थिक दर्शन में नैतिकता एक केंद्रीय स्थान रखती है। उन्होंने अर्थशास्त्र और नैतिकता को अलग–अलग नहीं माना, बल्कि दोनों को एक–दूसरे के पूरक के रूप में देखा। उनका मानना था कि आर्थिक गतिविधियाँ नैतिक मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए। प्रमुख बिंदु–

1. **साधन और साध्य**– गाँधीजी का जोर था कि न केवल लक्ष्य, बल्कि उसे प्राप्त करने के साधन भी नैतिक होने चाहिए। उन्होंने कहा, 'साधन साध्य का बीज है।
2. **अहिंसक अर्थव्यवस्था**– उन्होंने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की वकालत की जो किसी भी रूप में हिंसा या शोषण पर आधारित न हो।
3. **सत्य का महत्व**– गाँधीजी ने व्यापार और आर्थिक लेनदेन में सत्य और ईमानदारी पर जोर दिया।
4. **अपरिग्रह**– उन्होंने अनावश्यक संग्रह के विरुद्ध चेतावनी दी और सादा जीवन जीने पर बल दिया।
5. **स्वार्थ बनाम परार्थ**– गाँधीजी ने व्यक्तिगत लाभ के बजाय सामूहिक कल्याण पर ध्यान केंद्रित करने की वकालत की।
6. **श्रम की गरिमा**– उन्होंने सभी प्रकार के श्रम को समान महत्व देने और श्रमिकों के अधिकारों के संरक्षण पर जोर दिया।
7. **पर्यावरण नैतिकता**– गाँधीजी ने प्रकृति के साथ सामंजस्य में रहने और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर बल दिया।
8. **उपभोक्तावाद की आलोचना**– उन्होंने अत्यधिक उपभोग और भौतिकवाद की आलोचना की, जो उनके अनुसार नैतिक मूल्यों के विपरीत है।
9. **सेवा का भाव**– गाँधीजी ने व्यवसाय और उद्योग को समाज की सेवा के साधन के रूप में देखा, न कि केवल लाभ कमाने के साधन के रूप में।

10. **नैतिक नेतृत्व**– उन्होंने आर्थिक और व्यावसायिक नेताओं से नैतिक आचरण की अपेक्षा की।

गाँधीजी के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं, विशेषकर कॉरपोरेट नैतिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व, और नैतिक उपभोग के संदर्भ में। हालांकि, वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में इन सिद्धांतों को पूरी तरह से लागू करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है, फिर भी ये विचार हमें याद दिलाते हैं कि आर्थिक विकास नैतिक मूल्यों की कीमत पर नहीं होना चाहिए।

9.9 आध्यात्मिकता और आर्थिक विकास का संबंध–

गाँधीजी के दर्शन में आध्यात्मिकता और आर्थिक विकास परस्पर जुड़े हुए हैं। उन्होंने माना कि वास्तविक प्रगति केवल भौतिक समृद्धि नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति के साथ संतुलित होनी चाहिए। यह दृष्टिकोण पश्चिमी अर्थशास्त्र के भौतिकवादी दृष्टिकोण से अलग था। प्रमुख बिंदुरू

1. **आत्मसंयम**– गाँधीजी ने आत्मसंयम को आर्थिक विकास का आधार माना। उनका मानना था कि इच्छाओं पर नियंत्रण से संसाधनों का बेहतर उपयोग होगा।
2. **सादा जीवन**– उन्होंने सादा जीवन और उच्च विचार के सिद्धांत को बढ़ावा दिया, जो आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित है।
3. **स्वार्थ त्याग**– गाँधीजी ने व्यक्तिगत लाभ के बजाय समाज के कल्याण के लिए काम करने पर जोर दिया, जो एक आध्यात्मिक गुण है।
4. **कर्म योग**– उन्होंने कर्म योग के सिद्धांत को आर्थिक गतिविधियों में लागू किया, जहाँ काम को सेवा और आत्म–साक्षात्कार का माध्यम माना जाता है।
5. **अहिंसा**– गाँधीजी ने अहिंसा को न केवल एक नैतिक सिद्धांत बल्कि एक आर्थिक सिद्धांत के रूप में भी देखा, जो शोषण–मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर ले जाता है।
6. **आंतरिक शांति**– उन्होंने माना कि आंतरिक शांति और संतोष वास्तविक समृद्धि के लक्षण हैं, न कि केवल भौतिक संपत्ति।
7. **मानवीय मूल्य**– गाँधीजी ने आर्थिक विकास में मानवीय मूल्यों और गरिमा को सर्वोपरि रखा, जो आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रेरित था।
8. **प्रकृति के साथ सामंजस्य**– उन्होंने प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने पर जोर दिया, जो भारतीय आध्यात्मिक परंपरा का एक महत्वपूर्ण पहलू है।
9. **सर्वोदय**– गाँधीजी का सर्वोदय का सिद्धांत आध्यात्मिक और आर्थिक दोनों पहलुओं को समाहित करता है, जहाँ सभी का कल्याण लक्ष्य है।
10. **आत्मनिर्भरता**– उन्होंने आत्मनिर्भरता को न केवल आर्थिक बल्कि आध्यात्मिक गुण के रूप में भी देखा, जो व्यक्ति और समुदाय को मजबूत बनाता है।

गाँधीजी के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं, विशेषकर जब दुनिया सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, और जीवन की गुणवत्ता जैसे मुद्दों से जूझ रही है। उनका दृष्टिकोण हमें याद दिलाता है कि वास्तविक प्रगति केवल आर्थिक संकेतकों में नहीं, बल्कि लोगों के समग्र कल्याण में निहित है।

9.7 गाँधी के आर्थिक दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता

गाँधीजी के आर्थिक विचार, जो उनके समय में कई लोगों को आदर्शवादी लगते थे, आज के वैश्विक परिदृ श्य में फिर से प्रासंगिक हो गए हैं। उनके दर्शन की वर्तमान प्रासंगिकता निम्नलिखित बिंदुओं में देखी जा सकती हैरू

1. **सतत विकास**– गाँधीजी का सादा जीवन और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण का विचार सतत विकास की

अवधारणा से मेल खाता है।

2. **पर्यावरण संरक्षण**— उनका प्रकृति के साथ सामंजस्य का दृष्टिकोण जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संरक्षण के वर्तमान मुद्दों से संबंधित है।
3. **ग्रामीण विकास**— गाँधीजी का ग्राम स्वराज का विचार ग्रामीण विकास और विकेंद्रीकरण के महत्व को रेखांकित करता है।
4. **स्वदेशी और आत्मनिर्भरता**— यह अवधारणा स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को मजबूत करने और आर्थिक स्वावलंबन के महत्व को दर्शाती है।
5. **नैतिक अर्थव्यवस्था**— कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक व्यवसाय प्रथाओं पर बढ़ता जोर गाँधीजी के विचारों से मेल खाता है।
6. **समावेशी विकास**— गाँधीजी का सर्वोदय का सिद्धांत समावेशी विकास की आधुनिक अवधारणा से मिलता—जुलता है।
7. **कुटीर उद्योग**— लघु और मध्यम उद्यमों का महत्व गाँधीजी के कुटीर उद्योगों के समर्थन से जुड़ा है।
8. **श्रम की गरिमा**— गिग इकोनॉमी और श्रमिक अधिकारों पर वर्तमान बहस में गाँधीजी के विचार प्रासंगिक हैं।
9. **आर्थिक असमानता**— बढ़ती आर्थिक असमानता के मुद्दे पर गाँधीजी के विचार महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।
10. **स्वास्थ्य और शिक्षा**— बुनियादी सेवाओं तक सार्वभौमिक पहुंच का गाँधीजी का विचार आज भी प्रासंगिक है।
11. **अहिंसक अर्थव्यवस्था**— शांतिपूर्ण आर्थिक विकास और सहयोग का उनका दृष्टिकोण वैश्विक शांति के लिए महत्वपूर्ण है।
12. **आध्यात्मिकता और अर्थव्यवस्था** — जीवन की गुणवत्ता और खुशहाली पर बढ़ता ध्यान गाँधीजी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जुड़ा है।

हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि गाँधीजी के कुछ विचारों को आधुनिक, वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में सीधे लागू करना चुनौतीपूर्ण हो सकता है। फिर भी, उनके मूल सिद्धांत — नैतिकता, सामाजिक न्याय, और टिकाऊ विकास — आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे।

9.11 निष्कर्ष

गाँधी जी का आर्थिक दर्शन उनके नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का एक अभिन्न अंग था। उन्होंने अर्थशास्त्र को केवल भौतिक समृद्धि का विज्ञान नहीं, बल्कि मानवीय कल्याण का एक साधन माना। उनके विचारों में सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, स्वावलंबन, ट्रस्टीशिप, और सर्वोदय जैसे सिद्धांत केंद्रीय थे। गाँधी जी ने एक ऐसी अर्थव्यवस्था की कल्पना की जो विकेंद्रीकृत हो, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आधारित हो, और जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का अवसर मिले। उन्होंने बड़े पैमाने के मशीनीकरण और केंद्रीकृत उत्पादन के विरुद्ध चेतावनी दी, क्योंकि उनका मानना था कि यह मानवीय श्रम को विस्थापित करता है और सामाजिक असमानता को बढ़ावा देता है। गाँधी जी के आर्थिक विचारों में नैतिकता और आध्यात्मिकता का विशेष महत्व था, जो उनके मत में सच्चे विकास के लिए आवश्यक थे। उनका मानना था कि आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल भौतिक समृद्धि नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज का सर्वांगीण विकास होना चाहिए। यद्यपि उनके कुछ विचार आज के वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था के युग में अव्यावहारिक लग सकते हैं, लेकिन उनके मूल सिद्धांत — जैसे सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, और नैतिक मूल्यों पर आधारित विकास — आज भी प्रासंगिक हैं और वैश्विक चुनौतियों के समाधान में मार्गदर्शक हो सकते हैं।

9.12 सारांश

इस इकाई में हमने महात्मा गाँधी के आर्थिक दर्शन का विस्तृत अध्ययन किया, जो उनके नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों पर आधारित था। हमने देखा कि गाँधी जी के आर्थिक विचारों का मूल आधार सत्य और अहिंसा था। उन्होंने स्वदेशी और स्वावलंबन पर बल दिया, जिसका उद्देश्य था स्थानीय अर्थव्यवस्था को मजबूत करना और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देना। ट्रस्टीशिप के सिद्धांत के माध्यम से उन्होंने धन के न्यायसंगत वितरण का प्रस्ताव रखा। सर्वोदय की अवधारणा के द्वारा उन्होंने सभी के कल्याण पर जोर दिया। गाँधी जी ने ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण को आर्थिक विकास का आधार माना। उन्होंने बड़े पैमाने के मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की। आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय उनके विचारों के केंद्र में थे। हमने यह भी देखा कि गाँधी जी के आर्थिक दर्शन में नैतिकता और आध्यात्मिकता का विशेष महत्व था। उनका मानना था कि आध्यात्मिक मूल्यों के बिना आर्थिक विकास अधूरा है। अंत में, हमने गाँधी जी के आर्थिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता पर चर्चा की और पाया कि उनके कई सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं और वैश्विक चुनौतियों के समाधान में मदद कर सकते हैं।

9.13. प्रश्न बोध

2. गाँधी जी के आर्थिक दर्शन के मूल सिद्धांत क्या थे? उनकी व्याख्या कीजिए।
3. स्वदेशी और स्वावलंबन की अवधारणाओं को समझाइए। ये आज के संदर्भ में कितनी प्रासंगिक हैं?
4. गाँधी जी के आर्थिक विचारों में नैतिकता और आध्यात्मिकता का क्या स्थान था? इसकी व्याख्या कीजिए।
5. गाँधी जी के मशीनीकरण और बड़े उद्योगों के प्रति दृष्टिकोण की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
6. गाँधी जी के आर्थिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता पर एक निबंध लिखिए।
7. क्या गाँधी जी के आर्थिक सिद्धांत वैश्वीकरण के युग में प्रासंगिक हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।
8. गाँधी जी के आर्थिक दर्शन और आधुनिक अर्थशास्त्र के बीच तुलना कीजिए।

1.14 उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, डॉ रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकेडमी, 2015
2. शर्मा, राजेश. गाँधीवादी अर्थव्यवस्था– एक नैतिक दृष्टिकोण. राजकमल प्रकाशन, 2018.
3. मिश्रा, सुनीता, महात्मा गाँधी के आर्थिक विचार– आध्यात्मिकता और नैतिकता का समन्वय, वाणी प्रकाशन, 2020.
4. गुप्ता, अनिल कुमार, गाँधी का स्वदेशी अर्थशास्त्र– 21वीं सदी में प्रासंगिकता, प्रभात प्रकाशन, 2019.
5. सिंह, मनोज कुमार, गाँधीजी के आर्थिक दर्शन का आध्यात्मिक आधार, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017.
6. यादव, प्रीति, गाँधीवादी अर्थशास्त्र– नैतिक मूल्यों का पुनर्जागरण, नेशनल बुक ट्रस्ट, 2021.

इकाई–10 ट्रस्टीशिप का आधार

इकाई की रूपरेखा–

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 ट्रस्टीशिप की अवधारणा– परिभाषा और महत्व

10.3 गाँधी के दर्शन में ट्रस्टीशिप का स्थान

10.4 ट्रस्टीशिप के मूल सिद्धांत

10.5 ट्रस्टीशिप और सत्य–अहिंसा का संबंध

10.6 ट्रस्टीशिप और आर्थिक समानता

10.7 ट्रस्टीशिप और सामाजिक न्याय

10.8 ट्रस्टीशिप और संपत्ति का स्वामित्व

10.9 ट्रस्टीशिप और श्रम का महत्व

10.10 ट्रस्टीशिप और पूंजीवाद– एक तुलनात्मक अध्ययन

10.11 ट्रस्टीशिप और समाजवाद– समानताएं और अंतर

10.12 ट्रस्टीशिप का व्यावहारिक कार्यान्वयन– चुनौतियां और समाधान

10.13 ट्रस्टीशिप और आधुनिक अर्थव्यवस्था

10.14 ट्रस्टीशिप की वर्तमान प्रासंगिकता

10.15 निष्कर्ष

10.16 सारांश

10.17 प्रश्न बोध

10.18 उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य महात्मा गाँधी के दर्शन में ट्रस्टीशिप की अवधारणा को समझना और उसका विश्लेषण करना है। इस अध्याय के अंत तक, छात्र निम्नलिखित बिंदुओं को समझने में सक्षम होंगे–

1. ट्रस्टीशिप की मूल अवधारणा और उसकी परिभाषा।
2. गाँधी के समग्र दर्शन में ट्रस्टीशिप का महत्व और स्थान।
3. ट्रस्टीशिप के प्रमुख सिद्धांत और उनका सामाजिक–आर्थिक प्रभाव।
4. ट्रस्टीशिप का सत्य, अहिंसा और अन्य गाँधीवादी मूल्यों से संबंध।
5. ट्रस्टीशिप की भूमिका आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय स्थापित करने में।
6. ट्रस्टीशिप का संपत्ति के स्वामित्व और श्रम के महत्व पर प्रभाव।
7. ट्रस्टीशिप की पूंजीवाद और समाजवाद से तुलना।
8. ट्रस्टीशिप के व्यावहारिक कार्यान्वयन की चुनौतियां और संभावित समाधान।

9. आधुनिक अर्थव्यवस्था में ट्रस्टीशिप की प्रासंगिकता।

इस इकाई का उद्देश्य छात्रों को गाँधी के आर्थिक दर्शन की गहरी समझ प्रदान करना और उन्हें वर्तमान सामाजिक–आर्थिक परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करना है।

10.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी का दर्शन केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने एक व्यापक सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण का एक महत्वपूर्ण पहलू था ट्रस्टीशिप का सिद्धांत। ट्रस्टीशिप गाँधी के आर्थिक चिंतन का मूल आधार है, जो व्यक्तिगत संपत्ति और सामाजिक कल्याण के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। गाँधी ने ट्रस्टीशिप की अवधारणा को एक ऐसे समाधान के रूप में प्रस्तुत किया, जो पूंजीवाद और समाजवाद दोनों के दोषों से बचता है। यह सिद्धांत व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार करता है, लेकिन साथ ही यह मानता है कि संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए होना चाहिए।

इस अध्याय में, हम ट्रस्टीशिप की अवधारणा का गहन अध्ययन करेंगे, इसके मूल सिद्धांतों को समझेंगे, और इसके व्यावहारिक पहलुओं पर विचार करेंगे। हम यह भी देखेंगे कि कैसे ट्रस्टीशिप गाँधी के अन्य विचारों जैसे सत्य, अहिंसा, और सर्वोदय से जुड़ा हुआ है। साथ ही, हम इस सिद्धांत की वर्तमान प्रासंगिकता और इसके संभावित कार्यान्वयन की चुनौतियों पर भी चर्चा करेंगे।

10.2 ट्रस्टीशिप की अवधारणा– परिभाषा और महत्व

ट्रस्टीशिप की अवधारणा गाँधी के आर्थिक दर्शन का एक केंद्रीय स्तंभ है। इसका मूल विचार यह है कि व्यक्ति अपनी संपत्ति का मालिक नहीं, बल्कि केवल एक ट्रस्टी या न्यासी है। गाँधी के अनुसार, सभी संपत्ति समाज की है, और व्यक्ति उसका केवल प्रबंधक है। इस अवधारणा के अनुसार, धनी व्यक्तियों को अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए। ट्रस्टीशिप का महत्व इसकी क्षमता में निहित है जो आर्थिक असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में मदद करता है। यह सिद्धांत व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक जिम्मेदारी के बीच एक संतुलन स्थापित करता है। ट्रस्टीशिप न केवल धन के वितरण का एक तरीका है, बल्कि यह एक नैतिक दृष्टिकोण भी है जो व्यक्तियों को अपने संसाधनों का उपयोग समाज के लाभ के लिए करने के लिए प्रेरित करता है। इस अवधारणा का महत्व इसकी लचीलेपन में भी है। यह पूंजीवाद की तरह व्यक्तिगत पहल को प्रोत्साहित करता है, लेकिन साथ ही समाजवाद की तरह सामूहिक हित पर भी जोर देता है। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप एक ऐसा मॉडल प्रस्तुत करता है जो आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करता है।

10.3 गाँधी के दर्शन में ट्रस्टीशिप का स्थान

गाँधी के समग्र दर्शन में ट्रस्टीशिप एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह उनके आर्थिक विचारों का आधार है और उनके अन्य सिद्धांतों जैसे सत्य, अहिंसा, और सर्वोदय से गहराई से जुड़ा हुआ है। गाँधी के लिए, ट्रस्टीशिप केवल एक आर्थिक सिद्धांत नहीं था, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक अवधारणा भी थी। गाँधी का मानना था कि ट्रस्टीशिप सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों का आर्थिक क्षेत्र में विस्तार है। जैसे सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में सद्भाव लाते हैं, वैसे ही ट्रस्टीशिप आर्थिक क्षेत्र में सामंजस्य स्थापित करता है। यह सिद्धांत गाँधी के सर्वोदय (सभी का उदय) के विचार से भी जुड़ा है, जो समाज के सभी वर्गों के कल्याण पर जोर देता है। गाँधी के दर्शन में, ट्रस्टीशिप आत्मनिर्भरता और स्वदेशी के विचारों से भी जुड़ा है। यह स्थानीय संसाधनों और कौशल के उपयोग को बढ़ावा देता है, जो गाँधी के ग्राम स्वराज के दृष्टिकोण के अनुरूप है। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप गाँधी के समग्र दर्शन का एक अभिन्न अंग है, जो उनके आर्थिक, सामाजिक और नैतिक विचारों को एक साथ जोड़ता है।

10.4 ट्रस्टीशिप के मूल सिद्धांत

ट्रस्टीशिप के मूल सिद्धांत गाँधी के आर्थिक दर्शन की नींव हैं। प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैंरू

1. संपत्ति का सामाजिक स्वामित्व – सभी संपत्ति समाज की है, व्यक्ति केवल उसका प्रबंधक है।
2. अतिरिक्त संपत्ति का सामाजिक उपयोग – धनी व्यक्तियों को अपनी जरूरतों से अधिक संपत्ति का उपयोग समाज के हित में करना चाहिए।
3. न्यूनतम असमानता – आर्थिक असमानता को कम से कम रखा जाना चाहिए।
4. श्रम का महत्व– हर व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए श्रम करना चाहिए।
5. आत्मनिर्भरता– व्यक्तियों और समुदायों को आत्मनिर्भर होने का प्रयास करना चाहिए।
6. अपरिग्रह – अनावश्यक संग्रह से बचना चाहिए।
7. नैतिक जिम्मेदारी– धन का उपयोग नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारी के साथ किया जाना चाहिए।
8. स्वैच्छिक त्याग– धनी व्यक्तियों को स्वेच्छा से अपनी अतिरिक्त संपत्ति का त्याग करना चाहिए।

ये सिद्धांत एक ऐसी अर्थव्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन बनाती है। ट्रस्टीशिप का लक्ष्य एक ऐसा समाज बनाना है जहां आर्थिक विषमताएं कम हों और सभी के पास अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन हों।

10.5 ट्रस्टीशिप और सत्य–अहिंसा का संबंध

गाँधी के दर्शन में ट्रस्टीशिप का सिद्धांत सत्य और अहिंसा के मूल्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है। सत्य और अहिंसा गाँधी के समस्त विचारों का आधार हैं, और ट्रस्टीशिप इन मूल्यों का आर्थिक क्षेत्र में विस्तार है। सत्य के संदर्भ में, ट्रस्टीशिप व्यक्तियों से यह स्वीकार करने की अपेक्षा करता है कि उनकी संपत्ति वास्तव में समाज की है। यह सच्चाई को स्वीकार करने और उसके अनुसार कार्य करने का आह्वान है। अहिंसा के संदर्भ में, ट्रस्टीशिप आर्थिक हिंसा को रोकने का एक तरीका है। यह धन के अत्यधिक संग्रह और दूसरों के शोषण को रोकता है, जो गाँधी के अनुसार हिंसा के रूप हैं।

ट्रस्टीशिप सत्य और अहिंसा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने का एक उपकरण है। यह धनी व्यक्तियों को अपनी संपत्ति का स्वेच्छा से त्याग करने के लिए प्रेरित करता है, बजाय इसे बलपूर्वक छीनने के। इस प्रकार, यह अहिंसक तरीके से आर्थिक समानता लाने का प्रयास करता है। सत्य और अहिंसा की तरह, ट्रस्टीशिप भी व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारी पर जोर देता है। यह व्यक्तियों को अपने कार्यों के व्यापक सामाजिक प्रभावों पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है, जो सत्य और अहिंसा के मूल्यों के अनुरूप है।

10.6 ट्रस्टीशिप और आर्थिक समानता

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत आर्थिक समानता को बढ़ावा देने का एक प्रमुख साधन है। गाँधी का मानना था कि अत्यधिक आर्थिक असमानता समाज के लिए हानिकारक है और यह हिंसा का एक रूप है। ट्रस्टीशिप इस असमानता को कम करने का एक तरीका प्रस्तुत करता है। इस सिद्धांत के अनुसार, धनी व्यक्तियों को अपनी अतिरिक्त संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए। यह धन का पुनर्वितरण करने का एक स्वैच्छिक तरीका है, जो समाज में आर्थिक समानता लाने में मदद करता है। गाँधी का मानना था कि यह दृष्टिकोण पूंजीवाद की कुछ समस्याओं को हल कर सकता है, जैसे धन का अत्यधिक संकेंद्रण, बिना समाजवाद की कठोरता के।

ट्रस्टीशिप न्यूनतम और अधिकतम आय के बीच के अंतर को कम करने का प्रयास करता है। यह सभी के लिए एक गरिमापूर्ण जीवन सुनिश्चित करने पर जोर देता है, न कि केवल कुछ लोगों के लिए अत्यधिक संपत्ति। यह दृष्टिकोण आर्थिक विकास को महत्व देता है, लेकिन साथ ही यह सुनिश्चित करता है कि विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचें। हालांकि, गाँधी पूर्ण आर्थिक समानता के पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि कुछ असमानता स्वाभाविक और आवश्यक है, लेकिन यह अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। ट्रस्टीशिप का उद्देश्य इस असमानता को एक स्वीकार्य स्तर तक सीमित रखना है।

10.7 ट्रस्टीशिप और सामाजिक न्याय

ट्रस्टीशिप शोषण और आर्थिक उत्पीड़न के विरुद्ध है, जो सामाजिक न्याय के मूल सिद्धांतों के अनुरूप है। यह सिद्धांत यह सुनिश्चित करने का प्रयास करता है कि आर्थिक विकास के लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचें, न कि केवल कुछ चुनिंदा लोगों तक। गाँधी का मानना था कि ट्रस्टीशिप सामाजिक परिवर्तन का एक शांतिपूर्ण साधन है। यह क्रांतिकारी परिवर्तन के बजाय क्रमिक परिवर्तन पर जोर देता है, जो समाज में कम से कम व्यवधान पैदा करता है। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का एक अहिंसक तरीका प्रदान करता है। अंत में, ट्रस्टीशिप सामाजिक एकता और सद्भाव को बढ़ावा देता है। यह धनी और गरीब के बीच की खाई को पाटने का प्रयास करता है, जो एक न्यायपूर्ण और समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

10.8 ट्रस्टीशिप और संपत्ति का स्वामित्व

गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत में संपत्ति के स्वामित्व की एक अनूठी अवधारणा प्रस्तुत की गई है। इस दृ ष्टिकोण के अनुसार, कोई भी व्यक्ति वास्तव में संपत्ति का मालिक नहीं है, बल्कि वह केवल उसका प्रबंधक या न्यासी है। सभी संपत्ति का वास्तविक स्वामित्व समाज के पास है। यह विचार व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार को पूरी तरह से नकारता नहीं है, बल्कि इसे एक नई परिभाषा देता है। व्यक्तियों को अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संपत्ति रखने की अनुमति है, लेकिन उनकी अतिरिक्त संपत्ति समाज के लिए होनी चाहिए।

ट्रस्टीशिप संपत्ति के स्वामित्व को एक सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में देखता है। धनी व्यक्तियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी संपत्ति का उपयोग न केवल अपने लाभ के लिए, बल्कि समाज के कल्याण के लिए भी करें। यह दृष्टिकोण पूंजीवाद और समाजवाद के बीच एक मध्य मार्ग प्रस्तुत करता है। यह व्यक्तिगत पहल और उद्यमशीलता को प्रोत्साहित करता है, जबकि साथ ही सामूहिक हित की रक्षा भी करता है। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप संपत्ति के स्वामित्व की एक ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करता है जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक कल्याण के बीच संतुलन बनाने का प्रयास करती है।

10.9 ट्रस्टीशिप और श्रम का महत्व

गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत में श्रम का विशेष महत्व है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, हर व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए श्रम करना चाहिए। गाँधी का मानना था कि श्रम न केवल आर्थिक गतिविधि है, बल्कि यह एक नैतिक कर्तव्य भी है। ट्रस्टीशिप श्रम के सभी रूपों को समान महत्व देता है, चाहे वह शारीरिक श्रम हो या मानसिक। गाँधी ने शारीरिक श्रम, विशेष रूप से हाथ से किए जाने वाले काम को विशेष महत्व दिया। उनका मानना था कि यह व्यक्ति को प्रकृति और समाज से जोड़ता है। इस सिद्धांत के अनुसार, कोई भी व्यक्ति बिना श्रम किए धन का संग्रह नहीं कर सकता। यहां तक कि धनी व्यक्तियों से भी अपेक्षा की जाती है कि वे किसी न किसी रूप में श्रम करें। यह दृष्टिकोण श्रम की गरिमा को बढ़ावा देता है और शोषण को रोकता है।

ट्रस्टीशिप में, श्रम का उचित मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है कि श्रमिकों को उनके काम का उचित मूल्य मिलना चाहिए। यह सिद्धांत न्यूनतम मजदूरी और श्रमिकों के अधिकारों का समर्थन करता है। अंत में, ट्रस्टीशिप श्रम को आत्म–विकास और आध्यात्मिक उन्नति का एक साधन मानता है। गाँधी का मानना था कि ईमानदारी से किया गया श्रम व्यक्ति को आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

10.10 ट्रस्टीशिप और पूंजीवाद : एक तुलनात्मक अध्ययन

ट्रस्टीशिप और पूंजीवाद दोनों आर्थिक व्यवस्थाएं हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और लक्ष्यों में महत्वपूर्ण अंतर हैं। पूंजीवाद व्यक्तिगत लाभ और बाजार की स्वतंत्रता पर केंद्रित है, जबकि ट्रस्टीशिप सामाजिक कल्याण और नैतिक जिम्मेदारी पर जोर देता है। पूंजीवाद में, संपत्ति का निजी स्वामित्व एक मौलिक अधिकार माना जाता है। इसके विपरीत, ट्रस्टीशिप में संपत्ति को एक सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में देखा जाता है। पूंजीवाद प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत लाभ को प्रोत्साहित करता है, जबकि ट्रस्टीशिप सहयोग और सामूहिक हित पर जोर देता है।

पूंजीवाद में, बाजार की शक्तियां मूल्य और वितरण का निर्धारण करती हैं। ट्रस्टीशिप में, नैतिक मूल्य और सामाजिक आवश्यकताएं इन निर्णयों को प्रभावित करती हैं। पूंजीवाद आर्थिक विकास और उत्पादकता पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि ट्रस्टीशिप संतुलित विकास और सामाजिक न्याय पर जोर देता है। हालांकि, ट्रस्टीशिप पूंजीवाद को पूरी तरह से खारिज नहीं करता। यह व्यक्तिगत पहल और उद्यमशीलता को मान्यता देता है, लेकिन इन्हें सामाजिक जिम्मेदारी के साथ संतुलित करने का प्रयास करता है। इस प्रकार, ट्रस्टीशिप पूंजीवाद के कुछ पहलुओं को बनाए रखते हुए उसके नकारात्मक प्रभावों को कम करने का प्रयास करता है।

10.11 ट्रस्टीशिप और समाजवाद– समानताएं और अंतर

ट्रस्टीशिप और समाजवाद दोनों ही आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को साझा करते हैं, लेकिन इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के तरीकों में महत्वपूर्ण अंतर हैं। दोनों सिद्धांत धन के असमान वितरण और आर्थिक शोषण के खिलाफ हैं।

समानताएं–

1. दोनों सामाजिक कल्याण पर जोर देते हैं।
2. दोनों आर्थिक असमानता को कम करने का प्रयास करते हैं।
3. दोनों संपत्ति के सामूहिक उपयोग की अवधारणा को समर्थन देते हैं।

अंतर–

1. समाजवाद राज्य द्वारा संपत्ति के अधिग्रहण का समर्थन करता है, जबकि ट्रस्टीशिप स्वैच्छिक त्याग पर जोर देता है।
2. समाजवाद में आर्थिक नियोजन केंद्रीकृत होता है, जबकि ट्रस्टीशिप विकेंद्रीकरण का समर्थन करता है।
3. समाजवाद वर्ग संघर्ष की अवधारणा पर आधारित है, जबकि ट्रस्टीशिप वर्गों के बीच सहयोग पर जोर देता है।
4. समाजवाद निजी संपत्ति को सीमित या समाप्त करना चाहता है, जबकि ट्रस्टीशिप निजी संपत्ति को स्वीकार करता है लेकिन उसे सामाजिक जिम्मेदारी के साथ जोड़ता है।

गाँधी ने ट्रस्टीशिप को समाजवाद का एक वैकल्पिक मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया, जो समान लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक अहिंसक और स्वैच्छिक तरीका प्रदान करता है।

10.12 टस्टीशिप का व्यावहारिक कार्यान्वयन : चुनौतियां और समाधान

ट्रस्टीशिप के व्यावहारिक कार्यान्वयन में कई चुनौतियां हैं, लेकिन इनके संभावित समाधान भी हैं– चुनौतियां–

1. **मानवीय स्वार्थ**– लोगों को अपनी संपत्ति का त्याग करने के लिए राजी करना मुश्किल हो सकता है।
2. **कानूनी ढांचा**– मौजूदा कानूनी व्यवस्था ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों के अनुरूप नहीं हो सकती।
3. **मूल्यांकन**– यह निर्धारित करना मुश्किल हो सकता है कि किसी व्यक्ति की 'अतिरिक्त' संपत्ति क्या है।
4. **प्रोत्साहन**– ट्रस्टीशिप उद्यमशीलता और नवाचार को हतोत्साहित कर सकता है।

संभावित समाधान

1. **शिक्षा और जागरूकता**– लोगों को ट्रस्टीशिप के लाभों के बारे में शिक्षित करना।
2. **कानूनी सुधार**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को समर्थन देने वाले कानून बनाना।
3. **कर प्रणाली**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को प्रोत्साहित करने वाली कर नीतियां लागू करना।
4. **सामाजिक मान्यता**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को अपनाने वाले व्यक्तियों और संगठनों को सामाजिक

मान्यता और सम्मान देना।

5. **संस्थागत समर्थन**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को लागू करने वाले संगठनों और संस्थाओं को सरकारी समर्थन प्रदान करना।
6. **प्रोत्साहन प्रणाली**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को अपनाने वाले व्यक्तियों और संगठनों के लिए प्रोत्साहन प्रणाली विकसित करना।
7. **स्वैच्छिक संगठन**– ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को लागू करने के लिए स्वैच्छिक संगठनों और सामुदायिक पहलों को प्रोत्साहित करना।

इन समाधानों के माध्यम से, ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को धीरे–धीरे और स्वैच्छिक रूप से समाज में लागू किया जा सकता है। हालांकि, यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया होगी जो व्यापक सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की मांग करती है।

10.13 ट्रस्टीशिप और आधुनिक अर्थव्यवस्था

आधुनिक अर्थव्यवस्था में ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों को लागू करना एक चुनौतीपूर्ण लेकिन संभावित रूप से लाभदायक कार्य है। वैश्वीकरण, डिजिटलीकरण और तेजी से बदलती आर्थिक परिस्थितियों के बीच, ट्रस्टीशिप के मूल मूल्य अभी भी प्रासंगिक हैं। आधुनिक संदर्भ में ट्रस्टीशिप के कुछ अनुप्रयोगरू

1. **कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व** –यह ट्रस्टीशिप का एक आधुनिक रूप है, जहां कंपनियां अपने लाभ का एक हिस्सा समाज के कल्याण के लिए खर्च करती हैं।
2. **सामाजिक उद्यमिता**– यह व्यावसायिक सिद्धांतों का उपयोग सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए करती है, जो ट्रस्टीशिप के विचार से मेल खाती है।
3. **एथिकल इन्वेस्टिंग**– यह निवेशकों को उन कंपनियों में निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो सामाजिक और पर्यावरणीय जिम्मेदारी दिखाती हैं।
4. **शेयर्ड वैल्यू**– यह अवधारणा व्यावसायिक लाभ और सामाजिक प्रगति को एक साथ जोड़ती है।
5. **सर्कुलर इकोनॉमी**– यह संसाधनों के कुशल उपयोग और पुनर्चक्रण पर जोर देती है, जो ट्रस्टीशिप के संसाधन संरक्षण के विचार से मेल खाती है।

हालांकि, आधुनिक अर्थव्यवस्था में ट्रस्टीशिप के पूर्ण कार्यान्वयन में कई बाधाएं हैं, जैसे वैश्विक प्रतिस्पर्धा, शेयरधारकों की अपेक्षाएं, और जटिल वित्तीय प्रणालियां। फिर भी, ट्रस्टीशिप के सिद्धांत एक अधिक न्यायसंगत और टिकाऊ आर्थिक मॉडल की ओर मार्गदर्शन कर सकते हैं।

10.14 ट्रस्टीशिप की वर्तमान प्रासंगिकता

महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित ट्रस्टीशिप का सिद्धांत आज भी अत्यंत प्रासंगिक है। गाँधी जी का मानना था कि समाज के संपन्न वर्ग को अपनी संपत्ति का ट्रस्टी समझना चाहिए और इसका उपयोग सामाजिक कल्याण के लिए करना चाहिए। वर्तमान में बढ़ती आर्थिक असमानता के दौर में यह सिद्धांत और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। बड़े व्यवसायों और धनी व्यक्तियों को अपने संसाधनों का उपयोग न केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए, बल्कि समाज के उत्थान के लिए भी करना चाहिए।

पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में ट्रस्टीशिप का सिद्धांत विशेष रूप से प्रासंगिक है। हमें प्रकृति के संरक्षक के रूप में कार्य करना चाहिए, जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्वस्थ ग्रह सुनिश्चित हो सके। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में ट्रस्टीशिप का सिद्धांत लागू करके, हम इन सेवाओं को अधिक समावेशी और सुलभ बना सकते हैं। राजनीतिक नेतृत्व में भी इस सिद्धांत की आवश्यकता है, जहां नेताओं को जनता के प्रति जवाबदेह ट्रस्टी के रूप में कार्य करना चाहिए। गाँधी जी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहां आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय साथ–साथ चलते हैं। यह दृष्टिकोण वर्तमान वैश्विक चुनौतियों, जैसे

गरीबी, असमानता और पर्यावरण क्षरण, से निपटने में मार्गदर्शक हो सकता है। निष्कर्षतः, गाँधी जी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। यह एक ऐसे समाज का मार्ग प्रशस्त करता है जो न्यायसंगत, समावेशी और टिकाऊ है।

10.15 निष्कर्ष

गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत न केवल एक आर्थिक मॉडल है, बल्कि एक जीवन दर्शन भी है जो व्यक्ति और समाज के बीच एक नया संबंध स्थापित करता है। यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि आर्थिक विकास का उद्देश्य केवल भौतिक समृद्धि नहीं, बल्कि सामूहिक कल्याण होना चाहिए। ट्रस्टीशिप की सबसे बड़ी ताकत इसकी लचीलता है। यह सिद्धांत विभिन्न सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों में अनुकूलित किया जा सकता है, जो इसे वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनाता है। यह पूंजीवाद और समाजवाद के बीच एक संतुलन प्रदान करता है, जो दोनों के सकारात्मक पहलुओं को संरक्षित करते हुए उनकी कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। हालांकि ट्रस्टीशिप के व्यावहारिक कार्यान्वयन में चुनौतियां हैं, लेकिन यह सिद्धांत हमें एक ऐसी दुनिया की कल्पना करने के लिए प्रेरित करता है जहां आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय एक साथ चल सकते हैं। यह हमें याद दिलाता है कि अर्थव्यवस्था मानव निर्मित है और इसलिए इसे मानवीय मूल्यों के अनुरूप बनाया जा सकता है। अंत में, ट्रस्टीशिप का सिद्धांत हमें एक नैतिक और टिकाऊ आर्थिक व्यवस्था की ओर ले जाने का मार्ग दिखाता है। यह सिद्धांत आज की वैश्विक चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है और एक अधिक न्यायसंगत और समावेशी दुनिया के निर्माण में मदद कर सकता है।

10.16 सारांश

गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत एक समग्र आर्थिक–सामाजिक दर्शन है जो संपत्ति के सामाजिक स्वामित्व, आर्थिक समानता, और सामाजिक न्याय पर आधारित है। इस सिद्धांत के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं–

1. **संपत्ति का सामाजिक स्वामित्व**– व्यक्ति संपत्ति का मालिक नहीं, बल्कि न्यासी है।
2. **आर्थिक समानता**– धन का पुनर्वितरण स्वैच्छिक रूप से किया जाना चाहिए।
3. **श्रम का महत्व**– सभी प्रकार के श्रम को समान महत्व दिया जाना चाहिए।
4. **पूंजीवाद और समाजवाद के बीच संतुलन**– यह दोनों के सकारात्मक पहलुओं को संरक्षित करने का प्रयास करता है।
5. **नैतिक आधार**– यह सत्य और अहिंसा के गाँधीवादी मूल्यों पर आधारित है।
6. **पर्यावरण संरक्षण**– यह सतत विकास और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण पर जोर देता है।

ट्रस्टीशिप के व्यावहारिक कार्यान्वयन में चुनौतियां हैं, जैसे मानवीय स्वार्थ, कानूनी बाधाएं, और मूल्यांकन की समस्याएं। हालांकि, इसके संभावित समाधान भी हैं, जैसे शिक्षा और जागरूकता, कानूनी सुधार, और प्रोत्साहन प्रणालियां। आधुनिक संदर्भ में, ट्रस्टीशिप के सिद्धांत कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व, सामाजिक उद्यमिता, और नैतिक निवेश में परिलक्षित होते हैं। यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है और वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

10.17 प्रश्न बोध

1. ट्रस्टीशिप की अवधारणा को अपने शब्दों में परिभाषित कीजिए। गाँधी के आर्थिक दर्शन में इसका क्या महत्व है?
2. ट्रस्टीशिप और पूंजीवाद के बीच प्रमुख अंतरों की व्याख्या कीजिए। क्या आप मानते हैं कि ट्रस्टीशिप पूंजीवाद का एक व्यावहारिक विकल्प हो सकता है?
3. ट्रस्टीशिप के सिद्धांत में श्रम के महत्व पर चर्चा कीजिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक श्रम बाजार में कैसे लागू किया जा सकता है?

4. ट्रस्टीशिप के व्यावहारिक कार्यान्वयन की प्रमुख चुनौतियों की पहचान कीजिए। इन चुनौतियों से निपटने के लिए आप क्या समाधान सुझाएंगे?

5. क्या आप मानते हैं कि ट्रस्टीशिप का सिद्धांत वर्तमान वैश्विक आर्थिक चुनौतियों का समाधान प्रदान कर सकता है? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।

10.18 उपयोगी पुस्तकें

1. सिंह, डॉ रामजी, गाँधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिंदी ग्रंथ अकेडमी, 2015
2. शर्मा, राजेश, गाँधी का आर्थिक दर्शन – ट्रस्टीशिप की अवधारणा, प्रभात प्रकाशन, 2018.
3. गुप्ता, सुनीता, ट्रस्टीशिप– गाँधीवादी अर्थव्यवस्था का मूल, राजकमल प्रकाशन, 2020.
4. मिश्रा, अनिल कुमार, गाँधी के विचारों में ट्रस्टीशिप– एक विश्लेषण, वाणी प्रकाशन, 2019.
5. सिंह, मनोज कुमार, ट्रस्टीशिप– गाँधी की आर्थिक विरासत, सामयिक प्रकाशन, 2021.
6. पाठक, विनोद, गाँधी और ट्रस्टीशिप–समकालीन प्रासंगिकता, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017.

खण्ड 6 शिक्षा तथा समाज

खण्ड परिचय

गाँधी जी का शिक्षा और समाज के प्रति दृष्टिकोण गहराई से जुड़ा हुआ था। उनके विचार केवल सैद्धांतिक नहीं थे, बल्कि जीवन और व्यवहार पर आधारित थे। गाँधी जी शिक्षा को केवल पढ़ना–लिखना सीखना नहीं मानते थे, बल्कि ष्जीवन जीने की कला' मानते थे। उन्होंने 1937 में 'नई तालीम' या 'बेसिक एजुकेशन' का विचार प्रस्तुत किया। इसके अनुसार शिक्षा कार्य और कारीगरी के साथ जुड़ी होनी चाहिए। शिक्षा मातृभाषा में होनी चाहिए, ताकि बच्चे अपनी संस्कृति और परिवेश को समझ सकें। शिक्षा का लक्ष्य सिर्फ नौकरी पाना नहीं है, बल्कि व्यक्ति के चारित्रिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास के साथ समाज सेवा की भावना जगाना है। वे मानते थे कि शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर, नैतिक और सृजनशील बनाए।

उनके अनुसार केवल बौद्धिक विकास अपूर्ण है, शिक्षा का कार्य व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व का निर्माण करना है। समाज का विकास सत्य, अहिंसा और प्रेम के मार्ग से ही संभव है।सामाजिक संबंध आपसी सहयोग और करुणा पर आधारित होने चाहिए। उनका मानना था कि यदि समाज की इकाई गांव मजबूत होगी तो पूरा राष्ट्र सशक्त होगा। महात्मा गाँधी श्रम और समानता का महत्व देते थे। समाज में ऊँच–नीच और छुआछूत के खिलाफ थे।

वे श्रम को सम्मान देते थे और मानते थे कि हर व्यक्ति को शारीरिक श्रम करना चाहिए। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा जीवनोपयोगी, आत्मनिर्भर बनाने वाली और चरित्र–निर्माण करने वाली होनी चाहिए। समाज के स्तर पर वे समानता, आत्मनिर्भरता, ग्राम स्वराज और सर्वोदय की स्थापना करना चाहते थे।

इस खण्ड के अन्तर्गत सामाजिक चुनौतियों कोविशेष रूप सेसंदर्भित किया गया है जिसके अन्तर्गत इकाई 11 सांप्रदायिक एकता के अन्तर्गत विभिन्न धर्मो के बीच सर्वधर्म समभाव और सौहार्द्र की चर्चा की गयी है। इकाई 12 में अस्पृष्यता उन्मूलन के अन्तर्गत सामाजिक समरसता और जातिगत भेदभाव के सम्बन्ध में गांधी चिन्तन को रखा गया है।

इकाई 11. सांप्रदायिक एकता

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 भारत में सांप्रदायिकता

11.3 सांप्रदायिक एकता की अवधारणा

11.4 गाँधी का दृष्टिकोण

11.5 गाँधी और धार्मिक सहिष्णुता

11.6 चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

11.7 समकालीन परिप्रेक्ष्य

11.8 निष्कर्ष

11.9 प्रश्नबोध

11.10 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात विद्याथीरू

- सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक एकता की दार्शनिक समझ विकसित कर सकेंगे।
- भारतीय परंपरा में धार्मिक समन्वय और एकता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
- गाँधीजी के विचारों और प्रयोगों के माध्यम से सांप्रदायिक एकता की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- गाँधी के 'सर्वधर्म समभाव' के सिद्धांत की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- आज के सामाजिक और वैश्विक संदर्भों में गाँधीवादी दृष्टि के महत्व को समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक पहचान उसकी विविधता में निहित है। यहाँ अनगिनत धर्म, सम्प्रदाय, भाषाएँ, जातियाँ और जीवन–पद्धतियाँ सहस्राब्दियों से सह–अस्तित्व में रही हैं। यही कारण है कि भारत को प्रायः षविविधता में एकताष का प्रतीक कहा जाता है। किंतु इस विविधता के साथ–साथ सांप्रदायिकता की चुनौती भी समय–समय पर सामने आती रही है। धर्म के नाम पर संघर्ष, विभाजन और हिंसा ने न केवल समाज की शांति को भंग किया बल्कि राष्ट्रीय जीवन को भी कमजोर किया।

महात्मा गाँधी ने अपने जीवन और विचारों से यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि धर्म का सार प्रेम, सहिष्णुता और सत्य में निहित है, न कि वैमनस्य में। उनके लिए धर्म मानव जीवन का मार्गदर्शक था, किंतु वह किसी संकीर्ण धार्मिक परिभाषा में बंधा हुआ नहीं था। गाँधी का 'सर्वधर्म समभाव' का दृष्टिकोण केवल दार्शनिक आदर्श न होकर व्यावहारिक राजनीति और सामाजिक जीवन का भी आधार था।

इस अध्ययन सामग्री में हम गाँधी के दर्शन और प्रयोगों के आलोक में 'सांप्रदायिक एकता' का विश्लेषण करेंगे। इसमें भारतीय परंपरा, गाँधी का दृष्टिकोण, उनके प्रयोग, चुनौतियाँ और समकालीन प्रासंगिकता का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

11.2 भारत में सांप्रदायिकता

भारत का इतिहास विविधता, बहुलता और सह–अस्तित्व की एक अनूठी गाथा है। यहाँ सदियों से भिन्न–भिन्न धर्म, भाषाएँ, संस्कृतियाँ और समुदाय सह–अस्तित्व में रहे हैं। उपनिषदों की बहुलता, बौद्ध और जैन धर्मों का उदय, मध्यकाल में भक्ति और सूफी आंदोलनों की व्यापकता, और आधुनिक काल में समाज सुधार आंदोलनों ने इस भूमि को विविधता में एकता का प्रतीक बनाया। किंतु इस विविधता के साथ–साथ सांप्रदायिकता की चुनौती भी प्रकट हुई, जिसने भारतीय समाज और राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। विशेषकर औपनिवेशिक शासन के दौरान सांप्रदायिकता ने संगठित रूप लिया और स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रीय एकता को गंभीर संकटों में डाला।

'सांप्रदायिकता' का सामान्य अर्थ है – अपने धर्म, जाति या समुदाय को श्रेष्ठ मानना और दूसरे धर्म या समुदाय के प्रति संकीर्ण दृष्टिकोण रखना। इस प्रकार सांप्रदायिकता को सामान्यतः उस मानसिकता या विचारधारा के रूप में समझा जा सकता है जिसमें व्यक्ति या समूह अपने धर्म या सम्प्रदाय को सर्वोपरि मानते हुए दूसरों के धर्म को नीचा या विरोधी मानता है। यह केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवहारों को भी प्रभावित करती है। सांप्रदायिकता के कारण समाज में अविश्वास, अलगाव और अंततः हिंसा जन्म लेती है। परंतु भारतीय राजनीतिक संदर्भ में सांप्रदायिकता केवल धार्मिक भावनाओं तक सीमित नहीं रहीय यह एक राजनीतिक विचारधारा के रूप में उभरी, जहाँ धर्म का उपयोग राजनीतिक सत्ता और सामाजिक वर्चस्व के लिए किया गया। भारत में सांप्रदायिकता की जड़ें गहरी थीं, किंतु औपनिवेशिक शासन ने इसे सुनियोजित रूप से बढ़ावा दिया। अंग्रेज शासकों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति के अंतर्गत हिंदू और मुसलमानों को परस्पर विरोधी समुदायों के रूप में प्रस्तुत किया। गाँधी के समय में सांप्रदायिकता का स्वरूप मुख्यतः हिंदू–मुस्लिम संबंधों से जुड़ा था। ब्रिटिश शासन ने इसे और गहरा किया, जिससे सांप्रदायिक तनाव अनेक बार हिंसक रूप में प्रकट हुआ।

प्राचीन भारत में विभिन्न धर्मों के बीच प्रतिस्पर्धा अवश्य थी, किंतु उसे सांप्रदायिकता नहीं कहा जा सकता। वैदिक, बौद्ध और जैन परंपराओं में बहस और संवाद की परंपरा रही। मध्यकाल में इस्लाम का आगमन और मुस्लिम शासन के स्थापित होने के बाद भी समाज में धार्मिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान होता रहा। भक्ति और सूफी आंदोलनों ने तो हिंदू और मुसलमानों के बीच आध्यात्मिक निकटता को बढ़ाया। हालाँकि, सत्ता और शासन से जुड़ी घटनाओं में कभी–कभी धार्मिक पहचान राजनीतिक संघर्ष का हिस्सा बनी, परंतु जनता के स्तर पर साझा जीवन और सांस्कृतिक सहअस्तित्व की परंपरा अधिक प्रबल रही।

मध्यकालीन भारत में भी हिंदू और मुसलमानों के बीच तनाव और संघर्ष की घटनाएँ हुईं, परंतु साथ ही सांस्कृतिक और धार्मिक समन्वय की लंबी परंपरा भी रही। भक्ति और सूफी संतों ने प्रेम, सहिष्णुता और मानवता का संदेश दिया। दारा शिकोह, कबीर, गुरु नानक, तुलसीदास और अनेक संतों ने सांप्रदायिक सीमाओं को तोड़कर संवाद और सहयोग की धारा प्रवाहित की। किन्तु अंग्रेजों के आगमन के बाद परिस्थितियाँ बदलीं। ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में ब्रिटिश सरकार ने प्रशासनिक सुविधा के लिए जनगणना, शिक्षा और राजनीति में 'धर्म आधारित विभाजन' की नीतियाँ अपनाईं।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम को भारतीय इतिहास में सांप्रदायिक एकता का महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। इस संग्राम में हिंदू और मुसलमान सैनिकों ने मिलकर अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हजरत महल, नाना साहब, तात्या टोपे, मौलवी अहमदुल्ला शाह जैसे नेता हिंदू–मुस्लिम एकता के प्रतीक बने। किंतु 1857 के बाद अंग्रेजों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि दोनों समुदाय एकजुट रहे तो उनके लिए शासन करना कठिन होगा। इसलिए उन्होंने जानबूझकर सांप्रदायिक भेदभाव को उकसाना शुरू किया। 1871 की जनगणना ने पहली बार हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई आदि की पृथक पहचान को सरकारी दस्तावेजों में दर्ज किया।

1905 में बंगाल विभाजन ने सांप्रदायिक राजनीति को नया मोड़ दिया। अंग्रेजों ने यह विभाजन प्रशासनिक सुविधा के नाम पर किया, किंतु उसका उद्देश्य हिंदू–मुस्लिम एकता को तोड़ना था। इस विभाजन के विरुद्ध जब व्यापक आंदोलन हुआ, तो हिंदू और मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजी सत्ता को चुनौती दी। किंतु 1906 में मुस्लिम लीग

की स्थापना ने सांप्रदायिक राजनीति को संस्थागत रूप दे दिया। लीग का मूल उद्देश्य मुस्लिम समुदाय के राजनीतिक हितों की रक्षा करना था, किंतु धीरे–धीरे यह संगठन पृथकतावाद और अलगाव की ओर बढ़ने लगा। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधारों ने मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था की, जिससे सांप्रदायिक राजनीति को औपचारिक वैधता मिली।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने प्रारंभ से ही सांप्रदायिक एकता पर बल दिया। दादाभाई नौरोजी, गोखले, तिलक और अन्य नेताओं ने यह माना कि स्वतंत्रता संग्राम केवल तब सफल हो सकता है जब सभी समुदाय मिलकर संघर्ष करें। किंतु अंग्रेजों की नीतियों और कुछ नेताओं की संकीर्ण दृष्टि के कारण सांप्रदायिक तनाव बढ़ता गया।

1920 के दशक में खिलाफत आंदोलन और असहयोग आंदोलन ने हिंदू–मुस्लिम एकता को नया आयाम दिया। गाँधी ने दोनों आंदोलनों को जोड़कर यह संदेश दिया कि स्वतंत्रता केवल तब मिलेगी जब सभी धर्मों के लोग एकजुट होकर संघर्ष करेंगे। किंतु 1924 के बाद जब खिलाफत आंदोलन कमजोर हुआ और असहयोग आंदोलन स्थगित कर दिया गया, तो सांप्रदायिक तनाव फिर से बढ़ा। 1920 और 1930 के दशकों में देश के विभिन्न हिस्सों में साम्प्रदायिक दंगे बढ़ते गए। विशेषकर उत्तर भारत में हिंदू–मुस्लिम संघर्ष ने गहरी चोट पहुँचाई। मुस्लिम लीग ने 'दो–राष्ट्र सिद्धांत' की ओर झुकाव दिखाया, जबकि कांग्रेस सांप्रदायिक एकता पर बल देती रही। 1940 में मुस्लिम लीग ने लाहौर प्रस्ताव पारित कर 'पृथक मुस्लिम राष्ट्र' की माँग की। यह सांप्रदायिकता का चरम रूप था जिसने अंततः 1947 में भारत–विभाजन का मार्ग प्रशस्त किया।

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में सांप्रदायिकता तीन रूपों में दिखाई देती है –

1. **सामाजिक सांप्रदायिकता** – जब लोग धार्मिक पहचान के आधार पर सामाजिक दूरी और अलगाव बनाए रखते थे।
2. **राजनीतिक सांप्रदायिकता** – जब राजनीतिक दल और संगठन धर्म के आधार पर अपने हित साधते थे।
3. **हिंसात्मक सांप्रदायिकता** – जब यह तनाव हिंसा और दंगों में बदल जाता था।

इन तीनों रूपों ने मिलकर भारत को विभाजन की त्रासदी तक पहुँचा दिया।

1947 का विभाजन भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी सांप्रदायिक त्रासदी थी। लाखों लोग विस्थापित हुए, लाखों की हत्या हुई और महिलाओं के साथ अमानवीय हिंसा हुई। यह घटना इस बात का प्रमाण थी कि सांप्रदायिकता केवल वैचारिक या राजनीतिक बहस नहीं, बल्कि समाज के लिए विनाशकारी शक्ति है।

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में सांप्रदायिकता ने कई नकारात्मक प्रभाव डाले। इससे न केवल राष्ट्रीय आंदोलन की एकजुटता कमजोर हुई बल्कि ब्रिटिश शासन को शासन करने में सुविधा मिली। सांप्रदायिकता से समाज में अविश्वास और वैमनस्य का वातावरण पैदा हुआ, जिससे अंततः देश का विभाजन हुआ और लाखों लोग हिंसा व विस्थापन का शिकार बने।

भारत में सांप्रदायिकता का उदय और विकास ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक कारणों का परिणाम था। औपनिवेशिक शासन की नीतियों, साम्प्रदायिक संगठनों के उदय और स्वतंत्रता आंदोलन की जटिलताओं ने इसे और गहरा किया। गाँधी ने जीवनभर सांप्रदायिकता से लड़ाई लड़ी और धार्मिक सहिष्णुता तथा सर्वधर्म समभाव का संदेश दिया। परंतु विभाजन की त्रासदी ने यह स्पष्ट कर दिया कि सांप्रदायिकता केवल गाँधी के समय की चुनौती नहीं थी, बल्कि भारत की सामूहिक चेतना के लिए एक सतत संघर्ष का विषय है।

इन चुनौतियों के बीच कई नेताओं और आंदोलनों ने सांप्रदायिक एकता के लिए कार्य किया। कांग्रेस ने बार–बार सर्वधर्म एकता पर बल दिया। नेहरू, मौलाना आजाद, पटेल और अन्य नेताओं ने हिंदू–मुस्लिम एकता को राष्ट्रीय आंदोलन का आधार माना। गाँधी स्वयं सांप्रदायिक एकता के सबसे बड़े समर्थक थे। उनके विचार और प्रयोग इसी संघर्ष की धुरी बने।

11.3 सांप्रदायिक एकता की अवधारणा

भारत जैसे बहुलतावादी समाज में सांप्रदायिक एकता का विचार केवल राजनीतिक या सामाजिक आवश्यकता नहीं, बल्कि सांस्कृतिक परंपरा की आत्मा है। यह अवधारणा इस विश्वास पर आधारित है कि धर्म और

सम्प्रदाय व्यक्ति और समाज को नैतिकता, आचार और आध्यात्मिकता की दिशा में प्रेरित करते हैं। किंतु जब धर्म संकीर्णता, अहंकार और वर्चस्व की मानसिकता में बदल जाता है, तब वह सांप्रदायिकता का रूप ले लेता है। इसके विपरीत, जब धर्म परस्पर सम्मान, संवाद और सहयोग की भूमि तैयार करता है, तब वह सांप्रदायिक एकता का स्वरूप ग्रहण करता है।

भारतीय दर्शन में सांप्रदायिक एकता का बीज बहुत प्राचीन है। ऋग्वेद में कहा गया – "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात् सत्य एक है, ज्ञानीजन उसे अलग–अलग नामों से पुकारते हैं। यह वाक्य भारतीय चिंतन की सार्वभौमिकता को उद्घाटित करता है। उपनिषदों ने आत्मा और ब्रह्म को सार्वभौमिक सत्ता मानते हुए कहा कि सभी जीव उसी एक सत्ता के अंश हैं। इस दृष्टिकोण ने धार्मिक विविधता को अस्वीकार करने के बजाय उसे स्वीकारने की भूमि तैयार की। बौद्ध और जैन दर्शन ने करुणा, अहिंसा और अपरिग्रह जैसे सार्वभौमिक मूल्यों को स्थापित किया। इन मूल्यों ने धर्म की दीवारों से परे जाकर मानवीय संबंधों को प्राथमिकता दी। इसी तरह भक्ति आंदोलन ने जाति और संप्रदाय की सीमाओं को तोड़कर प्रेम और भक्ति को ईश्वर तक पहुँचने का साधन माना। कबीर और गुरु नानक जैसे संतों ने हिंदू और इस्लामी परंपराओं के बीच सेतु का कार्य किया। सूफी परंपरा ने भी प्रेम और मानव–सेवा के माध्यम से समाज को जोड़ने का प्रयास किया।

इन दार्शनिक और आध्यात्मिक धाराओं ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत की मूल चेतना विविधता में एकता की है। यही सांप्रदायिक एकता की अवधारणा का आधार बना।

यहाँ यह समझना आवश्यक है कि 'सांप्रदायिक एकता' और 'सांप्रदायिकता' दो विपरीत प्रवृत्तियाँ हैं।

- सांप्रदायिकता वह मानसिकता है जिसमें अपना धर्म सर्वोपरि और दूसरों का धर्म अधम माना जाता है। इसमें असहिष्णुता, अविश्वास और वैमनस्य छिपा रहता है।
- सांप्रदायिक एकता वह भाव है जिसमें व्यक्ति अपने धर्म के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी अन्य धर्मों का सम्मान करता है। इसमें सहिष्णुता, सहयोग और संवाद की भावना निहित होती है।

गाँधी ने बार–बार कहा कि सच्चा धर्म वह है जो हमें दूसरों के धर्म का भी आदर करना सिखाए। यदि धर्म हमें वैमनस्य की ओर ले जाए तो वह धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है।

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में सांप्रदायिक एकता का प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण था। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति ने हिंदू और मुसलमानों के बीच अविश्वास को गहरा किया। पृथक निर्वाचक मंडलों और कम्युनल अवार्ड ने इसे और प्रबल किया। किन्तु इसके बावजूद अनेक आंदोलनों और नेताओं ने सांप्रदायिक एकता को राष्ट्रीय संघर्ष की आधारशिला माना। 1857 का संग्राम, खिलाफत आंदोलन, असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन ने सांप्रदायिक एकता के कई उदाहरण प्रस्तुत किए। गाँधी स्वयं इस प्रक्रिया के केंद्र में थे। उनके अनुसार, यदि भारत स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहता है तो हिंदू और मुसलमानों की एकता अनिवार्य है।

गाँधी ने सांप्रदायिक एकता को केवल राजनीतिक साधन के रूप में नहीं देखा। उनके लिए यह एक आध्यात्मिक और नैतिक आवश्यकता थी। वे मानते थे कि धर्म का उद्देश्य मानव को सत्य और ईश्वर के निकट लाना है, न कि उसे अन्य मनुष्यों से दूर करना। उन्होंने कहा – "मुझे नहीं चाहिए ऐसी स्वतंत्रता जो हिंदुओं और मुसलमानों को अलग कर दे।"

गाँधी की प्रार्थना सभाएँ, आश्रम जीवन और आंदोलनों में विभिन्न धर्मों के लोगों की भागीदारी सांप्रदायिक एकता की व्यावहारिक मिसालें थीं। उनके विचार में भारत की आत्मा तभी जीवित रह सकती है जब यहाँ के सभी धर्म शांति और सहयोग से रहें।

सांप्रदायिक एकता का अर्थ केवल सहिष्णुता नहीं है, बल्कि सक्रिय सहयोग है। इसका आशय यह है कि व्यक्ति न केवल दूसरों के धर्म को सहन करे, बल्कि उसे सम्मान और समझ की दृष्टि से देखे। गाँधी ने कहा था – "मैं चाहता हूँ कि सभी धर्मों के सुंदर पुष्प मेरे बगीचे में खिलें। मैं उन्हें अपने धर्म की तरह मानूँगा।"

इस दृष्टिकोण में सांप्रदायिक एकता मात्र राजनीतिक नारा नहीं, बल्कि जीवन–दर्शन है। यह व्यक्ति को यह सिखाती है कि उसकी पहचान केवल उसके धर्म से नहीं, बल्कि मानवता से है।

सांप्रदायिक एकता के पीछे कुछ दार्शनिक मूल्य स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैंरू

1. सत्य – सभी धर्म सत्य की खोज के मार्ग हैं।
2. अहिंसा – दूसरों को चोट पहुँचाना या अपमानित करना धर्म के विपरीत है।
3. सहिष्णुता – विभिन्न मार्गों और परंपराओं को स्वीकार करना।
4. समानता – किसी धर्म या समुदाय को श्रेष्ठ या हीन न मानना।
5. मानवता – धर्म का अंतिम उद्देश्य मनुष्य और ईश्वर के बीच संबंध को गहरा करना है।

इस प्रकार, सांप्रदायिक एकता की अवधारणा भारतीय संस्कृति और गाँधी दर्शन दोनों में केंद्रीय स्थान रखती है। यह केवल स्वतंत्रता आंदोलन की रणनीति नहीं थी, बल्कि एक गहरी मानवीय और आध्यात्मिक आवश्यकता थी। सांप्रदायिक एकता हमें यह सिखाती है कि विविधता विभाजन का कारण नहीं, बल्कि समृद्धि और शक्ति का स्रोत है। गाँधी ने इसे अपने जीवन और आंदोलनों में साकार करने का प्रयास किया, यद्यपि परिस्थितियों की कठिनाइयों के कारण यह आदर्श पूरी तरह साकार नहीं हो पाया।

11.4 गाँधी का दृष्टिकोण

महात्मा गाँधी का संपूर्ण जीवन सत्य और अहिंसा के प्रयोगों की गाथा है। उनके विचारों में धर्म और राजनीति का गहरा समन्वय था। परंतु गाँधी के लिए 'धर्म' का अर्थ किसी संकीर्ण सम्प्रदाय से जुड़ना नहीं था। उनके लिए धर्म एक सार्वभौमिक नैतिक शक्ति थी, जो मनुष्य को सत्य, न्याय और करुणा की ओर ले जाती है। इस दृष्टिकोण के कारण गाँधी ने अपने जीवन और आंदोलन में सांप्रदायिक एकता को सर्वोपरि स्थान दिया।

गाँधी का कहना था – "मेरे लिए धर्म का अर्थ है सत्य और अहिंसा की ओर अविचल गति।" धर्म उनके लिए केवल पूजा–पद्धति या अनुष्ठान तक सीमित नहीं था, बल्कि यह मनुष्य के जीवन को मार्गदर्शन देने वाली नैतिक शक्ति थी। उन्होंने यह भी कहा – "धर्म के बिना जीवन शून्य है। धर्म वह नहीं जो किसी विशेष मंदिर, मस्जिद या गिरजाघर में सीमित है, बल्कि वह है जो हमें सत्य और न्याय की ओर प्रेरित करता है।" गाँधी के विचार में धर्म की यह परिभाषा ही सांप्रदायिक एकता की आधारशिला है। जब धर्म को संकीर्णता से मुक्त कर सार्वभौमिक नैतिकता के रूप में देखा जाएगा, तभी विभिन्न सम्प्रदाय एक–दूसरे का सम्मान कर पाएँगे।

गाँधी का दृढ़ विश्वास था कि सभी धर्मों में सत्य और नैतिकता का सार निहित है। उन्होंने लिखा – "सभी धर्म सत्य हैं, परंतु सभी धर्मों में अपूर्णता भी है। प्रत्येक धर्म मानव जीवन को सत्य के समीप ले जाता है, किंतु कोई भी धर्म पूर्ण सत्य का दावा नहीं कर सकता।" यह दृष्टिकोण उन्हें किसी एक धर्म की श्रेष्ठता के दावे से दूर ले जाता है। वे हिंदू धर्म में जन्मे, परंतु उन्होंने ईसाई धर्म से प्रेम, इस्लाम से समर्पण, जैन धर्म से अहिंसा और बौद्ध धर्म से करुणा का पाठ सीखा। गाँधी के विचार में, धर्मों की यह पारस्परिक पूरकता ही सांप्रदायिक एकता का आधार है।

गाँधी का सबसे प्रसिद्ध सूत्र था – 'सर्वधर्म समभाव'। इसका अर्थ है कि सभी धर्मों का आदर और सम्मान किया जाए। इसका आशय यह नहीं कि सभी धर्म एक जैसे हैं, बल्कि यह कि प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को सत्य और ईश्वर की ओर ले जाने का साधन है। गाँधी का यह विचार भारतीय परंपरा से प्रेरित था। उन्होंने उपनिषदों और गीता से आत्मसात किया कि सत्य अनेक मार्गों से प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार, सूफी और भक्ति संतों ने भी यही संदेश दिया था कि ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्ग हैं। गाँधी ने इस परंपरा को अपने जीवन और आंदोलनों में व्यावहारिक रूप दिया।

गाँधी का जीवन धार्मिक अध्ययन से गहराई से प्रभावित था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए उन्होंने बाइबिल पढ़ी और 'सर्मन ऑन द माउंट' (पर्वत उपदेश) से गहरा प्रभाव लिया। वहीं कुरान का अध्ययन कर उन्होंने इस्लाम के समर्पण और ईश्वर–केन्द्रित जीवन को समझा। हिंदू धर्म के ग्रंथों के साथ–साथ उन्होंने टॉलस्टॉय, थोरॉ और रस्किन जैसे पश्चिमी चिंतकों से भी प्रेरणा पाई। इन अध्ययनों ने गाँधी को यह विश्वास दिलाया कि कोई भी धर्म पूर्ण नहीं है, किंतु सभी धर्म मिलकर मानवता की पूर्णता की ओर ले जा सकते हैं। इस प्रकार उनके लिए धार्मिक सहिष्णुता और सांप्रदायिक एकता कोई सैद्धांतिक विचार नहीं, बल्कि गहन व्यक्तिगत अनुभव था।

गाँधी ने राजनीति को धर्म से अलग नहीं माना। उन्होंने कहा – "मेरी राजनीति धर्म से अलग नहीं है। राजनीति में धर्म का स्थान सत्य और नैतिकता है। यदि राजनीति धर्म से मुक्त हो जाए, तो वह केवल स्वार्थ और शक्ति की राजनीति बनकर रह जाएगी।" इस कथन का आशय यह नहीं था कि वे राजनीति को संप्रदायवाद से जोड़ना चाहते थे। उनका आशय यह था कि राजनीति को नैतिक और मानवीय मूल्यों से प्रेरित होना चाहिए। इसी दृष्टि से उन्होंने सांप्रदायिक एकता को स्वतंत्रता संग्राम का मूलाधार माना।

गाँधी ने सांप्रदायिक एकता को केवल उपदेशों तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने अपने आंदोलनों में इसे साकार किया।

- खिलाफत आंदोलन (1920–22) में उन्होंने हिंदू और मुसलमानों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया। वे मानते थे कि यह एकता न केवल ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष को बल देगी, बल्कि सांप्रदायिक सद्भाव को भी बढ़ाएगी।
- उनके असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलनों में विभिन्न धर्मों के लोग सम्मिलित हुए। गाँधी ने कहा – "स्वतंत्रता केवल तब मिलेगी जब सभी धर्मों और समुदायों के लोग मिलकर संघर्ष करेंगे।"
- गाँधी के आश्रम जीवन में यह आदर्श प्रत्यक्ष दिखता था। साबरमती और वर्धा आश्रम में सभी धर्मों की प्रार्थनाएँ गाई जाती थीं।

यद्यपि गाँधी ने सांप्रदायिक एकता को जीवन का आदर्श बनाया, फिर भी उन्हें अनेक बार सांप्रदायिक हिंसा का सामना करना पड़ा। 1924 में कोहाट (अब पाकिस्तान) में हिंदू–मुस्लिम दंगों ने उन्हें गहरी पीड़ा दी। 1946–47 के दौरान जब विभाजन की हिंसा फैली, तो गाँधी ने न केवल राजनीतिक प्रयास किए बल्कि व्यक्तिगत रूप से नोआखाली और कलकत्ता जाकर शांति और सद्भाव स्थापित करने का प्रयास किया। उनका कहना था – "मैं भारत की स्वतंत्रता इसलिए चाहता हूँ कि यहाँ हिंदू और मुसलमान भाईचारे से रह सकें। यदि यह स्वतंत्रता सांप्रदायिक वैमनस्य पर आधारित होगी, तो वह अधूरी होगी।"

गाँधी का दृष्टिकोण इसलिए विशिष्ट था कि उन्होंने धर्म को न संकीर्ण रूप में देखा, न ही केवल व्यक्तिगत साधना तक सीमित रखा। उन्होंने धर्म को सार्वभौमिक सत्य और सामाजिक जीवन की आधारशिला माना। इस दृष्टिकोण से वे आधुनिक काल के सबसे बड़े सांप्रदायिक एकता के प्रवक्ता बनकर उभरे। उनकी विशिष्टता इस तथ्य में भी है कि उन्होंने धर्म और राजनीति के बीच संतुलन स्थापित किया। एक ओर वे व्यक्तिगत रूप से गहन धार्मिक साधक थे, दूसरी ओर उन्होंने धर्म को राजनीति में नैतिक मूल्यों का स्रोत बनाया।

गाँधी का दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि उनके लिए सांप्रदायिक एकता मात्र राजनीतिक रणनीति नहीं थी। यह उनके जीवन–दर्शन का केंद्रीय मूल्य था। उन्होंने धर्म को सार्वभौमिक नैतिकता के रूप में परिभाषित किया और सभी धर्मों की समानता को स्वीकारा। उनका 'सर्वधर्म समभाव' केवल उपदेश नहीं, बल्कि उनके जीवन और आंदोलनों का आधार था।

11.5 गाँधी और धार्मिक सहिष्णुता

गाँधी के जीवन और चिंतन की एक विशिष्ट विशेषता थी – धार्मिक सहिष्णुता। वे मानते थे कि सहिष्णुता केवल दूसरों के धर्म को 'सहन' करने का नाम नहीं, बल्कि सक्रिय रूप से उसे सम्मान देने और उससे सीखने की प्रवृत्ति है। उनके अनुसार, यदि हम अपने धर्म को सत्य मानते हैं तो हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि अन्य धर्म भी उसी सत्य की ओर मार्गदर्शन करते हैं। इस प्रकार, धार्मिक सहिष्णुता गाँधी की दार्शनिक दृष्टि और उनके सामाजिक–राजनीतिक प्रयोगों का केंद्रीय तत्व थी।

गाँधी के अनुसार, सहिष्णुता केवल सहनशीलता नहीं है। सहनशीलता में एक निष्क्रिय भाव छिपा होता है, मानो हम दूसरे धर्म को मजबूरी में बर्दाश्त कर रहे हों। किंतु गाँधी की दृष्टि में सहिष्णुता का अर्थ है – दूसरे धर्म को सम्मान देना और उसकी अच्छाइयों को आत्मसात करना। वे कहते थे – "मैं चाहता हूँ कि सभी धर्म मेरे बगीचे में खिले हुए फूलों की तरह हों, और मैं उनकी सुगंध का आनंद ले सकूँ।" इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि गाँधी के लिए धार्मिक सहिष्णुता एक सकारात्मक मूल्य था, जो सांप्रदायिक एकता का आधार बन सकता था।

गाँधी का जीवन धार्मिक सहिष्णुता की मिसाल था। वे हिंदू परिवार में जन्मे, किंतु उन्होंने अपने जीवन में अन्य धर्मों का अध्ययन और उनसे प्रेरणा ग्रहण की। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने बाइबिल पढ़ी और सर्मन ऑन द माउंट से गहरा प्रभाव लिया। कुरान का अध्ययन कर उन्होंने इस्लाम की गहराई को समझा। जैन धर्म से उन्होंने अहिंसा और अपरिग्रह का मूल्य आत्मसात किया। बौद्ध धर्म से करुणा का आदर्श ग्रहण किया। उनकी प्रार्थना सभाओं में गीता, कुरान, बाइबिल, जबूर और अन्य धर्मग्रंथों के अंश गाए जाते थे। यह उनके जीवन का व्यावहारिक उदाहरण था कि वे सभी धर्मों को समान सम्मान देते थे।

गाँधी ने धार्मिक सहिष्णुता को केवल व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, बल्कि राजनीतिक आंदोलनों में भी लागू किया।

- खिलाफत आंदोलन में उन्होंने हिंदू और मुसलमानों की एकता का संदेश दिया। उनके लिए यह केवल राजनीतिक रणनीति नहीं थी, बल्कि धार्मिक सहिष्णुता का प्रयोग था।
- असहयोग आंदोलन और सविनय अवज्ञा आंदोलन में भी विभिन्न धर्मों के लोग सम्मिलित हुए। गाँधी ने बार–बार कहा कि भारत तभी स्वतंत्र होगा जब सभी धर्म और समुदाय एक–दूसरे का सम्मान करेंगे।
- नोआखाली (1946) में जब सांप्रदायिक हिंसा फैली, तो गाँधी ने अपनी उपस्थिति से शांति और सद्भाव स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने हिंदू और मुसलमानों दोनों से अपील की कि वे एक–दूसरे के धर्म का आदर करें और हिंसा का मार्ग त्याग दें।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि गाँधी की सहिष्णुता केवल पश्चिमी उदारवाद से प्रेरित नहीं थी। पश्चिमी परंपरा में सहिष्णुता अक्सर 'सहन करने' के अर्थ में प्रयोग होती है। किंतु गाँधी का दृष्टिकोण भारतीय परंपरा से प्रेरित था, जहाँ विभिन्न मार्गों और साधनों को सत्य की ओर ले जाने वाला माना गया है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" – इस वैदांतिक सूत्र ने गाँधी की दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया।

गाँधी ने जीवनभर 'संवाद' को सहिष्णुता का मुख्य साधन माना। उनका विश्वास था कि यदि विभिन्न धर्मों के लोग एक–दूसरे से बातचीत करें, तो वे न केवल गलतफहमियों को दूर कर सकते हैं, बल्कि एक–दूसरे की अच्छाइयों से सीख भी सकते हैं। उन्होंने कहा – "संवाद ही वह मार्ग है जिससे हम एक–दूसरे को समझ सकते हैं। हिंसा या चुप्पी केवल दूरियाँ बढ़ाती हैं।"

गाँधी का सत्याग्रह केवल राजनीतिक संघर्ष की रणनीति नहीं, बल्कि धार्मिक सहिष्णुता का भी व्यावहारिक रूप था। सत्याग्रह का मूल है – अहिंसा और सत्य। जब व्यक्ति अहिंसा को अपनाता है, तो वह अनिवार्यतः दूसरों की मान्यताओं और धर्म का सम्मान करना सीखता है। इस प्रकार, सत्याग्रह स्वयं धार्मिक सहिष्णुता का प्रतीक बन जाता है।

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में जब सांप्रदायिक दंगे बढ़े, तब गाँधी की धार्मिक सहिष्णुता और भी अधिक प्रकट हुई। 1924 के कोहाट दंगों और 1946दृ47 के विभाजन की हिंसा के समय उन्होंने कहा – "यदि मैं अकेला रह जाऊँ, तब भी मैं सांप्रदायिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता के मार्ग पर डटा रहूँगा।" वे हिंसा के बीच प्रार्थना और उपवास का सहारा लेते थे, क्योंकि उनके लिए यह केवल आध्यात्मिक साधन नहीं था, बल्कि समाज को शांति और एकता की ओर ले जाने का प्रयास था।

गाँधी की धार्मिक सहिष्णुता ने उन्हें आधुनिक युग का अद्वितीय नेता बनाया। उन्होंने सभी धर्मों को समान सम्मान दिया, उनसे प्रेरणा ग्रहण की और उन्हें अपने व्यक्तिगत तथा राजनीतिक जीवन में आत्मसात किया। उनकी प्रार्थना सभाएँ, आंदोलनों में बहु–धार्मिक भागीदारी और हिंसा के दौर में उनका शांति–प्रयास इस बात का प्रमाण हैं कि धार्मिक सहिष्णुता उनके जीवन का वास्तविक आधार थी। आज के संदर्भ में भी गाँधी का यह संदेश उतना ही प्रासंगिक है – "यदि हम सच्चे धार्मिक हैं, तो हमें सभी धर्मों का आदर करना चाहिए।" यही सहिष्णुता समाज में सांप्रदायिक एकता और स्थायी शांति का आधार बन सकती है।

11.6 चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

गाँधी का दर्शन सांप्रदायिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता पर आधारित था। परंतु स्वतंत्रता–पूर्व भारत की परिस्थितियाँ इतनी जटिल थीं कि उनके विचारों को व्यवहार में लाना आसान नहीं था। उनकी नीतियों और प्रयोगों

को अनेक प्रकार की चुनौतियों और आलोचनाओं का सामना करना पड़ा।

गाँधी के समय में भारत में दो प्रमुख राष्ट्रीय धाराएँ सक्रिय थीं – कांग्रेस और मुस्लिम लीग। जहाँ कांग्रेस स्वयं को सभी धर्मों का प्रतिनिधि बताती थी, वहीं मुस्लिम लीग ने 'मुस्लिम अलगाववाद' की राजनीति को बल दिया। लीग का तर्क था कि हिंदू बहुमत वाले भारत में मुसलमानों के हित सुरक्षित नहीं रहेंगे। गाँधी की सांप्रदायिक एकता की अपील इस राजनीतिक वास्तविकता के सामने कई बार कमजोर पड़ती दिखाई दी।

1920 के दशक में गाँधी ने हिंदू–मुस्लिम एकता के लिए खिलाफत आंदोलन को समर्थन दिया। परंतु कुछ वर्षों के भीतर ही यह आंदोलन कमजोर पड़ गया और सांप्रदायिक तनाव फिर उभरने लगे। आलोचकों का मत था कि गाँधी ने एक अस्थायी राजनीतिक मुद्दे को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़कर गलती की, जिससे दीर्घकालीन सांप्रदायिक एकता स्थापित नहीं हो सकी।

गाँधी की अपील और प्रयासों के बावजूद 1920 से 1947 तक कई बार सांप्रदायिक दंगे हुए – कोहाट, कानपुर, कलकत्ता, नोआखाली और पंजाब की हिंसा इसका उदाहरण हैं। इन घटनाओं ने गाँधी के विचारों को गंभीर चुनौती दी। आलोचकों ने कहा कि गाँधी की सहिष्णुता और 'सर्वधर्म समभाव' का आदर्श व्यवहारिक राजनीति में टिकाऊ नहीं है।

1947 में भारत का विभाजन गाँधी की सबसे बड़ी हार मानी जाती है। उनका सपना था कि स्वतंत्र भारत सभी धर्मों का साझा घर बने। किंतु वास्तविकता यह हुई कि भारत और पाकिस्तान धार्मिक आधार पर विभाजित हो गए। इस विभाजन और उससे जुड़ी हिंसा ने गाँधी की नीतियों की सीमाएँ उजागर कीं।

कुछ आलोचकों ने गाँधी पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने हिंदू बहुमत को खुश करने के लिए मुसलमानों की वास्तविक चिंताओं को नजरअंदाज किया। वहीं दूसरी ओर, कुछ लोगों ने उन्हें 'मुस्लिम तुष्टिकरण' का दोषी बताया। इस प्रकार, गाँधी को दोनों पक्षों से आलोचना झेलनी पड़ी।

एक अन्य आलोचना यह थी कि गाँधी का 'सर्वधर्म समभाव' व्यावहारिक राजनीति के लिए अत्यधिक आदर्शवादी था। उनका विश्वास था कि धर्म मानवता को जोड़ सकता है, परंतु उनके आलोचक मानते थे कि धर्म अक्सर राजनीतिक स्वार्थों और पहचान की राजनीति का साधन बन जाता है।

गाँधी की सांप्रदायिक एकता और धार्मिक सहिष्णुता की नीतियों को गहन चुनौतियाँ मिलीं। सांप्रदायिक राजनीति का उभार, बार–बार होने वाली हिंसा और अंततः विभाजन ने उनके आदर्श को धक्का पहुँचाया। फिर भी, यह कहना उचित होगा कि गाँधी ने इन चुनौतियों के बावजूद सांप्रदायिक एकता की मशाल बुझने नहीं दी। वे अंत तक इसी आदर्श पर अडिग रहे।

आज भी उनकी आलोचनाओं और असफलताओं से सीखकर हम यह समझ सकते हैं कि सांप्रदायिक एकता केवल राजनीतिक नारे से स्थापित नहीं होतीय इसके लिए गहरी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कोशिशों की आवश्यकता होती है।

11.7 समकालीन परिप्रेक्ष्य

भारत ने 1947 में स्वतंत्रता प्राप्त की, किंतु उस स्वतंत्रता के साथ आई विभाजन की त्रासदी ने सांप्रदायिकता की गहरी चोट दी। गाँधी ने जिस हिंदू–मुस्लिम एकता का सपना देखा था, वह अधूरा रह गया। फिर भी उनकी विचारधारा स्वतंत्र भारत की आधारभूमि बनी। संविधान निर्माताओं ने 'धर्मनिरपेक्षता' और 'सर्वधर्म समानता' को राष्ट्र की मूलभूत विशेषता के रूप में स्वीकार किया।

स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता को अपनाया। किंतु सांप्रदायिक तनाव समय–समय पर प्रकट होते रहे। 1960, 1980 और 1990 के दशकों में हुए दंगों ने यह स्पष्ट कर दिया कि सांप्रदायिकता केवल औपनिवेशिक राजनीति की देन नहीं थी, बल्कि यह समाज में गहरे स्तर पर जड़ें जमाए हुए थी। गाँधी की यह चेतावनी कि "धर्म यदि राजनीति का साधन बनेगा, तो हिंसा और विभाजन अवश्य होगा" आज भी प्रासंगिक प्रतीत होती है।

21वीं सदी में भारत एक वैश्विक शक्ति के रूप में उभर रहा है। तकनीकी प्रगति, शहरीकरण और शिक्षा ने

सामाजिक जीवन को बदला है। किंतु डिजिटल मीडिया और राजनीति में धर्म आधारित ध्रुवीकरण ने सांप्रदायिकता के नए रूप को जन्म दिया है। आज जब सोशल मीडिया पर अफवाहें और घृणा–भाषण तेजी से फैलते हैंय और, चुनावी राजनीति में धर्म और पहचान के मुद्दे बार–बार उठते हैं तो इन परिस्थितियों में गाँधी का संदेश – "सत्य, अहिंसा और सर्वधर्म समभाव" – और भी अधिक आवश्यक हो जाता है।

11.8 निष्कर्ष

भारतीय समाज का स्वरूप बहुधार्मिक, बहुभाषी और बहुजातीय रहा है। इस विविधता में ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति निहित है। किंतु जब विविधता के साथ सहिष्णुता का भाव कमजोर हो जाता है, तब सांप्रदायिकता जैसी प्रवृत्तियाँ समाज और राष्ट्र के लिए विनाशकारी सिद्ध होती हैं। गाँधी ने अपने पूरे जीवन में इस बात पर बल दिया कि भारत की आत्मा तभी सुरक्षित रह सकती है, जब हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई और अन्य सभी धर्मावलंबी आपसी प्रेम और सहयोग से जीवन जीएँ।

गाँधी का मानना था कि धर्म का सही अर्थ है – सत्य की खोज और नैतिक जीवन। किसी भी धर्म की संकीर्ण व्याख्या या उसका राजनीतिक शोषण, समाज को विभाजित करने का कार्य करता है। इसलिए उन्होंने बार–बार कहा कि "सभी धर्म सत्य तक पहुँचने के अलग–अलग मार्ग हैं।" उनके लिए सांप्रदायिक एकता केवल राजनीतिक आवश्यकता नहीं थी, बल्कि यह एक आध्यात्मिक आदर्श था। उन्होंने यह भी माना कि यदि भारत को स्वतंत्रता पानी है और स्वतंत्रता को बनाए रखना है, तो सांप्रदायिक एकता अनिवार्य है। उनकी दृष्टि में हिंदू–मुस्लिम एकता केवल राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूत करने का साधन नहीं थी, बल्कि यह भारत की जीवन–रेखा थी।

स्वतंत्रता–पूर्व भारत में सांप्रदायिकता की समस्या बार–बार सामने आई। अंग्रेजों की विभाजनकारी नीति, सांप्रदायिक संगठनों का उदय और आपसी अविश्वास ने राष्ट्रीय एकता को चुनौती दी। गाँधी ने खिलाफत आंदोलन, असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह जैसे प्रयोगों के माध्यम से इस चुनौती का समाधान खोजने का प्रयास किया। हालाँकि, बार–बार सांप्रदायिक दंगों ने गाँधी के सपनों को चोट पहुँचाई। 1947 के विभाजन के समय जब हिंसा अपने चरम पर पहुँची, तब गाँधी ने अकेले नोआखाली और बिहार जाकर शांति स्थापित करने का साहस दिखाया। यह उनकी प्रतिबद्धता थी कि वे सांप्रदायिकता के खिलाफ अंत तक संघर्षरत रहे।

गाँधी की दृष्टि केवल स्वतंत्रता–पूर्व की समस्या तक सीमित नहीं थी। उन्होंने जिस सांप्रदायिक एकता की वकालत की, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है। आज जब वैश्विक स्तर पर भी धार्मिक असहिष्णुता और आतंकवाद जैसी चुनौतियाँ हैं, तब गाँधी का मार्ग हमें बताता है कि केवल प्रेम और सत्य ही दीर्घकालिक समाधान हो सकते हैं। गाँधी का जीवन हमें यह भी सिखाता है कि सांप्रदायिक एकता कोई स्थायी उपलब्धि नहीं है, बल्कि यह सतत संघर्ष है। समाज में समय–समय पर तनाव उत्पन्न होते रहेंगे, लेकिन यदि हम गाँधी के आदर्शों को अपनाएँ, तो उन तनावों को हिंसा में बदलने से रोका जा सकता है।

अंततः, गाँधी का दर्शन हमें यह संदेश देता है कि सांप्रदायिक एकता केवल किसी राष्ट्र के अस्तित्व की शर्त नहीं है, बल्कि यह मानवता के उच्चतम मूल्यों का प्रतीक है। गाँधी के लिए एकता का अर्थ केवल सह–अस्तित्व नहीं था, बल्कि सक्रिय सहयोग और करुणा था। उन्होंने अपने जीवन और मृत्यु से यह प्रमाणित किया कि यदि हम सच्चाई और अहिंसा पर अडिग रहें, तो सांप्रदायिकता जैसी विषाक्त प्रवृत्तियों को परास्त किया जा सकता है। भारत के लिए आज भी यह आवश्यक है कि हम गाँधी की इस चेतावनी को स्मरण रखें "हिंदू और मुसलमान यदि भाई–भाई होकर नहीं रहेंगे, तो भारत स्वतंत्रता के योग्य नहीं होगा।" यही संदेश हमारे वर्तमान और भविष्य दोनों के लिए मार्गदर्शक है। आज जब संसार हिंसा, आतंक और असहिष्णुता की चुनौतियों से जूझ रहा है, तब गाँधी का यह संदेश और भी प्रासंगिक है – "धर्म मनुष्यता को जोड़ने का साधन है, विभाजित करने का नहीं।"

11.9 बोध प्रश्न

1. सांप्रदायिकता और सांप्रदायिक एकता में क्या अंतर है? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
2. गाँधी के 'सर्वधर्म समभाव' की दार्शनिक आधारभूमि क्या थी?
3. खिलाफत आंदोलन में गाँधी की भूमिका का सांप्रदायिक एकता के संदर्भ में विवेचन कीजिए।
4. गाँधी की प्रार्थना सभाओं का सांप्रदायिक सद्भाव की दृष्टि से क्या महत्व था?
5. गाँधी की सांप्रदायिक एकता की अवधारणा के समकालीन महत्व का विवेचन कीजिए।

11.10 उपयोगी पुस्तकें

1. महात्मा गाँधी, हिंद स्वराज्य।
2. महात्मा गाँधी, मेरे विचार।
3. आर.सी. मजूमदार, भारत का स्वतंत्रता संग्राम।
4. बी.आर. नंदा, गाँधी– ए बायोग्राफी।
5. राजमोहन गाँधी, मोहनदास– ए ट्रू स्टोरी ऑफ ए मैन, हिज पीपुल एंड एन एम्पायर।
6. पायस तिवारी, गाँधी और सांप्रदायिक सद्भाव।
7. धर्मपाल, गाँधी एंड रिलिजियस हार्मनी।

इकाई 12–अस्पृश्यता उन्मूलन

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 अस्पृश्यता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

12.3 गाँधीजी का दृष्टिकोण

12.3.1 धार्मिक दृष्टिकोण

12.3.2 नैतिक दृष्टिकोण

12.3.3 सामाजिक दृष्टिकोण

12.3.4 राष्ट्रीय दृष्टिकोण

12.4 गाँधीजी के व्यावहारिक प्रयास

12.5 गाँधीजी के अस्पृश्यता संबंधी विचारों के दार्शनिक आधार

12.6 गाँधीजी और डॉ. अंबेडकर

12.7 वर्तमान प्रासंगिकता

12.8 निष्कर्ष

12.9 प्रश्न बोध

12.10 उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य विद्यार्थियों को गाँधीजी के दर्शन के एक अत्यंत महत्वपूर्ण पहलू अस्पृश्यता उन्मूलन कृके गहन अध्ययन की दिशा में प्रेरित करना है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त विद्यार्थी निम्नलिखित बिंदुओं को समझने और विश्लेषण करने में सक्षम होंगे

1. भारतीय समाज में अस्पृश्यता की उत्पत्ति, स्वरूप और ऐतिहासिक विकास का विवेचन कर सकेंगे।
2. यह जान सकेंगे कि महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता को किस प्रकार सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और राष्ट्रीय दृष्टि से देखा।
3. गाँधीजी द्वारा अस्पृश्यता–उन्मूलन के लिए किए गए व्यक्तिगत, संगठनात्मक और सामाजिक प्रयासों को समझ पाएँगे।
4. गाँधीजी के सत्य, अहिंसा और सर्वोदयी दृष्टिकोण को अस्पृश्यता–उन्मूलन से किस प्रकार जोड़ा जा सकता है, इसका दार्शनिक विश्लेषण कर पाएँगे।
5. गाँधीजी और डॉ. भीमराव अंबेडकर के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे और यह समझ पाएँगे कि दोनों में अंतर होने के बावजूद उनका उद्देश्य समान था।
6. गाँधीजी की दृष्टि की सीमाओं और आलोचनाओं को पहचान सकेंगे और यह भी मूल्यांकन कर पाएँगे कि आज के समय में उनकी प्रासंगिकता क्या है।
7. इस अध्ययन से विद्यार्थी समाजशास्त्रीय और दार्शनिक दृष्टि से अस्पृश्यता जैसी जटिल समस्या का बहुआयामी मूल्यांकन करने के लिए तैयार होंगे।

12.1 प्रस्तावना

भारतीय समाज अपनी प्राचीनता और समृद्ध परंपरा के लिए विश्वभर में विशेष स्थान रखता है। यहाँ का दार्शनिक चिंतन, आध्यात्मिक साधना और सामाजिक व्यवस्था एक अनोखा स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।भारत की आध्यात्मिक विरासत ने विश्व को सत्य, अहिंसा, करुणा और आत्मत्याग जैसे मूल्यों से समृद्ध किया। यहाँ वेदांत, उपनिषद और गीता जैसे उच्च दार्शनिक ग्रंथों ने मानवता, समता और आत्मबोध का संदेश दिया। किंतु इस गौरवपूर्ण परंपरा के साथ–साथ भारतीय समाज पर कुछ ऐसी सामाजिक कुरीतियों का बोझ भी रहा है, जिन्होंने उसकी आत्मा को गहरे तक आहत किया है। इनमें सबसे घातक और अमानवीय प्रथा रही है अस्पृश्यता।

अस्पृश्यता का अर्थ है ऐसा सामाजिक बहिष्कार, जिसमें किसी विशेष वर्ग या जाति को अपवित्र मानकर उनसे दूर रहने, उन्हें छूने से बचने और उन्हें सामान्य सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अधिकारों से वंचित करने की प्रवृत्ति शामिल है।यह प्रथा केवल सामाजिक अपमान तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसका दुष्प्रभाव व्यक्ति की धार्मिक स्वतंत्रता, आर्थिक अवसरों और राजनीतिक अधिकारों पर भी पड़ा। गाँवों में अस्पृश्य वर्ग को अलग बसाया गया, मंदिरों और कुओं से वंचित रखा गया, तथा उनके पेशों और जीवनशैली पर प्रतिबंध लगाए गए। यह स्थिति उन्हें सामाजिक हीनता और आर्थिक दरिद्रता की ओर धकेलती रही। यह केवल शारीरिक दूरी तक सीमित नहीं थी, बल्कि इसके परिणामस्वरूप लाखों लोगों को शिक्षा, रोजगार, धर्मस्थलों और यहाँ तक कि बुनियादी मानवीय गरिमा से भी वंचित कर दिया गया।

महात्मा गाँधी ने इस समस्या को गंभीरता से पहचाना और इसे राष्ट्र के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती माना। उनके अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ केवल अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति नहीं था, बल्कि सामाजिक विषमताओं और अमानवीय प्रथाओं से मुक्ति भी था। उन्होंने कहा कि भारत की स्वतंत्रता तब तक अधूरी है जब तक समाज का सबसे निचला वर्ग भी सम्मानपूर्वक जीवन नहीं जी सकता। गाँधीजी ने स्पष्ट कहा थाकि"जब तक अस्पृश्यता का अंत नहीं होगा, तब तक स्वराज अधूरा रहेगा।"उनके लिए स्वराज केवल अंग्रेजों से राजनीतिक मुक्ति का नाम नहीं था, बल्कि समाज में व्याप्त अन्याय, शोषण और छुआछूत से मुक्ति भी उतना ही आवश्यक था।

गाँधीजी ने अस्पृश्यता को केवल सामाजिक कुरीति नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक समस्या माना। गाँधीजी ने इसे धार्मिक अधर्म और मानवीय मूल्यों का उल्लंघन कहा।उनके अनुसार यह धर्म के विरुद्ध है, क्योंकि कोई भी धर्म मनुष्य को अपमानित करने की शिक्षा नहीं देता। उनके लिए यह अहिंसा के सिद्धांत का सबसे बड़ा अपमान था। यह मानवता के विरुद्ध है, क्योंकि यह मनुष्य की समानता और गरिमा का हनन करता है। यह राष्ट्र के विरुद्ध है, क्योंकि यह समाज को खंडित कर राष्ट्रीय एकता को नष्ट करता है।

गाँधीजी का अस्पृश्यता–उन्मूलन केवल सुधारवादी कदम नहीं था, बल्कि यह उनके संपूर्ण दर्शन का अंग था। वे मानते थे कि जब तक यह कलंक मिटाया नहीं जाएगा, तब तक भारत की आत्मा मुक्त नहीं हो सकती।इसी कारण उन्होंने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा हरिजनों (अस्पृश्य कहे जाने वाले वर्ग) के साथ बिताया, उनके सम्मान और अधिकारों की रक्षा के लिए आंदोलन किए और समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया।

यहाँ अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि गाँधीजी ने अस्पृश्यता को किस दृष्टि से देखा, इसके उन्मूलन के लिए उन्होंने कौन–कौन से कदम उठाए, उनके विचार और अंबेडकर जैसे समकालीन नेताओं के विचारों में क्या भिन्नता थी, और आज के परिप्रेक्ष्य में उनकी सोच कितनी प्रासंगिक है।

12.2 अस्पृश्यता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज का ढाँचा हजारों वर्षों से जातिगत संबंधों पर आधारित रहा है। प्रारंभिक वैदिक काल में वर्णव्यवस्था का स्वरूप अपेक्षाकृत लचीला और गुण–कर्म–आधारित था। ऋग्वेद और अन्य वैदिक ग्रंथों में चार वर्णों का उल्लेख मिलता है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये चार वर्ण समाज के विभिन्न कार्यों के अनुसार परिभाषित किए गए थे। यह व्यवस्था सामाजिक संगठन और कार्य–विभाजन के लिए उपयोगी थी। किंतु समय के साथ जब वर्ण व्यवस्था जन्माधारित हो गई, तब उसने कठोर जातिगत स्वरूप धारण कर लिया। कालांतर में अनेक उपजातियाँ बनीं और जन्म के आधार पर सामाजिक स्थिति तय होने लगी। जातिगत विभाजन का परिणाम यह हुआ कि समाज में 'शुद्ध' और 'अशुद्ध' की अवधारणा गहराई तक बैठ गई।अस्पृश्यता का उद्भव इसी जातिगत कठोरता से

हुआ।कुछ जातियों को इतना नीचा मान लिया गया कि उनके संपर्क मात्र को अपवित्र समझा जाने लगा। यही अवस्था अस्पृश्यता कहलाती है।शूद्र वर्ण से भी नीचे कुछ समुदाय ऐसे बना दिए गए जिन्हें 'अवर्ण' या 'अस्पृश्य' कहा गया।इन्हें 'अंत्यज', 'चांडाल', 'अवर्ण' आदि नामों से पुकारा गया।इन्हें समाज की मुख्यधारा से बाहर कर दिया गया।ये लोग गाँव की बस्तियों के बाहर रहते थे। कुएँ, तालाब, मंदिर और सार्वजनिक मार्ग उनके लिए निषिद्ध थे।उनका काम अक्सर मृत पशुओं को उठाना, चमड़ा उतारना या सफाई करना होता था। इस कारण उन्हें अपवित्र और तिरस्कृत माना जाता रहा।

ऐतिहासिक ग्रंथों और धर्मशास्त्रों में अस्पृश्य जातियों के लिए अनेक प्रतिबंधों का उल्लेख मिलता है। उनसे कहा गया कि वे केवल घृणित और 'अपवित्र' माने जाने वाले काम करें, जैसे चमड़ा ढोना, शव ले जाना, सफाई करना आदि। इसने उन्हें सामाजिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से दरिद्र बना दिया।

इतिहास में अस्पृश्यता का विरोध भी होता रहा। बौद्ध और जैन धर्म ने समता का संदेश दिया और जातिगत ऊँच–नीच को अस्वीकार किया। भक्ति आंदोलन के दौरान कई संतों और कवियों ने इस प्रथा का विरोध किया। मध्यकालीन संत परंपरा कबीर, रैदास, दादू, गुरु नानक आदि ने भी अस्पृश्यता की निंदा की। कबीर ने जाति–धर्म के भेदभाव को नकारा और कहा कि ईश्वर न ऊँच को मानता है न नीच को, सभी उसकी दृष्टि में समान हैं। रैदास स्वयं चर्मकार परिवार से थे और उन्होंने समानता का संदेश दिया। "मन चंगा तो कठौती में गंगा"के माध्यम से उन्होने चित्त की पवित्रता को सर्वोच्च माना। गुरु नानक ने भी ईश्वर के समक्ष सभी को समान माना। इन प्रयासों से कुछ चेतना अवश्य फैली, परंतु अस्पृश्यता की जड़ें गहरी बनी रहीं। समाज की रूढ़ियाँ इतनी कठोर थीं कि संतों के उपदेश भी इस समस्या को मिटा न सके। औपनिवेशिक काल में भी अस्पृश्यता बनी रही। अंग्रेजों ने इसका सीधा विरोध नहीं किया, बल्कि कई बार इसे बनाए रखने में ही लाभ देखा।

मध्यकाल और औपनिवेशिक काल तक आते–आते अस्पृश्यता भारतीय समाज की कठोर सच्चाई बन गई। अंग्रेजों ने प्रशासनिक और आर्थिक दृष्टि से इसका लाभ उठाया, परंतु इसे समाप्त करने का कोई गंभीर प्रयास नहीं किया। इस प्रकार, स्वतंत्रता आंदोलन के समय अस्पृश्यता भारतीय समाज की सबसे बड़ी सामाजिक समस्या बन चुकी थी।

इस प्रकार अस्पृश्यता भारतीय समाज की गहराई में पैठी हुई प्रथा बन गई। यह केवल सामाजिक ही नहीं, बल्कि धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था से भी जुड़ी थी। यही कारण है कि इसका उन्मूलन कठिन रहा। महात्मा गाँधी ने इस गहराई को समझा और इसके खिलाफ व्यापक आंदोलन छेड़ा।

12.3 गाँधीजी का दृष्टिकोण

महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज की आत्मा पर सबसे बड़ा कलंक बताया। उनके अनुसार यह प्रथा न केवल अमानवीय है बल्कि भारत की स्वतंत्रता और प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा भी है। गाँधीजी के दृ ष्टिकोण को चार स्तरों पर समझा जा सकता हैकृधार्मिक, नैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय।

12.3.1 धार्मिक दृष्टिकोण

गाँधीजी गहरे धार्मिक व्यक्ति थे, परंतु उनका धर्म संकीर्णता और भेदभाव पर नहीं, बल्कि करुणा और समता पर आधारित था। उनके अनुसार धर्म का सार सेवा और प्रेम है। अस्पृश्यता को वे धर्म के विरुद्ध मानते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि कोई भी शास्त्र यदि अस्पृश्यता को मान्यता देता है तो वह शास्त्र गलत है। उनके लिए धर्म का अर्थ था सभी मनुष्यों के साथ समानता और सम्मान का व्यवहार।

12.3.2 नैतिक दृष्टिकोण

गाँधीजी का पूरा जीवन नैतिक मूल्यों पर आधारित था। उन्होंने कहा कि अस्पृश्यता मनुष्य की गरिमा का अपमान है। गाँधीजी ने यह भी कहा कि अस्पृश्यता एक प्रकार की हिंसा है। यह अहिंसा के सिद्धांत का सीधा उल्लंघन है। जब किसी व्यक्ति को केवल उसके जन्म के कारण अपमानित और वंचित किया जाता है, तो यह अहिंसा की भावना के विपरीत है। गाँधीजी के अनुसार जो समाज अपने ही कुछ सदस्यों को अपवित्र माने, वह नैतिक दृष्टि से पतित है।

12.3.3 सामाजिक दृष्टिकोण

गाँधीजी ने देखा कि अस्पृश्यता ने समाज को दो भागों में बाँट दिया हैकृऊँचे और नीच। इससे समाज में आपसी सहयोग और भाईचारे की भावना नष्ट हो गई। उनका मानना था कि जब तक यह विभाजन समाप्त नहीं होगा, तब तक भारतीय समाज मजबूत और संगठित नहीं हो सकेगा। गाँधीजी ने सवर्ण समाज से अपील की कि वे अस्पृश्यता को त्यागें और हरिजनों को समान अधिकार दें।

12.3.4 राष्ट्रीय दृष्टिकोण

स्वराज गाँधीजी के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य था। किंतु उनका स्वराज केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं था। उनके अनुसार यदि भारत अंग्रेजों से स्वतंत्र भी हो जाए, परंतु समाज में अस्पृश्यता बनी रहे, तो यह स्वतंत्रता अधूरी और खोखली होगी। उन्होंने कहाकृ"अस्पृश्यता स्वराज के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है।" इस दृष्टि से अस्पृश्यता केवल एक सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि राष्ट्रीय समस्या थी।

इस प्रकार गाँधीजी का दृष्टिकोण बहुआयामी था। उन्होंने अस्पृश्यता को धर्म, नैतिकता, समाज और राष्ट्र—सभी दृष्टियों से गलत ठहराया और इसके उन्मूलन को जीवन का ध्येय बनाया।

महात्मा गाँधी के लिए अस्पृश्यता केवल एक सामाजिक बुराई नहीं थी, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक पतन का प्रतीक थी। गाँधीजी का मानना था कि हिंदू धर्म का सार करुणा, सेवा और समानता है। यदि हिंदू धर्म के भीतर अस्पृश्यता बनी रहती है, तो यह धर्म का नहीं बल्कि अधर्म का प्रतीक है। उन्होंने कहाकृ"यदि अस्पृश्यता धर्म का अंग है तो मैं ऐसा धर्म छोड़ना पसंद करूँगा।" मानव दृष्टि से देखें तो गाँधीजी का कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर की संतान है। जन्म के आधार पर किसी को नीचा मानना मानव गरिमा का सीधा अपमान है। गाँधीजी ने अस्पृश्य जातियों को 'हरिजन' नाम दिया। इसका अर्थ है 'ईश्वर के जन'। इस नामकरण के पीछे उनका उद्देश्य था कि जिन्हें समाज ने नीचा और अपवित्र कहा, वास्तव में वे ईश्वर के सबसे प्रिय हैं। गाँधीजी चाहते थे कि समाज उन्हें सम्मान और समान अधिकार दे। गाँधीजी ने केवल उपदेश नहीं दिए, बल्कि स्वयं अपने जीवन में अस्पृश्यता का विरोध किया। उन्होंने हरिजनों के साथ रहना स्वीकार किया, उनके घरों में भोजन किया, अपने आश्रमों में उन्हें बराबरी का स्थान दिया। वे स्वयं शौचालय साफ करते थे ताकि यह दिखा सकें कि कोई भी काम नीच या अपवित्र नहीं होता।

गाँधीजी ने राष्ट्र की दृष्टि से भी अस्पृश्यता की आलोचना की। उनके अनुसार यदि भारत स्वतंत्र होना चाहता है, तो उसे पहले आंतरिक गुलामी से मुक्त होना होगा। अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति तभी सार्थक होगी जब समाज का हर व्यक्ति समान अधिकार पाए। अस्पृश्यता राष्ट्र की एकता को तोड़ती है और स्वराज को अधूरा करती है। उनके दृष्टिकोण में यह भी स्पष्ट था कि स्वराज की परिभाषा व्यापक है। उनके अनुसारकृ"स्वराज केवल अंग्रेजों को बाहर निकालने का नाम नहीं है। यदि हमारे समाज में अस्पृश्यता बनी रही, तो स्वराज अधूरा होगा।"

उनका दृष्टिकोण सुधारवादी अवश्य था, परंतु उसमें गहरी करुणा और मानवीयता थी। वे चाहते थे कि हिंदू समाज स्वयं आत्मशुद्धि करे। उन्होंने सवर्णों से अपील की कि वे हरिजनों के साथ समानता का व्यवहार करें, उन्हें मंदिरों में प्रवेश दें, उनके साथ भोजन करें और सामाजिक मेलजोल बढ़ाएँ। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को केवल कानून या बाहरी दबाव से मिटाने की बात नहीं कही। उनका विश्वास था कि यह परिवर्तन भीतर से आए। जब सवर्ण समाज हृदय परिवर्तन करेगा, तब अस्पृश्यता का अंत होगा। उन्होंने कहाकृ"मैं कानून से ज्यादा हृदय परिवर्तन में विश्वास करता हूँ।"

गाँधीजी ने अस्पृश्यता को एक ऐसा पाप बताया जिसने हिंदू धर्म और भारतीय समाज की आत्मा को घायल कर दिया। इसे मिटाना न केवल सामाजिक सुधार था, बल्कि आत्मिक मुक्ति भी थी।

12.4 गाँधीजी के व्यावहारिक प्रयास

गाँधीजी का जीवन प्रयोग और कर्म का जीवन था। उन्होंने केवल भाषणों या लेखन में अस्पृश्यता का विरोध नहीं किया, बल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन और सामाजिक गतिविधियों में इसे मिटाने का प्रयास किया। अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए उन्होंने कई ठोस कदम उठाए।

सबसे पहले उन्होंने अपने आश्रमों को सामाजिक प्रयोगशाला बनाया। साबरमती और वर्धा आश्रमों में हरिजनों को बराबरी का स्थान दिया गया। इन आश्रमों में हरिजन परिवार सवर्णों के साथ रहते थे। जब सवर्ण आश्रमवासियों ने इसका विरोध किया, तब गाँधीजी ने स्पष्ट कहा कि बिना हरिजनों के आश्रम अधूरा है। उन्होंने स्वयं शौचालय की सफाई करके यह संदेश दिया कि कोई भी काम नीचा या अपवित्र नहीं है।

1932 में जब पूना समझौते के बाद उन्होंने अस्पृश्यता उन्मूलन का संकल्प लिया, तब हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। यह संगठन अस्पृश्यता के खिलाफ जागरूकता फैलाने और हरिजनों के उत्थान के लिए काम करता था। इस संगठन ने गाँव–गाँव जाकर अस्पृश्यता के विरुद्ध प्रचार किया। 1933 से उन्होंने हरिजन नामक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित करना शुरू किया, जिसमें वे निरंतर इस विषय पर लिखते रहे।

मंदिर प्रवेश आंदोलनों में गाँधीजी की भूमिका उल्लेखनीय रही। उन्होने इन आंदोलनों का नेतृत्व किया। उन्होंने त्रावणकोर और अन्य क्षेत्रों में हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश दिलाने के लिए आंदोलन चलाए। कुओं, तालाबों और सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग में भी उन्होंने हरिजनों के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए भी प्रयास किए।

गाँधीजी ने सवर्ण समाज से भी अपील की कि वे हरिजनों के साथ मेलजोल बढ़ाएँ। इसके लिए उन्होंने 'संपर्क अभियान' चलाया, जिसमें सवर्ण समाज को प्रेरित किया गया कि वे हरिजनों के साथ मिलकर खाएँ–पीएँ और सामाजिक मेलजोल बढ़ाएँ। उन्होंने कहा कि जब तक सवर्ण स्वयं अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं करेंगे, तब तक अस्पृश्यता नहीं मिटेगी।

12.5 गाँधीजी के अस्पृश्यता संबंधी विचारों के दार्शनिक आधार

गाँधीजी के अस्पृश्यता–उन्मूलन के प्रयास उनके गहरे दार्शनिक विश्वासों पर आधारित थे। उनका पहला आधार था अहिंसा। गाँधीजी का मानना था कि अस्पृश्यता हिंसा का सबसे वीभत्स रूप है। यह केवल शारीरिक नहीं बल्कि मानसिक और सामाजिक हिंसा है। किसी को अपमानित करना, बहिष्कृत करना और वंचित रखना अहिंसा का सीधा उल्लंघन है। किसी मनुष्य को नीचा मानना, उसके साथ भेदभाव करना, उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचानाकृयह सब हिंसा है। यदि हम अहिंसा का पालन करना चाहते हैं तो हमें अस्पृश्यता मिटानी होगी। इसलिए अस्पृश्यता का उन्मूलन अहिंसा की स्थापना का अनिवार्य अंग था।

दूसरा आधार था सत्य। गाँधीजी के लिए सत्य परम मूल्य था। वे सत्य को ईश्वर मानते थे। उनका मानना था कि सत्य यह है कि सभी मनुष्य समान हैं। अस्पृश्यता असत्य है क्योंकि यह इस मूलभूत सत्य का निषेध करती है। गाँधीजी ने कहा कि "यदि शास्त्र अस्पृश्यता को मान्यता देता है तो मैं ऐसे शास्त्र को अस्वीकार कर दूँगा।"

तीसरा आधार था सर्वोदयी दृष्टि। गाँधीजी का आदर्श था सबका कल्याण। वे मानते थे कि जब तक समाज का एक वर्ग भी पीड़ित और शोषित है, तब तक सर्वोदय संभव नहीं है। अस्पृश्यता सर्वोदयी के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा थी। अतः अस्पृश्यता–उन्मूलन सर्वोदयी दृष्टि का अनिवार्य अंग था।

चौथा आधार था धार्मिक दृष्टि। गाँधीजी ने गीता, रामायण और उपनिषदों से प्रेरणा ली। उनके अनुसार धर्म का सार सेवा, समता और करुणा है। अस्पृश्यता धर्म का अपमान है। अस्पृश्यता धर्म का नहीं बल्कि अधर्म का प्रतीक है। उन्होंने कहा कि सच्चा धर्म वही है जो सबको समान सम्मान दे।

इस प्रकार गाँधीजी का दर्शन स्पष्ट करता है कि अस्पृश्यता–उन्मूलन केवल सामाजिक सुधार नहीं था, बल्कि यह उनके संपूर्ण जीवन–दर्शन का अभिन्न अंग था।

12.6 गाँधीजी और डॉ. अंबेडकर

गाँधीजी और डॉ. भीमराव अंबेडकर दोनों अस्पृश्यता के कट्टर विरोधी थे, किंतु उनके दृष्टिकोण और रणनीति अलग–अलग थी। गाँधीजी का मानना था कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म की विकृति है, इसे दूर करके धर्म को शुद्ध किया जा सकता है। गाँधीजी इसे हिंदू समाज की आत्मशुद्धि से मिटाना चाहते थे। वे मानते थे कि हिंदू धर्म मूलतः समता और सेवा का धर्म है, और उसमें से अस्पृश्यता जैसी कुरीति को दूर किया जा सकता है। वे हिंदू धर्म के भीतर रहकर सुधार चाहते थे। उन्होंने हरिजनों को हिंदू समाज का अभिन्न अंग बताया और उनके उत्थान को राष्ट्र के उत्थान से जोड़ा।

अंबेडकर का दृष्टिकोण अलग था। उनका मानना था कि जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता हिंदू धर्म की मूल संरचना में ही बसी है। केवल सुधार से यह समाप्त नहीं होगी। जब तक हिंदू धर्म रहेगा, तब तक जाति और अस्पृश्यता भी बनी रहेगी। इसलिए उन्होंने धर्म परिवर्तन का मार्ग चुना और अंततः बौद्ध धर्म अपनाया।

1932 का पूना समझौता दोनों के संबंधों का महत्वपूर्ण मोड़ था। ब्रिटिश सरकार ने हरिजनों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की घोषणा की। अंबेडकर इसके पक्षधर थे क्योंकि उनका मानना था कि इससे हरिजनों को स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति मिलती। गाँधीजी ने इसका विरोध किया और यरवदा जेल में अनशन शुरू किया। उनका कहना था कि इससे हिंदू समाज टूट जाएगा और उसमें स्थायी विभाजन हो जाएगा। गाँधीजी ने यरवदा जेल में आमरण अनशन किया। अंततः समझौते के तहत पृथक निर्वाचन के स्थान पर अस्पृश्यों के लिए पर्याप्त आरक्षित सीटों का प्रावधान किया गया। इस प्रकार हरिजनों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिला, परंतु पृथक निर्वाचन नहीं हुआ।

यह घटना गाँधी और अंबेडकर के बीच वैचारिक टकराव का प्रतीक है। अंबेडकर ने गाँधीजी पर आरोप लगाया कि वे जाति व्यवस्था को तोड़ने में ईमानदार नहीं हैं। जबकि गाँधीजी ने अंबेडकर की आलोचना करते हुए कहा कि धर्म परिवर्तन समस्या का समाधान नहीं है। यह समझौता गाँधी और अंबेडकर दोनों के मध्य एक समन्वय स्थापित करता था। गाँधीजी ने इसे हिंदू समाज की एकता के लिए आवश्यक माना, जबकि अंबेडकर ने इसे एक व्यावहारिक समाधान के रूप में स्वीकार किया।

गाँधीजी और अंबेडकर के मतभेद उनके दृष्टिकोण की गहराई को स्पष्ट करते हैं। गाँधीजी सुधारवादी थेकृ वे हिंदू धर्म को भीतर से शुद्ध करना चाहते थे। अंबेडकर क्रांतिकारी थेकृवे हिंदू धर्म से बाहर निकलकर एक नए धर्म में समता की खोज करना चाहते थे। फिर भी यह सत्य है कि दोनों का लक्ष्य समान थाकृअस्पृश्यता का अंत और दलितों का उत्थान। गाँधीजी ने समाज की आत्मा को जगाने का प्रयास किया, जबकि अंबेडकर ने संवैधानिक और राजनीतिक अधिकारों पर जोर दिया। दोनों का लक्ष्य समान थाकृअस्पृश्यता का अंत, परंतु मार्ग अलग थे। इतिहास प्रमाण है कि इन दोनों मार्गों ने मिलकर भारतीय समाज को नई दिशा दी।

12.7 आलोचनाएँ

गाँधीजी की अस्पृश्यता–उन्मूलन संबंधी दृष्टि की आलोचनाएँ भी हुईं। कुछ विद्वानों का मानना था कि उनकी दृष्टि सुधारवादी थी, क्रांतिकारी नहीं। उन्होंने जाति व्यवस्था को पूरी तरह नकारा नहीं, बल्कि केवल अस्पृश्यता के उन्मूलन तक ही सीमित रहे।

डॉ. अंबेडकर और उनके अनुयायी मानते थे कि गाँधीजी का दृष्टिकोण अस्पृश्यों को 'दयाभाजन' के रूप में प्रस्तुत करता है, न कि उनके अधिकारों को स्वाभाविक रूप से स्वीकार करता है। उनके अनुसार गाँधीजी सवर्ण समाज को नाराज नहीं करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने अस्पृश्यता को ही केंद्र में रखा, जाति को नहीं। 'हरिजन' शब्द को भी बाद में आलोचना का सामना करना पड़ा क्योंकि इससे दलितों की स्वतंत्र पहचान दब जाती थी। कुछ आलोचकों ने यह भी कहा कि गाँधीजी ने हरिजनों को 'हरिजन' कहकर उनके अलगाव को ही बढ़ावा दिया। हालांकि गाँधीजी का उद्देश्य उन्हें सम्मानित करना था, लेकिन कई दलित नेताओं ने इसे अपमानजनक माना।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि गाँधीजी के प्रयासों ने समाज में व्यापक स्तर पर गहरी चेतना जगाई। समाज में उनकी करुणा, मानवीय दृष्टि और सतत प्रयासों ने अस्पृश्यता के खिलाफ व्यापक आंदोलन खड़ा किया। ये उनके प्रयास ही थे जिससे अस्पृश्यता भारतीय राजनीति और समाज का केंद्रीय प्रश्न बन गई।

12.7 वर्तमान प्रासंगिकता

संविधान ने अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया है। डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलितों को समान अधिकार और आरक्षण की व्यवस्था दी गई। आज अस्पृश्यता कानूनी रूप से समाप्त है, परंतु व्यवहारिक जीवन में इसके अवशेष अब भी दिखाई देते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में जातिगत भेदभाव, सामाजिक बहिष्कार और मंदिर प्रवेश जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं। शिक्षा और आर्थिक अवसरों में भी असमानता देखी जाती है। ऐसे समय में गाँधीजी की दृष्टि अब भी प्रासंगिक है। गाँधीजी का संदेश था कि अस्पृश्यता केवल कानून से नहीं, बल्कि समाज की आत्मा से मिटेगी। उन्होंने कहा था कि हृदय परिवर्तन कानून से अधिक महत्वपूर्ण है। इसके लिए सेवा, करुणा और समानता की भावना विकसित करनी होगी। जब तक समाज सेवा, करुणा और समानता के मूल्यों को आत्मसात नहीं करेगा,

तब तक अस्पृश्यता का पूर्ण अंत संभव नहीं है। यदि समाज के हर व्यक्ति को यह अनुभव हो कि सभी मनुष्य समान हैं, तभी अस्पृश्यता का वास्तविक अंत होगा। गाँधीजी की शिक्षा यह है कि समाज का सबसे निचला व्यक्ति यदि सम्मानित नहीं है, तो राष्ट्र की स्वतंत्रता अधूरी है। यह शिक्षा आज भी हमें मार्गदर्शन देती है।

12.8 निष्कर्ष

अस्पृश्यता भारतीय समाज की सबसे अमानवीय और घृणित प्रथाओं में से एक रही है, जिसने न केवल लाखों–करोड़ों लोगों को सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन से वंचित किया बल्कि पूरे राष्ट्र की आत्मा को भी आहत किया। इसने लाखों लोगों को अपमानित किया और उन्हें समाज की मुख्यधारा से बाहर कर दिया। इसने भारतीय संस्कृति की उस मूलभूत शिक्षाकृसमानता, करुणा और सहिष्णुताकृको चोट पहुँचाई जिसके बल पर भारत ने दुनिया को आध्यात्मिक नेतृत्व दिया था। महात्मा गाँधी ने इसे धर्म, नैतिकता और राष्ट्र सभी दृष्टियों से गलत ठहराया। गाँधी जी के अनुसार अस्पृश्यता मानव गरिमा और राष्ट्रीय एकता पर आघात करने वाली प्रवृत्ति थी। महात्मा गाँधी ने इसे भारत की आत्मा पर कलंक कहा और इसके उन्मूलन को अपने जीवन का एक महान ध्येय बनाया।

महात्मा गाँधी ने इस समस्या की गहराई को समझा और इसे मिटाने को अपने जीवन का एक केंद्रीय लक्ष्य बनाया। गाँधीजी का दृष्टिकोण बहुआयामी था। उनके लिए अस्पृश्यता–उन्मूलन केवल एक सामाजिक सुधार का प्रश्न नहीं था, बल्कि यह उनके संपूर्ण दर्शन का हिस्सा था। सत्य, अहिंसा और सर्वोदयी जैसे उनके मूल सिद्धांत अस्पृश्यता के साथ सह–अस्तित्व नहीं रख सकते थे। वे मानते थे कि जब तक अस्पृश्यता का अंत नहीं होगा, तब तक हिंदू धर्म अधूरा रहेगा, भारत का स्वराज अधूरा रहेगा और अहिंसा–सत्य का आदर्श भी अधूरा रहेगा।

उन्होंने अस्पृश्यता को केवल सामाजिक या आर्थिक दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि उसे नैतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी समझा। उनके अनुसार, धर्म का सार समता और सेवा है, और यदि अस्पृश्यता धर्म के नाम पर जीवित है तो वह अधर्म है। मानव दृष्टि से यह अपमानजनक है क्योंकि यह व्यक्ति की समानता और गरिमा का निषेध करती है। राष्ट्र की दृष्टि से यह घातक है क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता को तोड़ती है और स्वराज को अधूरा बनाती है।

गाँधीजी ने केवल विचार ही नहीं दिए, बल्कि जीवन और आचरण से समाज को यह संदेश दिया कि हर मनुष्य समान है और कोई भी कार्य अपवित्र नहीं है। उन्होंने हरिजनों को समाज में सम्मान दिलाने के लिए आंदोलन किए, संगठन बनाए और समाज को आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया। उन्होंने हरिजनों को अपने आश्रमों में स्थान दिया, उनके साथ निवास और भोजन किया, और स्वयं शौचालय की सफाई करके यह दिखाया कि कोई भी कार्य अपवित्र नहीं है। उनका उद्देश्य था सवर्ण समाज की आत्मा को जगाना और उन्हें यह समझाना कि अस्पृश्यता उनके धर्म और नैतिकता दोनों के विरुद्ध है।

गाँधीजी का दार्शनिक आधार भी इस संघर्ष में स्पष्ट दिखाई देता है। अहिंसा, सत्य और सर्वोदयी दृष्टि उनके विचारों की आत्मा थी। अस्पृश्यता को वे हिंसा का एक रूप मानते थे, क्योंकि यह किसी व्यक्ति को नीचा दिखाने की हिंसा है। सत्य के अनुसार सभी मनुष्य समान हैं, और अस्पृश्यता इस सत्य का निषेध है। सर्वोदयी दृष्टि के अनुसार जब तक समाज का एक भी वर्ग शोषित है, तब तक सबका कल्याण संभव नहीं है।

यद्यपि उनके दृष्टिकोण पर आलोचनाएँ भी हुईं विशेषकर डॉ. अंबेडकर और उनके अनुयायियों की ओर सेकृ फिर भी यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि गाँधीजी ने अस्पृश्यता को राष्ट्रीय विमर्श का विषय बना दिया। गाँधीजी की दृष्टि सुधारवादी थी और उन्होंने जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन की वकालत नहीं की, फिर भी उनके प्रयासों ने समाज में गहरी चेतना जगाई। अंबेडकर ने राजनीतिक और संवैधानिक अधिकारों के माध्यम से दलितों को सशक्त किया, जबकि गाँधीजी ने समाज की मानसिकता और आत्मा को बदलने का प्रयास किया। डॉ. अंबेडकर ने अधिक क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाया, किंतु गाँधीजी का योगदान यह रहा कि उन्होंने सवर्ण समाज को आत्ममंथन के लिए मजबूर किया और अस्पृश्यों में आत्मसम्मान की भावना जगाई। दोनों के दृष्टिकोण अलग थे, लेकिन लक्ष्य समान था दलितों का उत्थान और समानता की स्थापना।

आज भारतीय संविधान ने अस्पृश्यता को अपराध घोषित कर दिया है और समान अधिकार सुनिश्चित किए हैं, परंतु व्यवहारिक जीवन में इसके अवशेष अभी भी मौजूद हैं। इस स्थिति में गाँधीजी की दृष्टि और भी प्रासंगिक

हो उठती है। जब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति के भीतर सेवा, करुणा और समानता की भावना विकसित नहीं होती, तब तक कानून मात्र से अस्पृश्यता समाप्त नहीं हो सकती। उनका संदेश है कि सच्चा स्वराज तभी संभव है जब समाज का सबसे निचला व्यक्ति भी सम्मानित और सशक्त हो।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गाँधीजी का अस्पृश्यता–उन्मूलन केवल एक सामाजिक सुधार आंदोलन नहीं था, बल्कि यह उनके जीवन–दर्शन की आत्मा थी। यह एक नैतिक और दार्शनिक क्रांति थी। यह क्रांति आज भी अधूरी है और तभी पूर्ण होगी जब भारत का हर नागरिक सचेत होकर यह स्वीकार करे कि सभी मनुष्य समान हैं और सभी को सम्मान और अवसर का अधिकार है। उन्होंने दिखाया कि सामाजिक समानता के बिना न तो धर्म की सार्थकता है, न मानवता की, और न ही राष्ट्र की स्वतंत्रता की। यही गाँधीजी की दृष्टि का सार है और यही उनके दर्शन की स्थायी प्रासंगिकता भी।

11.9 बोध प्रश्न

1. अस्पृश्यता की उत्पत्ति और ऐतिहासिक विकास का वर्णन कीजिए।
2. गाँधीजी ने अस्पृश्यता को 'धर्मविरुद्ध, मानवविरुद्ध और राष्ट्रविरुद्ध' क्यों कहा?
3. गाँधीजी के अस्पृश्यता–उन्मूलन के व्यावहारिक प्रयासों पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
4. गाँधीजी और डॉ. अंबेडकर के दृष्टिकोण में अंतर स्पष्ट कीजिए।
5. आज के भारतीय समाज में गाँधीजी की अस्पृश्यता–उन्मूलन संबंधी दृष्टि की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कीजिए।

11.10 उपयोगी पुस्तकें

1. गाँधी, महात्मा. हरिजन. विभिन्न अंक (1933–1948)।
2. गाँधी, महात्मा. सत्य के प्रयोग. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
3. अंबेडकर, बी. आर. जाति का विनाश।
4. दास, वी. के. गाँधी और अस्पृश्यता. नई दिल्ली– पुस्तक महल।
5. पारेख, भिखु. Gandhi's Political Philosophy- OÛford University Press.
6. चटर्जी, सुबोध कुमार. गाँधी का दर्शन।
7. भारतीय संविधान।

खण्ड –7

महात्मा गांधी की प्रासंगिकता

खण्ड परिचय

वैश्विक परिस्थितियों और सामाजिक संकटों को देखते हुए महात्मा गाँधी प्रासंगिकता और भी बढ़ गई है। उनके विचार समय और स्थान से परे हैं क्योंकि वे मानवता, नैतिकता और शांति पर आधारित हैं। आज की दुनिया हिंसा, आतंकवाद, युद्ध और संघर्षों से जूझ रही है। गाँधी जी का अहिंसा का सिद्धांत समाज और राष्ट्रों के बीच शांति कायम करने का सबसे सशक्त हथियार है। संयुक्त राष्ट्र भी गाँधी जयंती को अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के रूप में मनाता है।

सत्य और नैतिकता पर आधारित समाज की आवश्यकता सदैव रहती है। गाँधी का सत्याग्रह हमें यह याद दिलाता है कि सत्य ही परिवर्तन का सबसे बड़ा साधन है। स्वदेशी और आत्मनिर्भरता वैश्वीकरण के दौर में भी आत्मनिर्भर भारत का नारा गाँधी के स्वदेशी विचार की ही पुर्नव्याख्या है। स्थानीय उत्पादन, कुटीर उद्योग और टिकाऊ उपभोग की ओर बढ़ना पर्यावरण और रोजगार दोनों के लिए आवश्यक है। ग्राम स्वराज और विकेंद्रीकरण की आवश्यकता बनी हुई है। गाँधी जी का मानना था कि भारत की आत्मा गांवों में बसती है। आज भी ग्रामीण विकास, पंचायत व्यवस्था और विकेंद्रीकरण की अवधारणा गाँधी के ग्राम स्वराज से ही प्रेरित है। जातिवाद, अस्पृश्यता, लैंगिक असमानता जैसी समस्याएँ आज भी मौजूद हैं। गाँधी जी ने हरिजन उत्थान, स्त्री समानता और सर्वधर्म समभाव पर जोर दिया। उनकी सोच आज भी सामाजिक सद्भाव के लिए दिशा देती है। आज जलवायु परिवर्तन और पर्यावरण संकट मानवता के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। गाँधी का विचार था "पृथ्वी हर व्यक्ति की जरूरत पूरी कर सकती है, लेकिन हर व्यक्ति के लालच को नहीं।" उनका यह दृष्टिकोण सतत विकास की नींव है। मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला जैसे नेताओं ने गाँधी के विचारों से प्रेरणा ली है। लोकतंत्र और जनआंदोलनों में गाँधी की सत्य और अहिंसा की रणनीति आज भी प्रभावशाली है।

प्रस्तुत खण्ड में गांधी के रचनात्मक कार्य और वर्तमान में प्रासंगिकता पर चर्चा की गयी है। इकाई 13 में महात्मागांधी के रचनात्मक कार्य को रेखांकित किया गया है जो आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इकाई 14 में वैश्वीकरण में महत्व शीर्षक के अन्तर्गत 21वीं सदी की विभिन्न चुनौतियों के संदर्भ में गांधी दर्शन पर चर्चा की गयी है।

इकाई 13. गाँधी के रचनात्मक कार्य

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 गाँधी दर्शन और रचनात्मक कार्य की अवधारणा

13.3 गाँधी के रचनात्मक कार्य – स्वरूप और विविधता

  13.3.1 ग्रामोन्नति और स्वदेशी

  13.3.2 अस्पृश्यता–निवारण

  13.3.3 नयी तालीम

  13.3.4 स्त्री–उत्थान

  13.3.5 स्वास्थ्य और स्वच्छता

  13.3.6 मद्यनिषेध

  13.3.7 साम्प्रदायिक सद्भाव

13.4 रचनात्मक कार्यों का व्यावहारिक रूप

13.5 गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यों का महत्त्व

13.6 दार्शनिक और सामाजिक महत्व

13.7 आलोचनात्मक विवेचन

13.8 वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

13.9 निष्कर्ष

13.10 बोध प्रश्न

13.11 उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात शिक्षार्थी –

1. गाँधी के रचनात्मक कार्यों की ऐतिहासिक एवं दार्शनिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।
2. गाँधी दर्शन और रचनात्मक कार्यों के बीच के संबंध को पहचान सकेंगे।
3. रचनात्मक कार्यों के विविध स्वरूपों का आलोचनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
4. समाज सुधार और स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में इन कार्यों की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. दार्शनिक, सामाजिक और समकालीन दृष्टि से इन कार्यों की प्रासंगिकता का मूल्यांकन कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

महात्मा गाँधी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के ऐसे महामानव थे जिन्होंने राजनीति को नैतिकता और दर्शन के साथ जोड़ा। सामान्यतः राजनीतिक संघर्ष केवल सत्ता–परिवर्तन का माध्यम होता है, परन्तु गाँधी ने इसे आत्मनिर्माण और समाज–निर्माण की प्रक्रिया बना दिया। उन्होंने कहा थाकि"स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है आत्मसंयम और आत्मशासन। "इसी आत्मसंयम और आत्मशासन की प्रक्रिया में गाँधी ने

रचनात्मक कार्यों का विशेष महत्व प्रतिपादित किया।

भारतीय समाज उस समय अनेक प्रकार की समस्याओं से जूझ रहा था। एक ओर विदेशी शासन का शोषण था, दूसरी ओर आंतरिक स्तर पर जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, स्त्रियों की दुर्दशा, मद्यपान, निरक्षरता, अस्वच्छता और गरीबी ने जनता को दुर्बल बना दिया था। गाँधी ने अनुभव किया कि यदि केवल अंग्रेजों को हटाने पर बल दिया जाएगा और इन आंतरिक समस्याओं की अनदेखी की जाएगी तो स्वतंत्र भारत भी असमान और कमजोर रहेगा।इन बुराइयों का निवारण किए बिना भारत की स्वतंत्रता अधूरी रहेगी। इसलिए उन्होंने राजनीतिक संघर्ष के साथ–साथ सामाजिक पुनर्निर्माण और नैतिक उत्थान को भी आवश्यक माना।

इसी सोच के परिणामस्वरूप गाँधी ने"रचनात्मक कार्यों"की अवधारणा विकसित की। उनके अनुसार स्वतंत्रता आंदोलन का केवल नकारात्मक पक्ष अर्थात अंग्रेजी सत्ता का विरोध पर्याप्त नहीं है। उसका सकारात्मक पक्ष समाज के भीतर रचनात्मक कार्यों के रूप में होना चाहिए।उनके अनुसार, स्वतंत्रता आंदोलन का वास्तविक आधार जनता की सक्रिय भागीदारी और उसका नैतिक जागरण है। सत्याग्रह और असहयोग जहाँ विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक उपाय थे, वहीं रचनात्मक कार्य समाज को भीतर से सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने के सकारात्मक प्रयास थे। गाँधी मानते थे कि यदि जनता आत्मनिर्भर और नैतिक होगी तो वह अपने अधिकारों के लिए साहसपूर्वक खड़ी होगी।

गाँधी के लिए रचनात्मक कार्य केवल सुधार आंदोलन नहीं थे, बल्कि वे उनके जीवन–दर्शन की अभिव्यक्ति थे। उन्होंने आश्रमों में खादी, ग्रामोद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, स्त्री–उत्थान और साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे अनेक प्रयोग किए। उनके विचार में यह सब सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक रूप थे। गाँधी के लिए रचनात्मक कार्यों का महत्व इतना था कि उन्होंने कहाकि यदि असहयोग और सत्याग्रह विनाशक शक्ति हैं, तो रचनात्मक कार्य उनका जीवनदायी पक्ष हैं।ҍ इस प्रकार रचनात्मक कार्य गाँधी दर्शन के व्यावहारिक प्रयोग थे।वे केवल आंदोलनकारी नेता नहीं थे, बल्कि सामाजिक पुनर्निर्माता भी थे।

आज जब हम गाँधी के विचारों को देखते हैं तो स्पष्ट होता है कि उनकी रचनात्मक कार्यों की दृष्टि केवल स्वतंत्रता आंदोलन की तत्कालीन आवश्यकता तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह आधुनिक समाज के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध होती है। सामाजिक न्याय, स्त्री सशक्तिकरण, ग्रामोन्मुखी विकास और पर्यावरण संरक्षण जैसी चुनौतियों के समाधान में गाँधी के रचनात्मक कार्य आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके जीवनकाल में थे।

13.2 गाँधी दर्शन और रचनात्मक कार्य की अवधारणा

गाँधी के दर्शन की मूल आधारशिलासत्य, अहिंसा और सर्वोदय है। सत्य उनके लिए जीवन का परम मूल्य था। अहिंसा उसे पाने का साधन थी और सर्वोदय, अर्थात सबका उदय, उसका अंतिम लक्ष्य। उनके लिए सत्य और अहिंसाकेवल नैतिक आदर्श नहीं थे, बल्कि जीवन–प्रणाली और सामाजिक परिवर्तन के साधन थे। गाँधी ने अपने जीवन को"सत्य और अहिंसा का प्रयोग" कहा। उनके विचार में यदि समाज को बदलना है तो वह केवल सत्ता या कानून बदलने से संभव नहीं है, बल्कि इसके लिए जनता के हृदय और जीवन–शैली में परिवर्तन लाना आवश्यक है। यही दृष्टि उनके रचनात्मक कार्यों की नींव है।

गाँधी ने अपने लेख"रचनात्मक कार्यक्रम– उसका अर्थ और स्थान"में स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता आंदोलन केवल राजनीतिक संघर्ष का नाम नहीं है। यदि हम स्वतंत्र भारत में गरीबी, अशिक्षा, अस्पृश्यता और स्त्री–दमन जैसी बुराइयों को दूर नहीं करेंगे तो स्वतंत्रता अधूरी और अर्थहीन होगी। इसलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमों को स्वतंत्रता संग्राम का पूरक नहीं, बल्कि उसका मूल आधार माना।

उनके अनुसार, स्वतंत्रता का अर्थ आत्मनिर्भरता (Self-reliance), आत्मशासन (Self-rule), नैतिक उत्थान (Moral upliftment), और सामाजिक न्याय (Social justice) है। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने का साधन रचनात्मक कार्य ही हो सकते हैं।

गाँधी मानते थे कि केवल प्रतिरोधात्मक आंदोलनों से समाज का निर्माण नहीं होता। सत्याग्रह और असहयोग अहिंसा का नकारात्मक रूप हैं, जिनका उद्देश्य अन्याय और अत्याचार का विरोध करना है। परंतु रचनात्मक कार्य अहिंसा का सकारात्मक रूप हैं, जिनका उद्देश्य प्रेम, सेवा और सहयोग के आधार पर समाज का पुनर्निर्माण करना

है। उदाहरण के लिए, यदि हम केवल विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करते हैं तो यह नकारात्मक कदम है। लेकिन जब हम खादी और ग्रामोद्योग का प्रचार करते हैं, चरखा चलाते हैं, और ग्राम–आधारित अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करते हैं, तब यह अहिंसा का सकारात्मक और रचनात्मक रूप होता है।

गाँधी ने रचनात्मक कार्यों की आवश्यकता तीन स्तरों पर बताई

1. राजनीतिक स्तर – जनता को स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ने और आत्मबल बढ़ाने के लिए।
2. सामाजिक स्तर – जाति, लिंग, धर्म आधारित भेदभाव और कुरीतियों को दूर करने के लिए।
3. दार्शनिक स्तर – सत्य और अहिंसा के मूल्यों को जीवन में स्थापित करने के लिए।

उनके अनुसार, यदि हम रचनात्मक कार्य नहीं करेंगे तो स्वतंत्र भारत केवल सत्ता–परिवर्तन तक सीमित रहेगा। गाँधी के दर्शन में सर्वोदय का अर्थ है सभी का कल्याण। उन्होंने इसे "अंत्योदय" (सबसे अंतिम और कमजोर व्यक्ति के उत्थान) से जोड़ा। रचनात्मक कार्य सर्वोदय के इस आदर्श को साकार करते हैं। अस्पृश्यता–निवारण, स्त्री–उत्थान, शिक्षा, स्वास्थ्य और ग्रामोन्नति ये सब समाज के अंतिम व्यक्ति तक न्याय पहुँचाने के साधन थे।

गाँधी के लिए रचनात्मक कार्य केवल सामाजिक सुधार नहीं थे, बल्कि वे उनके सत्य और अहिंसा दर्शन की आत्मा थे। उन्होंने इन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता का पूरक नहीं, बल्कि उसकी नींव माना। रचनात्मक कार्यों के माध्यम से गाँधी ने स्वतंत्र भारत की उस छवि की कल्पना की थी जहाँ आत्मनिर्भर ग्राम, समान समाज और नैतिक जीवन हो।

13.3 गाँधी के रचनात्मक कार्य – स्वरूप और विविधता

गाँधी के रचनात्मक कार्यों का स्वरूप अत्यंत व्यापक और बहुआयामी था। उन्होंने समाज के लगभग हर क्षेत्र में रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इनका लक्ष्य था समाज की आत्मा को शुद्ध करना, जनता में आत्मबल जगाना और स्वतंत्र भारत की ठोस नींव रखना। अपने रचनात्मक कार्यों से उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को छूने का प्रयास किया।

13.3.1 ग्रामोन्नति और स्वदेशी

गाँधी का विश्वास था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उन्होंने कहा थाकृ"भारत का भविष्य उसके गाँवों में है।" इसीलिए उन्होंने ग्रामोन्नति और स्वदेशी पर बल दिया। इसलिए उन्होंने खादी और चरखे को ग्राम स्वावलंबन का प्रतीक बनाया। चरखा केवल कपड़ा बनाने का यंत्र नहीं था, बल्कि यह श्रम, आत्मनिर्भरता और समानता का प्रतीक था। उनका मानना था कि गाँवों में छोटे–छोटे कुटीर उद्योग विकसित होंगे तो बेरोजगारी घटेगी और आत्मनिर्भरता बढ़ेगी। गाँधी ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया और खादी को राष्ट्रीय ध्वज की तरह अपनाने का आह्वान किया। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और खादी के प्रचार ने स्वतंत्रता आंदोलन को जन–आंदोलन का स्वरूप दिया। स्वदेशी का अर्थ केवल विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार नहीं था, बल्कि यह अपने गाँव और अपने समाज की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने का कार्यक्रम था।

13.3.2 अस्पृश्यता–निवारण

गाँधी ने अस्पृश्यता को भारतीय समाज की सबसे बड़ी बुराई माना। उन्होंने अस्पृश्यता को 'ईश्वर और मानव दोनों के प्रति अपराध' कहा। उन्होंने हरिजन आंदोलन चलाया, हरिजनों को मंदिर प्रवेश का अधिकार दिलाने का प्रयास किया, आश्रमों में जातिगत भेदभाव समाप्त किया और 'हरिजन' नामक पत्रिका प्रकाशित कर उन्होंने इस प्रश्न पर राष्ट्रीय चेतना जगाई। गाँधी स्वयं दलित बस्तियों में जाकर सेवा करते थे और उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाने का प्रयास करते थे। उनके प्रयासों ने समाज में समानता और सामाजिक न्याय की चेतना जगाई।

13.3.3 नयी तालीम

गाँधी का मानना था कि शिक्षा केवल बौद्धिक प्रशिक्षण नहीं है, बल्कि यह जीवन का निर्माण है। गाँधी का विश्वास था कि केवल पुस्तकीय शिक्षा से समाज नहीं बदलता। उन्होंने शिक्षा को उत्पादक कार्य और श्रम से जोड़ने की संकल्पना प्रस्तुत की, जिसे "नयी तालीम" कहा गया। नयी तालीम के निम्न प्रमुख अंग थे–

- शिक्षा मातृभाषा में हो।
- शिक्षा जीवनोपयोगी हो और बच्चों को आत्मनिर्भर बनाए।
- शिक्षा में नैतिकता और सेवा की भावना का समावेश हो।
- इस प्रयोग का केंद्र वर्धा में स्थापित विद्यालय बने।

13.3.4 स्त्री–उत्थान

गाँधी ने भारतीय स्त्रियों को स्वतंत्रता आंदोलन में अभूतपूर्व स्थान दिया। गाँधी ने स्त्रियों को केवल गृहस्थी तक सीमित न मानकर उन्हें स्वतंत्रता आंदोलन का सक्रिय सहभागी बनाया। उन्होंने कहा अहिंसा की शक्ति स्त्रियों में अधिक है। उन्होंने पर्दा प्रथा, बाल विवाह और दहेज जैसी कुरीतियों का विरोध किया। उनके लिए स्त्रियाँ शक्ति और साहस का प्रतीक थीं। उन्होंने कहा "स्त्री पुरुष की दासी नहीं, उसकी सहयोगिनी है।" स्त्रियों को शिक्षा और स्वावलंबन दिलाने के लिए उन्होंने अनेक प्रयास किए।

13.3.5 स्वास्थ्य और स्वच्छता

गाँधी का विश्वास था कि स्वराज की नींव स्वास्थ्य और स्वच्छता में है। गाँधी ने स्वच्छता को ईश्वर–भक्ति के बराबर माना। उन्होंने आश्रमों में शौचालय की सफाई सभी के लिए अनिवार्य की। उन्होंने स्वयं झाड़ू लगाकर गाँवों को स्वच्छ बनाने का उदाहरण प्रस्तुत किया। उनका मानना था कि अशिक्षा और अस्वच्छता भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। उन्होंने सरल आहार, व्यायाम, प्राकृतिक चिकित्सा और नशा–मुक्त जीवन पर बल दिया।

13.3.6 मद्यनिषेध

मद्यनिषेध, तंबाकू–निषेध और सादा जीवन गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम के अंग थे। उन्होंने मद्यपान को समाज की नैतिकता और स्वास्थ्य दोनों के लिए घातक बताया। उन्होंने अनेक राज्यों में शराबबंदी आंदोलन चलाया। उनका मानना था कि यदि समाज नशा–मुक्त होगा तो उसमें आत्मबल और नैतिकता का विकास होगा।

13.3.7 साम्प्रदायिक सद्भाव

गाँधी ने कहा मेरे लिए सभी धर्म सत्य के विविध रूप हैं। गाँधी के लिए सभी धर्मों का समान सम्मान आवश्यक था। उन्होंने कहा "मेरा धर्म मुझे सभी धर्मों का आदर करना सिखाता है।" उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए अनेक आंदोलन चलाए। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता, धार्मिक सहिष्णुता और अंतर–धार्मिक संवाद पर बल दिया। उनके लिए अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा का त्याग नहीं था, बल्कि धार्मिक सहिष्णुता और परस्पर सहयोग की स्थापना भी था।

इस प्रकार गाँधी के रचनात्मक कार्य केवल एक क्षेत्र तक सीमित नहीं थे। उन्होंने ग्रामोन्नति, खादी, अस्पृश्यता–निवारण, शिक्षा, स्त्री–उत्थान, स्वास्थ्य, स्वच्छता, मद्यनिषेध और साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे क्षेत्रों में व्यापक कार्यक्रम प्रस्तुत किए। ये सभी मिलकर एक ऐसे समाज की रचना करते हैं जो आत्मनिर्भर, समान और नैतिक हो।

13.4 रचनात्मक कार्यों का व्यावहारिक रूप

गाँधी केवल विचारक या दार्शनिक ही नहीं थे, वे प्रयोगधर्मी कर्मयोगी भी थे। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने जो कुछ सोचा, उसे अपने आचरण और प्रयोगों के माध्यम से साकार करने का प्रयास किया। यही कारण है कि उनके रचनात्मक कार्य केवल सिद्धांत तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे समाज में व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष दिखाई दिए।

गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों की सबसे बड़ी प्रयोगशालाएँ उनके आश्रम थे। उन्होंने आश्रम जीवन और जन–आंदोलनों के माध्यम से इसे मूर्त रूप दिया। 1915 में स्थापित साबरमती आश्रम और बाद में वर्धा आश्रम ने इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन आश्रमों में उन्होंने खादी, ग्रामोद्योग, शिक्षा, स्वच्छता, सामूहिक श्रम, स्त्री–पुरुष समानता और अस्पृश्यता–निवारण जैसे अनेक प्रयोग किए। आश्रम का प्रत्येक सदस्य श्रम, सादगी और

आत्मनिर्भरता के नियमों का पालन करता था। यह आश्रम केवल रहने का स्थान नहीं था, बल्कि एक आदर्श जीवन–शैली का नमूना था।

गाँधी ने चरखा और खादी आंदोलन को व्यावहारिक रूप देने के लिए हर घर में चरखा पहुँचाने का अभियान चलाया। वे स्वयं चरखा कातते थे और अपने अनुयायियों को भी प्रेरित करते थे। खादी को केवल वस्त्र नहीं, बल्कि स्वावलंबन और राष्ट्रीय गौरव का प्रतीक माना गया। कांग्रेस अधिवेशनों में खादी का प्रचार होता और विदेशी वस्त्रों की होली जलाकर जनता में आत्मनिर्भरता का संदेश दिया जाता।

इसी प्रकार अस्पृश्यता–निवारण के लिए गाँधी ने केवल भाषण नहीं दिए, बल्कि स्वयं दलित बस्तियों में जाकर रहना, उनकी बस्तियों की सफाई करना और उन्हें मंदिर प्रवेश दिलाने का प्रयास करना उनके जीवन का हिस्सा था। उन्होंने हरिजन नामक पत्रिका प्रकाशित की और इसे पूरे भारत में फैलाया। उनके नेतृत्व में मंदिर प्रवेश आंदोलन हुए जिनसे समाज में चेतना जागी।

शिक्षा के क्षेत्र में वर्धा में 'नयी तालीम' के विद्यालय खोले गए। यहाँ बच्चों को हाथ के काम और उत्पादन के साथ शिक्षा दी जाती थी। गाँधी स्वयं इस शिक्षा पद्धति का निरीक्षण करते और बच्चों के बीच बैठकर उनसे संवाद करते थे।

स्वच्छता और स्वास्थ्य के लिए गाँधी ने व्यावहारिक दृष्टांत प्रस्तुत किए। वे कहते थे कि स्वच्छता केवल दूसरों का कार्य नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है। वे स्वयं झाड़ू लगाते, शौचालय की सफाई करते और लोगों को भी इसके लिए प्रेरित करते। उनके जीवन के इन छोटे–छोटे कार्यों ने जनता पर गहरा प्रभाव डाला।

मद्यनिषेध के लिए गाँधी ने व्यापक जनांदोलन चलाए। कई प्रांतों में शराब की दुकानों के बहिष्कार के लिए सत्याग्रह हुए। गाँधी मानते थे कि मद्यपान समाज की नैतिकता और आर्थिक स्थिति दोनों को कमजोर करता है।

साम्प्रदायिक सद्भाव को व्यावहारिक रूप देने के लिए गाँधी ने धार्मिक सहिष्णुता का मार्ग अपनाया। उनके आश्रम में प्रार्थना के समय गीता, कुरान, बाइबल और अन्य धर्मग्रंथों के अंश पढ़े जाते थे। उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए बार–बार प्रयास किए, यहाँ तक कि अपनी जान जोखिम में डालकर भी दंगों को रोकने का प्रयास किया।

इन सभी कार्यों से स्पष्ट है कि गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम केवल विचारधारा नहीं थे, बल्कि वे समाज में प्रत्यक्ष रूप से अमल किए गए प्रयोग थे। इसी प्रयोगधर्मिता ने गाँधी को केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि युगनिर्माता बना दिया।

13.5 गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यों का महत्त्व

गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यों का स्थान अत्यंत केंद्रीय और मूलभूत है। गाँधी ने स्पष्ट किया था कि सत्याग्रह और असहयोग जैसे आंदोलन समाज में अस्थायी उत्साह पैदा कर सकते हैं, परंतु स्थायी परिवर्तन केवल रचनात्मक कार्यों से ही संभव है। गाँधी का मानना था कि यदि समाज आंतरिक रूप से शुद्ध और संगठित नहीं होगा, तो राजनीतिक स्वतंत्रता केवल सत्ता परिवर्तन बनकर रह जाएगी। रचनात्मक कार्य समाज को नैतिक, आत्मनिर्भर और न्यायपूर्ण बनाने का साधन हैं।

गाँधी दर्शन में सत्य, अहिंसा और सर्वोदय तीनों का वास्तविक प्रयोग रचनात्मक कार्यों में दिखता है। उदाहरण के लिए, अस्पृश्यता–निवारण सत्य और न्याय का प्रतीक है, खादी और ग्रामोन्नति अहिंसा और आत्मनिर्भरता का प्रतीक हैं, और स्त्री–उत्थान तथा साम्प्रदायिक सद्भाव सर्वोदय का प्रतीक हैं। गाँधी के लिए अहिंसा केवल नकारात्मक शक्ति नहीं थी, बल्कि यह रचनात्मक शक्ति है। सत्याग्रह और असहयोग उसके प्रतिरोधात्मक रूप हैं, जबकि रचनात्मक कार्य उसका सकारात्मक रूप हैं।

गाँधी के अनुसार, रचनात्मक कार्य तीन स्तरों पर महत्त्वपूर्ण हैंकृव्यक्तिगत स्तर, सामाजिक स्तर और दार्शनिक स्तर।व्यक्तिगत स्तर पर ये कार्य मनुष्य को आत्मनिर्भर और नैतिक बनाते हैं। जब कोई व्यक्ति चरखा चलाता है, अपने हाथ से श्रम करता है, सादगी अपनाता है और स्वच्छता बनाए रखता है, तो वह अपने जीवन में आत्मसंयम और सेवा की भावना विकसित करता है। गाँधी के लिए यह आत्मशोधन का मार्ग था।

सामाजिक स्तर पर रचनात्मक कार्य समाज में समानता और सहयोग की भावना जगाते हैं। अस्पृश्यता–निवारण, स्त्री–उत्थान, साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे कार्यक्रमों से समाज की विभाजक दीवारें टूटती हैं और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण होता है। गाँधी ने बार–बार कहा कि "स्वराज का अर्थ हैकृसबके लिए समान अधिकार और सम्मान।"

दार्शनिक स्तर पर रचनात्मक कार्य सत्य और अहिंसा के व्यावहारिक रूप हैं। गाँधी के लिए अहिंसा केवल हिंसा का त्याग नहीं, बल्कि सकारात्मक प्रेम और सेवा की शक्ति है। रचनात्मक कार्यों के माध्यम से यह प्रेम और सेवा समाज में साकार होता है। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति अस्पृश्य बस्ती में जाकर सेवा करता है, या जब कोई स्त्री स्वतंत्रता आंदोलन में समान अधिकार से भाग लेती है, तो यह अहिंसा और सत्य का ही जीवन्त रूप है।

गाँधी ने रचनात्मक कार्यों को स्वतंत्रता आंदोलन की आत्मा माना। उनका मानना था कि यदि हम केवल अंग्रेजों को हटाने पर बल देंगे और समाज की बीमारियों की अनदेखी करेंगे, तो स्वतंत्रता खोखली होगी। इसलिए उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम को राजनीतिक संघर्ष से भी अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने कहाकृ"यदि मेरे पास केवल एक दिन का जीवन शेष हो और मुझे यह चुनना हो कि सत्याग्रह करूँ या रचनात्मक कार्य, तो मैं रचनात्मक कार्य को चुनूँगा।"

गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्य सर्वोदय के आदर्श को साकार करते हैं। सर्वोदय का अर्थ हैकृसबका कल्याण। यह तभी संभव है जब समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति भी सम्मान और अधिकार पाए। रचनात्मक कार्य इसी लक्ष्य को साधने का साधन हैं।

इस प्रकार गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्य केवल साधन नहीं, बल्कि स्वराज और सर्वोदय की प्राप्ति का अनिवार्य मार्ग हैं। इन्हीं के माध्यम से गाँधी का सत्य और अहिंसा व्यावहारिक जीवन में उतरता है। इस प्रकार गाँधी दर्शन के लिए रचनात्मक कार्य अनिवार्य हैं। वे इसे केवल सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि धर्म और अध्यात्म की साधना मानते थे।

13.6 दार्शनिक और सामाजिक महत्व

गाँधी के रचनात्मक कार्यों का महत्व दार्शनिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर गहरा है। दार्शनिक स्तर पर ये कार्य गाँधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों की मूर्त अभिव्यक्ति हैं। सत्य के लिए केवल भाषण नहीं, बल्कि जीवन की सत्यनिष्ठा आवश्यक है। अहिंसा केवल हिंसा का त्याग नहीं, बल्कि प्रेम, करुणा और सहयोग का व्यवहार है। रचनात्मक कार्यों के माध्यम से गाँधी ने इन सिद्धांतों को समाज में लागू किया। उदाहरण के लिए, अस्पृश्यता–निवारण केवल सामाजिक सुधार नहीं था, बल्कि यह सत्य और अहिंसा की माँग थी कि हर मनुष्य को समान मान्यता मिले।

गाँधी के रचनात्मक कार्यों में "कर्मयोग" की भावना भी निहित थी। गीता के कर्मयोग से प्रेरित होकर गाँधी मानते थे कि समाज की सेवा ही धर्म है। चरखा कातना, गाँवों में सफाई करना, स्त्रियों और दलितों की सेवा करनाकृये सब उनके लिए साधना और उपासना के कार्य थे।

सामाजिक महत्व की दृष्टि से गाँधी के रचनात्मक कार्यों ने भारतीय समाज की दिशा बदलने का प्रयास किया। जातिगत भेदभाव, स्त्री–दमन और अशिक्षा जैसी समस्याओं के समाधान के लिए गाँधी के कार्यक्रमों ने जनता में जागृति लाई। उनका सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन को केवल नेताओं का आंदोलन न रहने देकर उसे आम जनता के जीवन से जोड़ दिया।

ग्रामोन्नति और स्वदेशी के माध्यम से उन्होंने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। यह दृष्टि आज के सतत विकास के विचार से मेल खाती है। गाँधी मानते थे कि गाँव आत्मनिर्भर होंगे तो पूरा देश मजबूत होगा।

स्वच्छता और स्वास्थ्य पर उनका बल सामाजिक जीवन की गुणवत्ता को सुधारने की दिशा में था। उन्होंने कहा थाकृ"स्वराज की नींव सफाई में है।" आज भी जब हम स्वच्छ भारत अभियान की बात करते हैं तो उसकी जड़ें गाँधी के इन्हीं रचनात्मक कार्यों में दिखाई देती हैं।

स्त्री–उत्थान और साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे कार्यों ने समाज को न्यायपूर्ण और समतामूलक बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। गाँधी ने स्त्रियों को राष्ट्रीय जीवन में अग्रणी बनाया और उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने का प्रयास किया। इसी प्रकार उन्होंने धर्मों के बीच आपसी सम्मान और संवाद को प्रोत्साहित किया।

संक्षेप में, गाँधी के रचनात्मक कार्य दार्शनिक स्तर पर सत्य और अहिंसा की अभिव्यक्ति हैं और सामाजिक स्तर पर समानता, न्याय, स्वावलंबन और सहयोग की नींव रखते हैं। यही कारण है कि वे केवल स्वतंत्रता आंदोलन की रणनीति नहीं थे, बल्कि मानव जीवन और समाज के लिए शाश्वत मूल्य बन गए।

13.7 आलोचनात्मक विवेचन

गाँधी के रचनात्मक कार्यों की व्यापक सराहना हुई, परंतु इनके संदर्भ में अनेक आलोचनाएँ भी सामने आईं। आलोचकों का एक बड़ा वर्ग मानता है कि गाँधी का रचनात्मक कार्यक्रम अत्यधिक आदर्शवादी था और यथार्थ जीवन की जटिलताओं से मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए, चरखे और खादी के माध्यम से औद्योगिकरण की चुनौती का सामना करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं था। भारत जैसे विशाल देश के आर्थिक उत्थान के लिए केवल हस्तकला और ग्रामोद्योग पर्याप्त नहीं हो सकते थे।

कुछ आलोचकों का कहना है कि गाँधी के रचनात्मक कार्यों ने समाज की बुनियादी संरचना को चुनौती नहीं दी। अस्पृश्यता–निवारण के प्रयास महत्त्वपूर्ण थे, परंतु उन्होंने जाति व्यवस्था को पूरी तरह अस्वीकार नहीं किया। इसी प्रकार स्त्री–उत्थान में भी उनका दृष्टिकोण कुछ सीमित रहा, क्योंकि वे स्त्रियों की मुख्य भूमिका घर–परिवार में ही मानते थे।

मार्क्सवादी आलोचकों ने गाँधी के कार्यक्रमों को साम्राज्यवाद–विरोधी संघर्ष को कमजोर करने वाला बताया। उनके अनुसार, रचनात्मक कार्य जनता को क्रांतिकारी संघर्ष से भटकाकर सुधारवादी दिशा में ले जाते थे। वे मानते थे कि अंग्रेजों को हटाने के लिए वर्ग–संघर्ष और कठोर राजनीतिक आंदोलन आवश्यक था, जबकि गाँधी जनता को स्वावलंबन और सुधार की ओर मोड़ रहे थे।

इसके अतिरिक्त, यह भी कहा गया कि गाँधी का ग्रामकेंद्रित दृष्टिकोण आधुनिक औद्योगिक विकास की आवश्यकताओं के विपरीत था। स्वतंत्रता के बाद भारत ने जिस प्रकार औद्योगिकीकरण और वैज्ञानिक प्रगति का मार्ग चुना, उसमें गाँधी के ग्रामोद्योग की प्रासंगिकता सीमित हो गई।

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि इन आलोचनाओं के बावजूद गाँधी के रचनात्मक कार्यों का महत्व कम नहीं होता। उनकी सीमाएँ उनके ऐतिहासिक संदर्भ से जुड़ी थीं, परंतु उनकी मूल भावना आत्मनिर्भरता, समानता, अहिंसा और नैतिकता आज भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

13.8 वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

गाँधी के रचनात्मक कार्य आज के समय में भी गहरी प्रासंगिकता रखते हैं। आज जब दुनिया उपभोक्तावाद, पर्यावरण संकट और सामाजिक असमानताओं से जूझ रही है, तब गाँधी के रचनात्मक कार्य और अधिक प्रासंगिक हो जाते हैं।

आज जब विकास की दौड़ ने गाँवों को उपेक्षित कर दिया है, तब गाँधी का ग्रामस्वराज और ग्रामोन्नति का विचार हमें आत्मनिर्भर गाँव बनाने की प्रेरणा देता है। 'वोकल फॉर लोकल' और सस्टेनेबल डेवेलपमेंट जैसी नीतियों की जड़ें गाँधी के ग्रामोद्योग और खादी आंदोलन में देखी जा सकती हैं।

साम्प्रदायिक तनाव और सामाजिक विभाजन आज भी भारतीय समाज के लिए चुनौती हैं। गाँधी का साम्प्रदायिक सद्भाव और हर धर्म के प्रति सम्मान का दृष्टिकोण आज पहले से अधिक आवश्यक है।

महिलाओं की शिक्षा, अधिकार और समानता की दिशा में आज भले ही प्रगति हुई हो, परंतु स्त्री हिंसा, भेदभाव और असमानता की समस्याएँ अभी भी मौजूद हैं। गाँधी का स्त्री–उत्थान और नारी गरिमा पर बल इस दिशा में प्रेरक है।

पर्यावरण संकट की दृष्टि से भी गाँधी का सादा जीवन, संयम और प्रकृति के साथ संतुलन बनाने का

आदर्श बहुत महत्त्वपूर्ण है। उपभोक्तावादी संस्कृति और असीमित भोगवादी प्रवृत्ति को गाँधी का विचार चुनौती देता है और हमें 'जरूरत के अनुसार उपभोग' का सिद्धांत सिखाता है।

इस प्रकार गाँधी के रचनात्मक कार्य केवल इतिहास का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि आज की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करने वाली प्रेरणा हैं।

13.9 निष्कर्ष

गाँधी के रचनात्मक कार्य उनके दर्शन का जीवंत और व्यावहारिक पक्ष हैं। सत्य, अहिंसा, आत्मनिर्भरता और सर्वोदय जैसे उनके दार्शनिक सिद्धांत इन्हीं कार्यों के माध्यम से समाज में साकार हुए। गाँधी ने स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता केवल राजनैतिक सत्ता प्राप्ति नहीं है, बल्कि यह आत्मनिर्माण और सामाजिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है।

उनके रचनात्मक कार्यक्रमों में खादी, ग्रामोद्योग, नयी तालीम, अस्पृश्यता–निवारण, स्त्री–उत्थान, साम्प्रदायिक सद्भाव, स्वच्छता, मद्यनिषेध और ग्रामस्वराज जैसी विविध योजनाएँ सम्मिलित थीं। इन सबका लक्ष्य थाकृव्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाना, समाज को समानता और सहयोग पर आधारित करना, और राष्ट्र को नैतिक शक्ति से संपन्न करना।

यद्यपि इन कार्यों के प्रति आलोचनाएँ भी हुईं जैसे कि उनका ग्रामकेंद्रित दृष्टिकोण आधुनिक औद्योगिकीकरण से मेल नहीं खाता, या उनका कार्यक्रम आदर्शवादी है फिर भी उनकी मूल भावना समयातीत है। आज जब हम वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, पर्यावरण संकट और सामाजिक विभाजन की समस्याओं का सामना कर रहे हैं, तब गाँधी की सोच और भी प्रासंगिक प्रतीत होती है।

गाँधी ने यह दिखाया कि स्थायी परिवर्तन केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन से नहीं होता, बल्कि वह तभी संभव है जब व्यक्ति और समाज दोनों भीतर से मजबूत और नैतिक बनें। यही रचनात्मक कार्यों का वास्तविक संदेश है।

अंततः, गाँधी का यह योगदान है कि उन्होंने राजनीति को नैतिकता और सेवा से जोड़ा और स्वतंत्रता आंदोलन को रचनात्मक सामाजिक कार्यक्रमों के साथ एकीकृत किया। उनके रचनात्मक कार्य हमें सिखाते हैं कि वास्तविक स्वराज तभी संभव है जब हर व्यक्ति आत्मनिर्भर, हर समाज न्यायपूर्ण और हर राष्ट्र नैतिकता पर आधारित हो। यही गाँधी के रचनात्मक कार्यों की सार्वकालिक प्रासंगिकता है।

13.10 बोध प्रश्न

1. गाँधी के अनुसार स्वतंत्रता केवल राजनीतिक सत्ता परिवर्तन क्यों नहीं है?
2. गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यों की संकल्पना पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
3. गाँधी दर्शन में रचनात्मक कार्यों का दार्शनिक महत्व बताइए।
4. गाँधी द्वारा संचालित प्रमुख रचनात्मक कार्य कौन–कौन से थे? उनके स्वरूप और विविधता पर प्रकाश डालिए।
5. गाँधी के रचनात्मक कार्यों के विविध आयामों का विवेचन कीजिए।
6. गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप देने के प्रयासों पर चर्चा कीजिए।
7. गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों के दार्शनिक और सामाजिक महत्व का विवेचन कीजिए।
8. गाँधी के रचनात्मक कार्यों की सीमाओं और आलोचनाओं का विश्लेषण कीजिए।
9. आज के भारतीय समाज और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में गाँधी के रचनात्मक कार्य कितने प्रासंगिक हैं?
10. अपने शब्दों में निष्कर्ष दीजिए कि गाँधी के रचनात्मक कार्य आज के विद्यार्थियों और समाज के लिए किस प्रकार प्रेरणादायी हो सकते हैं।

13.11 उपयोगी पुस्तकें

1. गाँधी, महात्मा.रचनात्मक कार्यक्रम – उसका अर्थ और स्थान. नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
2. गाँधी, महात्मा.हिंद स्वराज।
3. गोखले, गोपाल कृष्ण.गाँधी एंड हिज थॉट।
4. रामनाथ शर्मा.महात्मा गाँधी – जीवन और विचार. नई दिल्ली।
5. तेंडुलकर, डी.जी.महात्मा– लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गाँधी।
6. पी.एन. मधुक.गाँधी का राजनीतिक दर्शन. दिल्ली – मोतीलाल बनारसीदास।
7. धवन, जी.एन.द पॉलिटिकल फिलॉसफी ऑफ महात्मा गाँधी।
8. कृष्णकुमार, रमेश.गाँधी और उनका दर्शन. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
9. मिश्रा, रामशरण.गाँधीवाद और सामाजिक पुनर्निर्माण।
10. Parekh' Bhikhu- Gandhi*s Political Philosophy- Macmillan-
11. Dalton' Dennis- Mahatma Gandhi: Nonviolent Power in Action- Columbia University Press-
12. Brown, Judith- Gandhi: Prisoner of Hope- Yale University Press-
13. Joshi' V-C- (ed-)- Rethinking Gandhi and Nonviolent Relationality-
14. Parel' Anthony J- Gandhi's Philosophy and the Quest for Harmony-

इकाई 14. वैश्वीकरण में महत्त्व

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 वैश्वीकरण – संकल्पना और परिप्रेक्ष्य

14.2.1 वैश्वीकरण की संकल्पना

14.2.2 वैश्वीकरण का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

14.2.3 वैश्वीकरण का सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

14.2.4 वैश्वीकरण का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

14.2.5 वैश्वीकरण का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य

14.2.6 वैश्वीकरण – अवसर और संकट

14.3 गाँधी दर्शन की मूल अवधारणाएँ

14.3.1 सत्य

14.3.2 अहिंसा

14.3.3 ट्रस्टीशिप सिद्धांत

14.3.4 ग्रामस्वराज

14.3.5 स्वदेशी और आत्मनिर्भरता

14.3.6 सर्वधर्म समभाव

14.4 वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

14.4.1 आर्थिक चुनौतियाँ

14.4.2 सामाजिक चुनौतियाँ

14.4.3 सांस्कृतिक चुनौतियाँ

14.4.4 राजनीतिक चुनौतियाँ

14.4.5 पर्यावरणीय चुनौतियाँ

14.4.6 नैतिक और आध्यात्मिक चुनौतियाँ

14.5 वैश्वीकरण के संदर्भ में गाँधी दर्शन का पुनर्पाठ

14.5.1 आर्थिक असमानता और ट्रस्टीशिप का पुनर्पाठ

14.5.2 उपभोक्तावाद और स्वदेशी का पुनर्पाठ

14.5.3 सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और सर्वधर्म समभाव का पुनर्पाठ

14.5.4 हिंसा और संघर्ष के दौर में अहिंसा का पुनर्पाठ

14.5.5 केंद्रीकरण की प्रवृत्ति और ग्रामस्वराज का पुनर्पाठ

14.5.6 पर्यावरणीय संकट और गाँधी का सरल जीवन

14.5.7 नैतिकता और राजनीति का पुनर्पाठ

14.6 गाँधी दर्शन और वैकल्पिक वैश्वीकरण

14.6.1 वैश्वीकरण के मानवीकरण की दिशा में गाँधी

14.6.2 ग्रामस्वराज और स्थानीय स्वावलंबन

14.6.3 स्वदेशी और टिकाऊ उपभोग

14.6.4 ट्रस्टीशिप और आर्थिक न्याय

14.6.5 अहिंसा और वैश्विक शांति

14.6.6. सर्वधर्म समभाव और सांस्कृतिक बहुलता

14.7 समकालीन विमर्श – गाँधी और वैश्विक परिप्रेक्ष्य

14.7.1 गाँधी और शांति विमर्श

14.7.2 गाँधी और पर्यावरणीय विमर्श

14.7.3 गाँधी और विकास विमर्श

14.7.4 गाँधी और नारीवादी विमर्श

14.7.5 गाँधी और वैश्विक न्याय

14.7.6 गाँधी और शिक्षा विमर्श

14.8 निष्कर्ष

14.9 बोध प्रश्न

14.10 उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी

1. वैश्वीकरण की संकल्पना, विशेषताओं और चुनौतियों को गहराई से समझ सकेंगे।
2. गाँधी दर्शन की मूल अवधारणाओं – सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, ग्रामस्वराज, ट्रस्टीशिप आदि को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित कर पाएँगे।
3. वैश्वीकरण के युग में गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता और उसके नैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक निहितार्थों को समझ पाएँगे।
4. वैश्विक संकटों – पर्यावरण, असमानता, सांस्कृतिक क्षरण और राजनीतिक असुरक्षा – का समाधान गाँधी के दृष्टिकोण से खोज पाएँगे।
5. वैकल्पिक वैश्वीकरण की संकल्पना को गाँधी विचार से जोड़ सकेंगे।
6. समकालीन विमर्श में गाँधी के वैश्विक प्रभाव को पहचान पाएँगे।

14.1 प्रस्तावना

मानव सभ्यता का इतिहास निरंतर परिवर्तन और विकास का इतिहास रहा है। आदिम युग से लेकर आज के उत्तर–आधुनिक युग तक मानव समाज ने अनेक उतार–चढ़ाव देखे हैं। औद्योगिक क्रांति, विज्ञान और तकनीक का तीव्र विकास, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का उदय तथा संचार–माध्यमों का विस्तार – इन सबने मिलकर दुनिया को एक नए दौर में प्रवेश कराया, जिसे हम आज वैश्वीकरण के नाम से जानते हैं। इस वैश्वीकरण ने जहाँ एक ओर देशों की सीमाओं को व्यावहारिक रूप से अप्रासंगिक बना दिया है और पूरी दुनिया को एक ष्लोबल विलेजष में

परिवर्तित कर दिया है, वहीं दूसरी ओर इसने अनेक गहरे संकट भी उत्पन्न किए हैं।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि विकास की चमकदार इमारतें और तकनीकी उपलब्धियों के बावजूद मनुष्य का जीवन असुरक्षा, असमानता और असंतोष से भरा हुआ है। भौतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद नैतिक मूल्यों का क्षरण, हिंसा का प्रसार, पर्यावरण का संकट, सांस्कृतिक अस्मिता का ह्रास और पूँजीवादी लालच ने एक गंभीर प्रश्न खड़ा कर दिया है – क्या यही प्रगति है जिसकी हम आकांक्षा करते थे? वैश्वीकरण के इस दौर में जीवन का अर्थ वस्तुओं की खपत और उपभोग में सीमित होता जा रहा है। इस परिस्थिति में महात्मा गाँधी का दर्शन एक ऐसे ध्रुवतारे के रूप में उभरकर सामने आता है, जो मानवता को नई दिशा देने में सक्षम है।

महात्मा गाँधी केवल एक राजनेता नहीं थे, बल्कि एक गहन दार्शनिक, नैतिक विचारक और समाज–सुधारक भी थे। उन्होंने अपने जीवन और विचारों के माध्यम से यह दिखाया कि आधुनिक सभ्यता की जटिलताओं और संकटों का समाधान केवल राजनीतिक या आर्थिक स्तर पर नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर खोजा जाना चाहिए। गाँधी ने अपने ग्रंथ हिन्द स्वराज्य में जिस आधुनिक सभ्यता की आलोचना की थी, आज वही आलोचना और अधिक सार्थक प्रतीत होती है। उन्होंने कहा था कि पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता ने मनुष्य को मशीन का दास बना दिया है, और उसका वास्तविक विकास केवल भौतिक संपत्ति के इर्द–गिर्द सिमट गया है। गाँधी के लिए प्रगति का अर्थ था – मनुष्य की नैतिक उन्नति, समाज का न्यायपूर्ण संगठन और प्रकृति के साथ सामंजस्य।

आज जब वैश्वीकरण ने विकास को केवल आर्थिक वृद्धि, उत्पादन और उपभोग के संदर्भ में परिभाषित कर दिया है, तब गाँधी का यह दृष्टिकोण अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है। ऐसे समय में जब पूरी दुनिया विकास और प्रगति के नाम पर मानवीय संवेदनाओं को भूलती जा रही है, गाँधी का दर्शन हमें एक वैकल्पिक मार्ग दिखाता है। गाँधी का चिंतन केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने पूरी दुनिया को गहरे स्तर पर प्रभावित किया है। गाँधी ने सत्य और अहिंसा जैसे मूल्यों को राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्था में लागू कर यह सिद्ध किया कि मानव जीवन का आधार केवल भौतिक प्रगति नहीं, बल्कि नैतिकता और आध्यात्मिकता भी है। गाँधी के स्वदेशी, ग्रामस्वराज और ट्रस्टीशिप जैसे सिद्धांत न केवल भारत के लिए, बल्कि पूरी मानवता के लिए जीवन–दर्शन के रूप में सामने आते हैं। वैश्वीकरण के इस असंतुलित दौर में गाँधी हमें यह सिखाते हैं कि तकनीक और बाजार का उपयोग तभी सार्थक है जब वह मानव कल्याण और सामाजिक न्याय के लिए हो। यही कारण है कि वैश्वीकरण के युग में जब पूँजीवादी व्यवस्था एकमात्र विकल्प के रूप में सामने आती है, गाँधी का दर्शन एक नैतिक संतुलन और मानवीय विकल्प प्रदान करता है।

अतः इस अध्ययन सामग्री में हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि वैश्वीकरण की संकल्पना क्या है, उसके कौन से सकारात्मक और नकारात्मक पहलू हैं, और इस परिप्रेक्ष्य में गाँधी का दर्शन किस प्रकार एक वैकल्पिक दृ ष्टि प्रदान करता है। हम यह भी देखेंगे कि गाँधी दर्शन की मूल अवधारणाएँ आज किस प्रकार वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक हैं, और समकालीन विमर्श में गाँधी के विचारों को किस तरह पुनर्पाठ किया जा रहा है। इस प्रकार ष्वैश्वीकरण के युग में गाँधी दर्शन का महत्त्व विषय पर विमर्श न केवल एक शैक्षणिक आवश्यकता है, बल्कि वर्तमान मानव सभ्यता के संकटों को समझने और उनका समाधान खोजने का एक महत्वपूर्ण प्रयास भी है।

14.2 वैश्वीकरण – संकल्पना और परिप्रेक्ष्य

वैश्वीकरण (Globalization) आधुनिक युग की सबसे अधिक चर्चित और विवादास्पद संकल्पनाओं में से एक है। इसे लेकर विद्वानों, नीति–निर्माताओं और आम नागरिकों तक में अलग–अलग मत पाए जाते हैं। किसी के लिए यह अवसरों का विस्तार है तो किसी के लिए यह संकटों और चुनौतियों का नया नाम। वैश्वीकरण की सबसे सरल परिभाषा यह है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा दुनिया की अर्थव्यवस्थाएँ, समाज, राजनीति और संस्कृ तियाँ आपस में इस प्रकार जुड़ जाती हैं कि उनका परस्पर संबंध इतना गहरा हो जाता है कि उन्हें अलग–अलग इकाइयों के रूप में देखना कठिन हो जाता है। यह जुड़ाव केवल भौतिक नहीं बल्कि विचारों और जीवन–शैलियों का भी है।

वैश्वीकरण के अंतर्गत वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, सूचना और संस्कृति का आदान–प्रदान बिना किसी राष्ट्रीय अवरोध के होता है। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में जब शीत युद्ध समाप्त हुआ और उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियाँ प्रचलित हुईं, तब से यह प्रवृत्ति और तीव्र हो गई। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, मुक्त व्यापार समझौते,

अंतरराष्ट्रीय संगठन और सूचना क्रांति – इन सबने मिलकर वैश्वीकरण की प्रक्रिया को और व्यापक बना दिया।

वैश्वीकरण की यह प्रक्रिया एकपक्षीय नहीं है। इसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों आयाम हैं। एक ओर वैश्वीकरण ने देशों के बीच संपर्क, तकनीकी विकास और आर्थिक अवसरों को बढ़ाया है, वहीं दूसरी ओर इसने असमानता, बेरोजगारी, सांस्कृतिक क्षरण और पर्यावरण संकट जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न की हैं। वैश्वीकरण केवल आर्थिक व्यवस्था का हिस्सा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित करता है। जब एक संस्कृति दूसरी पर हावी हो जाती है तो स्थानीय पहचान संकट में पड़ जाती है। उपभोक्तावाद और बाजारवाद से व्यक्ति का जीवन केवल उपभोग की वस्तुओं तक सीमित होने लगता है। राजनीति में भी वैश्वीकरण का प्रभाव दिखता है। राज्यों की संप्रभुता कम होती है और अंतरराष्ट्रीय शक्तियों का दबाव बढ़ता है।

14.2.1 वैश्वीकरण की संकल्पना

वैश्वीकरण को समझने के लिए हमें इसके विभिन्न आयामों पर विचार करना होगा। आर्थिक दृष्टि से यह वह प्रक्रिया है जिसमें पूँजी, वस्तुएँ और सेवाएँ अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को पार कर स्वतंत्र रूप से प्रवाहित होती हैं। सामाजिक दृष्टि से यह विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद और आदान–प्रदान की प्रक्रिया है। राजनीतिक दृष्टि से वैश्वीकरण का अर्थ है – अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और संगठनों का बढ़ता प्रभाव, जिसके कारण राष्ट्र–राज्यों की संप्रभुता सिमटती जाती है।

वैश्वीकरण कोई अचानक उत्पन्न हुई घटना नहीं है। यदि हम इतिहास की ओर देखें तो पाएँगे कि मानव सभ्यता ने हमेशा से ही एक–दूसरे से जुड़ने की कोशिश की है। प्राचीन काल में रेशम मार्ग ¹पसा त्वनजम), समुद्री व्यापार और सांस्कृतिक आदान–प्रदान वैश्वीकरण की प्रारंभिक झलकियाँ थीं। मध्यकाल में उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद ने भी देशों को जोड़ा, परंतु यह जुड़ाव असमान और शोषणकारी था। आधुनिक अर्थों में वैश्वीकरण 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विशेष रूप से सामने आया, जब शीत युद्ध की समाप्ति के बाद उदारीकरण, निजीकरण और मुक्त व्यापार की नीतियाँ दुनिया भर में फैल गईं।

14.2.2 वैश्वीकरण का आर्थिक परिप्रेक्ष्य

आर्थिक दृष्टि से वैश्वीकरण का मुख्य उद्देश्य मुक्त व्यापार और पूँजी के प्रवाह को प्रोत्साहित करना है। विश्व व्यापार संगठन (WTO½) अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) और विश्व बैंक जैसी संस्थाएँ इस प्रक्रिया को गति देती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (MNCs) वैश्वीकरण की वास्तविक संचालक शक्ति हैं। वे पूँजी और तकनीक लेकर विभिन्न देशों में निवेश करती हैं और वैश्विक बाजार को एकीकृत करती हैं।

इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप उपभोक्ताओं को विविध प्रकार की वस्तुएँ और सेवाएँ उपलब्ध हुईं, तकनीकी प्रगति हुई और रोजगार के अवसर भी बढ़े। किंतु इसके नकारात्मक परिणाम भी उतने ही गंभीर हैं। स्थानीय उद्योग, विशेषकर लघु और कुटीर उद्योग, वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं पाते। रोजगार की असुरक्षा बढ़ती है और आर्थिक असमानता गहराती है। अमीर और गरीब देशों के बीच, और देशों के भीतर धनी और निर्धन वर्गों के बीच, खाई और चौड़ी हो जाती है।

14.2.3 वैश्वीकरण का सामाजिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

सांस्कृतिक स्तर पर वैश्वीकरण को एक ओर विविधता और संवाद का प्रतीक माना जाता है तो दूसरी ओर यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का साधन भी प्रतीत होता है। मीडिया, फिल्म, संगीत, फैशन और भोजन की आदतें वैश्विक स्तर पर फैल रही हैं। युवा पीढ़ी विभिन्न संस्कृतियों से परिचित हो रही है और नए अवसर पा रही है। परंतु इसके साथ–साथ स्थानीय भाषाएँ, लोक संस्कृतियाँ और परंपराएँ संकट में पड़ रही हैं।

अक्सर यह कहा जाता है कि वैश्वीकरण ने एक उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दिया है जिसमें व्यक्ति की पहचान उसके विचारों या मूल्यों से नहीं, बल्कि उसकी उपभोग क्षमता से तय होती है। इस उपभोक्तावाद ने पारिवारिक और सामुदायिक संबंधों को कमजोर कर दिया है। समाज अधिक व्यक्तिगत और प्रतिस्पर्धात्मक हो गया है।

14.2.4 वैश्वीकरण का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

राजनीतिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने राष्ट्र–राज्य की पारंपरिक संप्रभुता को चुनौती दी है। अब नीतियाँ केवल राष्ट्रीय स्तर पर नहीं बनतीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय समझौते और संस्थाएँ भी उन्हें प्रभावित करती हैं। जलवायु परिवर्तन, आतंकवाद, महामारी और साइबर सुरक्षा जैसी समस्याएँ इतनी वैश्विक हो गई हैं कि कोई भी राष्ट्र अकेले उनसे नहीं निपट सकता।

इसके अलावा, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और वित्तीय संस्थाएँ इतनी शक्तिशाली हो चुकी हैं कि वे कई बार लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और जनहित के ऊपर हावी हो जाती हैं। इससे राजनीतिक असमानता और लोकतांत्रिक संस्थाओं का कमजोर होना भी देखा जाता है।

14.2.5 वैश्वीकरण का पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य

पर्यावरण वैश्वीकरण का सबसे गंभीर आयाम है। औद्योगीकरण, उत्पादन और उपभोग की असीमित लालसा ने पृथ्वी को संकट में डाल दिया है। जलवायु परिवर्तन, ग्लोबल वार्मिंग, ओजोन परत का क्षरण, वनों की कटाई, जल और वायु प्रदूषण – ये सभी समस्याएँ वैश्वीकरण की देन हैं। विकास की दौड़ में प्राकृतिक संसाधनों का इतना अधिक दोहन हो रहा है कि भावी पीढ़ियों का अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है।

वैश्वीकरण ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पर्यावरणीय समस्याएँ किसी एक देश तक सीमित नहीं रह जातीं। यदि अमेजन के जंगल कटते हैं, तो उसका प्रभाव पूरी दुनिया के जलवायु पर पड़ता है। यदि एक देश में औद्योगिक प्रदूषण बढ़ता है, तो उसका असर पड़ोसी देशों पर भी होता है। इस प्रकार पर्यावरणीय संकट ने वैश्वीकरण को एक साझा समस्या बना दिया है।

14.2.6 वैश्वीकरण – अवसर और संकट

वैश्वीकरण को पूरी तरह सकारात्मक या नकारात्मक मान लेना उचित नहीं होगा। इसमें अवसर भी हैं और संकट भी। अवसर इस मायने में कि यह हमें नई तकनीक, नए विचार और नए बाजार देता है। यह हमें दुनिया के साथ जोड़ता है और परस्पर निर्भरता की भावना पैदा करता है। संकट इस मायने में कि यह असमानता, शोषण, सांस्कृतिक क्षरण और पर्यावरण संकट को जन्म देता है।

अतः वैश्वीकरण की प्रक्रिया को केवल बाजार और पूँजी के आधार पर नहीं, बल्कि मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्याय के आधार पर परिभाषित करने की आवश्यकता है। यहीं पर गाँधी का दर्शन सबसे अधिक प्रासंगिक हो जाता है। गाँधी हमें यह सिखाते हैं कि यदि वैश्वीकरण को मानवीय बनाया जाए, यदि उसमें सत्य, अहिंसा, न्याय और करुणा के तत्व जोड़े जाएँ, तो यह मानवता के लिए कल्याणकारी हो सकता है।

14.3 गाँधी दर्शन की मूल अवधारणाएँ

महात्मा गाँधी का दर्शन बहुआयामी और समग्र है। इसे केवल राजनीतिक दर्शन या सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि यह एक ऐसा जीवन–दर्शन है जिसमें नैतिकता, आध्यात्मिकता, राजनीति, अर्थशास्त्र और संस्कृति सब एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। गाँधी के लिए जीवन का प्रत्येक क्षेत्र मानवीय मूल्यों से संचालित होना चाहिए। वे आधुनिक सभ्यता की उस प्रवृत्ति के विरुद्ध खड़े हुए जो केवल भौतिक सुख–सुविधाओं और उपभोग को ही प्रगति का मानक मानती थी। उनके विचारों का केंद्रबिंदु मनुष्य और उसकी नैतिक उन्नति थी। इसीलिए गाँधी के दर्शन की मूल अवधारणाएँ आज भी वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक मानी जाती हैं।

14.3.1 सत्य

गाँधी का सबसे मूलभूत सिद्धांत सत्य था। उन्होंने स्वयं कहा था –"सत्य ही ईश्वर है।" पारंपरिक भारतीय चिंतन में ईश्वर सत्य का पर्याय माना जाता रहा है, लेकिन गाँधी ने इसके विपरीत सत्य को ही ईश्वर का पर्याय बना दिया। उनके लिए सत्य केवल एक दार्शनिक अमूर्त संकल्पना नहीं था, बल्कि यह व्यावहारिक जीवन का मार्गदर्शक था।

गाँधी ने सत्य को व्यक्तिगत और सामाजिक, दोनों स्तरों पर लागू किया। व्यक्तिगत जीवन में सत्य का अर्थ है –ईमानदारी, आत्मअनुशासन और अंतःकरण की शुद्धता। सामाजिक जीवन में सत्य का अर्थ है –पारदर्शिता, न्याय

और निष्पक्षता। गाँधी ने अपने राजनीतिक आंदोलनों में सत्याग्रह को हथियार बनाया। सत्याग्रह का अर्थ है – सत्य के लिए आग्रह। इसका उद्देश्य प्रतिद्वंद्वी को पराजित करना नहीं, बल्कि उसे सत्य की ओर उन्मुख करना है। इस प्रकार सत्य गाँधी दर्शन का नैतिक और व्यावहारिक आधार बन जाता है।

14.3.2 अहिंसा

गाँधी का दूसरा मूलभूत सिद्धांत अहिंसा है। उन्होंने कहा – "अहिंसा मानवता का सबसे बड़ा धर्म है।" अहिंसा का अर्थ केवल शारीरिक हिंसा से बचना नहीं है, बल्कि यह विचारों, शब्दों और व्यवहार तक फैला हुआ है। अहिंसा का मूल भाव है – सभी प्राणियों के प्रति करुणा और सह–अस्तित्व।

गाँधी का मानना था कि हिंसा अंततः और अधिक हिंसा को जन्म देती है। स्थायी समाधान केवल अहिंसा से ही संभव है। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा को संघर्ष का मुख्य साधन बनाया। जब पूरी दुनिया हिंसक क्रांतियों और युद्धों के मार्ग पर थी, गाँधी ने यह दिखाया कि अहिंसा भी एक सशक्त राजनीतिक हथियार हो सकता है।

अहिंसा केवल राजनीतिक साधन नहीं है, बल्कि यह जीवन का व्यापक दर्शन है। यह व्यक्ति को संयम, सहनशीलता और करुणा की ओर ले जाती है। आज जब वैश्वीकरण ने प्रतिस्पर्धा और संघर्ष को बढ़ा दिया है, अहिंसा का यह विचार विश्व शांति का आधार बन सकता है।

14.3.3 ट्रस्टीशिप सिद्धांत

गाँधी का आर्थिक दर्शन ट्रस्टीशिप पर आधारित है। उनका मानना था कि धनवान व्यक्ति अपनी संपत्ति का स्वामी नहीं, बल्कि समाज का ट्रस्टी है। उसे अपनी संपत्ति का उपयोग केवल व्यक्तिगत विलास के लिए नहीं, बल्कि समाज के कल्याण के लिए करना चाहिए।

यह विचार पूँजीवाद और साम्यवाद, दोनों के विकल्प के रूप में सामने आता है। पूँजीवाद में व्यक्ति की संपत्ति पर उसका पूर्ण अधिकार माना जाता है, जबकि साम्यवाद में निजी संपत्ति का पूर्ण उन्मूलन किया जाता है। गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत इन दोनों के बीच संतुलन प्रस्तुत करता है। इसमें व्यक्ति को संपत्ति रखने का अधिकार है, परंतु उसे सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ प्रयोग करना होगा।

आज जब वैश्वीकरण ने आर्थिक असमानता को चरम पर पहुँचा दिया है, ट्रस्टीशिप का यह विचार एक नैतिक आर्थिक मॉडल प्रदान करता है। यदि धनवान वर्ग समाज के प्रति उत्तरदायी बने और अपनी संपत्ति को सामाजिक कल्याण के लिए लगाए, तो आर्थिक विषमता काफी हद तक कम हो सकती है।

14.3.4 ग्रामस्वराज

गाँधी का राजनीतिक दर्शन ग्रामस्वराज पर आधारित था। उनका मानना था कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। उन्होंने ऐसे गाँवों की कल्पना की जो आत्मनिर्भर, स्वावलंबी और लोकतांत्रिक हों। प्रत्येक गाँव अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हो और उसकी अर्थव्यवस्था स्थानीय संसाधनों पर आधारित हो।

ग्रामस्वराज का अर्थ केवल ग्रामीण स्वशासन नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को सम्मान और भागीदारी मिले। यह विकेंद्रीकरण का आदर्श है। गाँधी ने कहा था कि सच्चा लोकतंत्र वही है जिसमें शक्ति नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित हो, न कि ऊपर से नीचे की ओर।

आज वैश्वीकरण ने गाँवों को हाशिए पर डाल दिया है। ग्रामीण जीवन और पारंपरिक उत्पादन प्रणाली संकट में हैं। ऐसे समय में ग्रामस्वराज का विचार स्थानीय स्वावलंबन और सतत विकास का विकल्प प्रस्तुत करता है।

14.3.5 स्वदेशी और आत्मनिर्भरता

गाँधी की आर्थिक नीति का सबसे प्रमुख आधार स्वदेशी था। उनके अनुसार स्वदेशी का अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं है, बल्कि यह अपने परिवेश और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर उत्पादन और उपभोग करना है।

गाँधी ने चरखे और खादी को स्वदेशी का प्रतीक बनाया। उनका मानना था कि जब प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम से वस्त्र कातेगा और पहनेगा, तब वह आत्मनिर्भर होगा। स्वदेशी केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि आत्मगौरव और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक भी है।

आज जब वैश्वीकरण ने हमें उपभोक्तावादी बना दिया है और हम विदेशी वस्तुओं पर निर्भर हो गए हैं, गाँधी का स्वदेशी का विचार हमें स्थानीय संसाधनों और आत्मनिर्भरता की ओर लौटने की प्रेरणा देता है।

14.3.6 सर्वधर्म समभाव

गाँधी की धार्मिक दृष्टि सर्वधर्म समभाव पर आधारित थी। उन्होंने कहा कि सभी धर्म सत्य की ओर ले जाने वाले मार्ग हैं। कोई भी धर्म पूर्ण नहीं है, प्रत्येक धर्म में सत्य का अंश है। अतः हमें सभी धर्मों का समान सम्मान करना चाहिए।

गाँधी ने अपने जीवन में गीता, कुरान, बाइबल और अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया और उनमें समानताओं को खोजा। उनके लिए धर्म का अर्थ कट्टरता नहीं, बल्कि सत्य और अहिंसा की साधना था।

आज जब वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक संवाद तो बढ़ाया है, लेकिन साथ ही धार्मिक कट्टरता और टकराव भी बढ़ाए हैं, सर्वधर्म समभाव का गाँधीवादी दृष्टिकोण वैश्विक शांति का आधार बन सकता है।

गाँधी दर्शन की ये मूल अवधारणाएँ – सत्य, अहिंसा, ट्रस्टीशिप, ग्रामस्वराज, स्वदेशी और सर्वधर्म समभाव – केवल आदर्श नहीं हैं, बल्कि ये जीवन जीने के व्यावहारिक मार्ग हैं। ये विचार न केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम को दिशा देने में सफल रहे, बल्कि आज वैश्वीकरण के युग में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। जब दुनिया हिंसा, असमानता, उपभोगवाद और सांस्कृतिक संकट से जूझ रही है, तब गाँधी का दर्शन एक नैतिक और मानवीय विकल्प प्रस्तुत करता है।

14.4 वैश्वीकरण की चुनौतियाँ

वैश्वीकरण को 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की सबसे बड़ी ऐतिहासिक प्रक्रिया माना जाता है। इसके समर्थक इसे प्रगति, आधुनिकता और वैश्विक सहयोग का प्रतीक मानते हैं, वहीं आलोचक इसे असमानता, शोषण और सांस्कृतिक विनाश का उपकरण बताते हैं। वास्तव में, वैश्वीकरण अवसरों के साथ–साथ कई गंभीर चुनौतियाँ भी लेकर आया है। ये चुनौतियाँ केवल आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और पर्यावरणीय स्तर पर भी गहराई से महसूस की जा रही हैं।

14.4.1 आर्थिक चुनौतियाँ

वैश्वीकरण की सबसे बड़ी चुनौती आर्थिक असमानता है। विकसित देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने इस प्रक्रिया से अपार लाभ कमाया, जबकि विकासशील और गरीब देशों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाया। मुक्त बाजार की प्रतिस्पर्धा में स्थानीय उद्योग, विशेषकर लघु और कुटीर उद्योग, धीरे–धीरे समाप्त होते गए। भारत जैसे देशों में हस्तशिल्प और पारंपरिक उत्पादन प्रणालियाँ संकट में आ गईं। रोजगार की असुरक्षा बढ़ी क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ केवल लाभ के आधार पर निवेश करती हैं और घाटा होने पर अचानक उद्योग बंद कर देती हैं। परिणामस्वरूप श्रमिकों की स्थिति अस्थिर हो गई। वैश्वीकरण ने अमीर और गरीब के बीच की खाई को और चौड़ा कर दिया है। एक छोटा–सा वैश्विक पूँजीपति वर्ग अत्यधिक धनी हो गया है, जबकि बड़ी आबादी गरीबी में जी रही है। इसके अतिरिक्त, कृषि क्षेत्र पर भी गहरा संकट आया। छोटे किसान वैश्विक प्रतिस्पर्धा में पिछड़ गए, उन्हें उचित मूल्य नहीं मिल पाया और वे कर्ज के बोझ तले दबकर आत्महत्या जैसी त्रासदी की ओर धकेल दिए गए।

14.4.2 सामाजिक चुनौतियाँ

सामाजिक स्तर पर भी वैश्वीकरण की चुनौतियाँ कम नहीं हैं। इसने उपभोक्तावाद की ऐसी संस्कृति को जन्म दिया जिसमें व्यक्ति की पहचान अब उसके विचारों, ज्ञान या नैतिक गुणों से नहीं, बल्कि उसकी उपभोग क्षमता से निर्धारित होने लगी है। परिवार और समुदाय जैसी पारंपरिक सामाजिक संरचनाएँ टूटने लगी हैं। संयुक्त परिवार का स्थान छोटे परिवारों ने ले लिया और लोग अधिक अकेलेपन और तनाव का शिकार होने लगे। स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी बुनियादी सेवाएँ निजीकरण और व्यावसायीकरण के कारण महँगी हो गईं, जिससे गरीब वर्ग इनसे वंचित

रह गया। वैश्वीकरण से उत्पन्न अवसरों का लाभ केवल शहरी और संपन्न वर्ग तक सीमित रहा, जबकि ग्रामीण और निर्धन वर्ग को इसका लाभ अपेक्षाकृत कम मिला, जिससे सामाजिक असमानता और गहरी हो गई।

14.4.3 सांस्कृतिक चुनौतियाँ

सांस्कृतिक क्षेत्र में वैश्वीकरण का प्रभाव और भी गहरा है। यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का रूप ले चुका है, जहाँ पश्चिमी जीवन–शैली और उपभोक्तावादी संस्कृति पूरी दुनिया पर हावी होती जा रही है। स्थानीय भाषाएँ, लोक कला और पारंपरिक रीति–रिवाज उपेक्षित हो रहे हैं। युवा पीढ़ी अपनी जड़ों से कटकर विदेशी संस्कृति की ओर आकर्षित हो रही है, जिससे सांस्कृतिक अस्मिता और आत्मगौरव का संकट खड़ा हो गया है। वैश्विक मीडिया और मनोरंजन उद्योग उपभोगवाद को और बढ़ावा देते हैं। विज्ञापनों और फिल्मों के माध्यम से यह संदेश फैलाया जाता है कि सफलता और प्रतिष्ठा का मापदंड केवल भौतिक वस्तुओं का उपभोग है। परिणामस्वरूप नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य पीछे छूटते जा रहे हैं।

14.4.4 राजनीतिक चुनौतियाँ

राजनीतिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने राष्ट्र–राज्यों की संप्रभुता को चुनौती दी है। अब नीतियाँ केवल राष्ट्रीय हितों के आधार पर नहीं बनतीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे विश्व व्यापार संगठन, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक भी उन्हें प्रभावित करते हैं। इससे देशों की स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता कम हो गई है। साथ ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों और कॉरपोरेट लॉबी की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि वे लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और जनहित पर हावी होने लगी हैं। वैश्वीकरण ने जहाँ संपर्क बढ़ाया है, वहीं आतंकवाद, साइबर अपराध और मानव तस्करी जैसी समस्याएँ भी वैश्विक स्तर पर फैल रही हैं, जिन्हें नियंत्रित करना और कठिन हो गया है।

14.4.5 पर्यावरणीय चुनौतियाँ

पर्यावरणीय संकट वैश्वीकरण की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक है। अनियंत्रित औद्योगीकरण और उपभोग की असीमित लालसा ने पृथ्वी के प्राकृतिक संसाधनों पर अत्यधिक दबाव डाला है। जलवायु परिवर्तन, ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन, ग्लोबल वार्मिंग और असामान्य मौसम की घटनाएँ अब सामान्य हो गई हैं। वनों की कटाई, जल और वायु प्रदूषण तथा जैव विविधता का क्षरण मानव अस्तित्व को ही संकट में डाल रहे हैं। दुख की बात यह है कि प्रदूषण का बोझ गरीब देशों और समाजों को अधिक झेलना पड़ता है, जबकि लाभ सम्पन्न देशों को मिलता है। इस असमानता ने पर्यावरणीय न्याय के प्रश्न को भी जन्म दिया है।

14.4.6 नैतिक और आध्यात्मिक चुनौतियाँ :

अंततः, वैश्वीकरण ने मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक आयामों को भी प्रभावित किया है। भौतिक सुख–सुविधाएँ और उपभोग केंद्र में आ गए हैं। व्यक्ति की सफलता अब उसकी नैतिकता या मानवीय गुणों से नहीं, बल्कि उसकी आर्थिक सामर्थ्य और बाजार में उपभोग क्षमता से आँकी जाती है। इससे जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य कमजोर होते जा रहे हैं। मनुष्य अधिक स्वार्थी, प्रतिस्पर्धी और उपभोगवादी होता जा रहा है, जिससे सामूहिकता और करुणा जैसे मानवीय गुण पीछे छूटते जा रहे हैं।

वैश्वीकरण की ये चुनौतियाँ इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि यदि वैश्वीकरण की प्रक्रिया केवल बाजार और पूँजी के आधार पर चलती रही, तो यह मानवता के लिए संकट का कारण बनेगी। यह असमानता, शोषण और विनाश को बढ़ाएगी। मानवता के लिए आवश्यक है कि वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया को मानवीय और न्यायपूर्ण बनाया जाए। यही वह बिंदु है जहाँ गाँधी दर्शन विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाता है। गाँधी हमें यह सिखाते हैं कि समाज और अर्थव्यवस्था का आधार केवल लाभ और उपभोग नहीं होना चाहिए, बल्कि नैतिकता, करुणा और मानव कल्याण होना चाहिए।

14.5 वैश्वीकरण के संदर्भ में गाँधी दर्शन का पुनर्पाठ

21वीं शताब्दी में वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया बन चुका है जो विश्व की राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाज और संस्कृति को गहराई से प्रभावित कर रही है। इसके कारण मानव जीवन में नई संभावनाएँ भी खुली हैं और गंभीर संकट भी उत्पन्न हुए हैं। ऐसे समय में गाँधी दर्शन को केवल इतिहास या स्वतंत्रता आंदोलन की विरासत के रूप

में देखना पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि उसे वर्तमान संदर्भ में पुनर्पाठ की आवश्यकता है। गाँधी के विचार केवल अतीत की समस्याओं का समाधान नहीं थे, बल्कि वे आज भी वैश्विक मानवता को दिशा दे सकते हैं।

वैश्वीकरण की चुनौतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यदि विकास और प्रगति केवल भौतिक साधनों पर आधारित होगी तो यह मानवता को विनाश की ओर ले जाएगी। बढ़ती असमानता, सांस्कृतिक विघटन, पर्यावरणीय संकट और हिंसा का विस्तार इस बात के प्रमाण हैं। गाँधी दर्शन सत्य, अहिंसा, करुणा और नैतिकता पर आधारित है। यह दर्शन हमें याद दिलाता है कि विकास का अर्थ केवल उपभोग की वृद्धि नहीं, बल्कि मानवीय गुणों और सामूहिक कल्याण की वृद्धि भी है। इसलिए वैश्वीकरण को समझने और उसका मानवीकरण करने के लिए गाँधी का पुनर्पाठ अनिवार्य हो जाता है।

14.5.1 आर्थिक असमानता और ट्रस्टीशिप का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण ने दुनिया को दो हिस्सों में बाँट दिया है – एक ओर बहुराष्ट्रीय कंपनियों और धनी वर्ग की समृद्धि है, दूसरी ओर गरीब देशों और समाजों की बदहाली। गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत यहाँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। गाँधी का मानना था कि संपत्ति का स्वामी केवल उसका उपयोगकर्ता है, वास्तविक स्वामी समाज है। अमीर वर्ग को चाहिए कि वह अपनी संपत्ति को समाज की भलाई में लगाए। यह विचार आज की कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (ब्ै) जैसी अवधारणाओं से कहीं आगे जाता है। यदि वैश्वीकरण के युग में ट्रस्टीशिप के सिद्धांत को अपनाया जाए तो कंपनियाँ केवल मुनाफा कमाने की मशीन न होकर समाज के विकास की सहभागी बन सकती हैं। यह असमानता और शोषण को कम करने की दिशा में बड़ा कदम हो सकता है।

14.5.2 उपभोक्तावाद और स्वदेशी का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण ने उपभोक्तावाद को जीवन का मूल मंत्र बना दिया है। व्यक्ति की पहचान अब उसकी उपभोग क्षमता से तय होती है। इससे न केवल आर्थिक असमानता गहरी हुई है, बल्कि पर्यावरणीय संकट भी बढ़ा है। गाँधी का स्वदेशी विचार इस चुनौती का व्यावहारिक उत्तर प्रस्तुत करता है। स्वदेशी का अर्थ केवल विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार नहीं, बल्कि स्थानीय संसाधनों और आवश्यकताओं के आधार पर उत्पादन और उपभोग करना है। यह विचार हमें सीमित उपभोग, आत्मनिर्भरता और पर्यावरण–संरक्षण की ओर ले जाता है। यदि आज के दौर में स्वदेशी को नए सिरे से पढ़ा जाए, तो इसका अर्थ होगा – स्थानीय उद्योगों को प्रोत्साहन, जैविक खेती का समर्थन, और टिकाऊ उपभोग। इससे वैश्विक स्तर पर संतुलन और न्याय स्थापित किया जा सकता है।

14.5.3 सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और सर्वधर्म समभाव का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण के कारण पश्चिमी संस्कृति और उपभोक्तावादी जीवन–शैली पूरी दुनिया में फैल गई है। इससे स्थानीय संस्कृतियाँ और परंपराएँ हाशिए पर चली जा रही हैं। धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान के संघर्ष बढ़े हैं। गाँधी का सर्वधर्म समभाव और सांस्कृतिक सहिष्णुता का विचार यहाँ महत्वपूर्ण हो जाता है। गाँधी मानते थे कि प्रत्येक संस्कृति और धर्म में सत्य का अंश है। हमें किसी भी संस्कृति या धर्म को श्रेष्ठ या हीन मानने के बजाय उनकी समानताओं और मानवीय मूल्यों पर ध्यान देना चाहिए। आज यदि वैश्वीकरण में सर्वधर्म समभाव का तत्व जोड़ा जाए, तो यह सांस्कृतिक संवाद और सहयोग का माध्यम बन सकता है। इससे वैश्वीकरण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद न होकर बहुलतावादी और मानवीय बनेगा।

14.5.4 हिंसा और संघर्ष के दौर में अहिंसा का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण ने जहाँ संपर्क बढ़ाया है, वहीं नए प्रकार के संघर्ष और हिंसा भी जन्म दिए हैं – आतंकवाद, युद्ध, साम्प्रदायिक दंगे और साइबर अपराध इसका उदाहरण हैं। गाँधी का अहिंसा सिद्धांत इस परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक है। अहिंसा केवल राजनीतिक संघर्ष का साधन नहीं, बल्कि जीवन की एक व्यापक दृष्टि है। यह हमें बताती है कि स्थायी शांति केवल संवाद, करुणा और सहिष्णुता से संभव है, न कि हिंसा से। आज जब राष्ट्र हथियारों की होड़ में हैं और समाज नफरत और हिंसा से विभाजित हो रहा है, गाँधी का अहिंसा का विचार एक नैतिक प्रकाशस्तंभ की तरह सामने आता है।

14.5.5 केंद्रीकरण की प्रवृत्ति और ग्रामस्वराज का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण ने सत्ता और पूँजी का केंद्रीकरण बढ़ा दिया है। आर्थिक और राजनीतिक निर्णय अब आम जनता

से दूर अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं और कॉरपोरेट घरानों द्वारा लिए जाते हैं। गाँधी का ग्रामस्वराज का विचार इस केंद्रीकरण के विकल्प के रूप में सामने आता है। उनका मानना था कि सच्चा लोकतंत्र वही है जिसमें शक्ति नीचे से ऊपर की ओर प्रवाहित हो। गाँव आत्मनिर्भर और लोकतांत्रिक इकाइयाँ बनें। आज ग्रामस्वराज का पुनर्पाठ करने का अर्थ है – विकेंद्रीकरण, स्थानीय शासन को मजबूत करना, और लोगों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहभागी बनाना। इससे लोकतंत्र अधिक जीवंत और जनोन्मुख हो सकता है।

14.5.6 पर्यावरणीय संकट और गाँधी का सरल जीवन

वैश्वीकरण ने विकास और प्रगति को भौतिक उपभोग और उत्पादन से जोड़ा है। इसका परिणाम है – जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन। गाँधी का जीवन सादगी और प्रकृति के साथ संतुलन का प्रतीक था। वे कहते थे – "पृथ्वी सबकी जरूरत पूरी कर सकती है, लेकिन किसी एक के लालच को नहीं।" यह विचार आज के पर्यावरणीय संकट का मूल समाधान प्रस्तुत करता है। यदि वैश्वीकरण की प्रक्रिया में गाँधी की सादगी और प्रकृति–संगत जीवन को शामिल किया जाए, तो यह सतत विकास का आधार बन सकता है।

14.5.7 नैतिकता और राजनीति का पुनर्पाठ

वैश्वीकरण ने राजनीति और अर्थव्यवस्था को लाभ और शक्ति तक सीमित कर दिया है। नैतिक मूल्यों की उपेक्षा हुई है। गाँधी मानते थे कि राजनीति बिना नैतिकता के विनाशकारी है। उनके लिए राजनीति, अर्थशास्त्र और धर्म एक–दूसरे से अलग नहीं थे। सत्य और अहिंसा राजनीति के मूल तत्व होने चाहिए। आज जब वैश्वीकरण ने राजनीति को कॉरपोरेट हितों का उपकरण बना दिया है, गाँधी का यह विचार हमें याद दिलाता है कि राजनीति का उद्देश्य केवल सत्ता नहीं, बल्कि लोककल्याण होना चाहिए।

इस प्रकार, वैश्वीकरण के संदर्भ में गाँधी दर्शन का पुनर्पाठ हमें यह समझने में मदद करता है कि आधुनिक चुनौतियों का समाधान केवल तकनीकी या आर्थिक उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए मानवीय मूल्यों, नैतिकता और सह–अस्तित्व की भावना को पुनर्जीवित करना आवश्यक है। गाँधी का सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, ग्रामस्वराज और ट्रस्टीशिप जैसे विचार वैश्वीकरण की प्रक्रिया को मानवीय और न्यायपूर्ण बना सकते हैं। यदि हम गाँधी का पुनर्पाठ केवल आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक मार्गदर्शक के रूप में करें, तो वैश्वीकरण का यह युग मानवता के लिए संकट नहीं, बल्कि अवसर भी बन सकता है।

14.6 गाँधी दर्शन और वैकल्पिक वैश्वीकरण

वैश्वीकरण की प्रचलित प्रक्रिया पूँजी, तकनीक और बाजार पर केंद्रित है। यह पश्चिमी देशों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित में अधिक कार्य करती है। परिणामस्वरूप, असमानता, शोषण, पर्यावरणीय संकट और सांस्कृतिक क्षरण बढ़ते जा रहे हैं। ऐसे समय में "वैकल्पिक वैश्वीकरण" की आवश्यकता सामने आती है। वैकल्पिक वैश्वीकरण का अर्थ हैकृऐसी वैश्विक व्यवस्था जिसमें मानवीय मूल्य, सामाजिक न्याय, स्थानीय स्वावलंबन और पर्यावरण संरक्षण केंद्र में हों। गाँधी दर्शन इस वैकल्पिक वैश्वीकरण के लिए सबसे सशक्त आधार प्रस्तुत करता है।

14.6.1 वैश्वीकरण के मानवीकरण की दिशा में गाँधो

गाँधी का दर्शन यह मानता है कि मनुष्य केवल उपभोक्ता या उत्पादक नहीं, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक प्राणी है। वर्तमान वैश्वीकरण ने मनुष्य को बाजार का उपकरण बना दिया है। इसके विपरीत गाँधी का विचार वैश्वीकरण को मानव–केंद्रित बनाने की दिशा में मार्गदर्शन करता है। गाँधी कहते थे कि किसी भी व्यवस्था का मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह सबसे गरीब और कमजोर व्यक्ति के जीवन में सुधार ला रही है या नहीं। यदि वैश्वीकरण को इसी कसौटी पर परखा जाए, तो यह अधिक न्यायपूर्ण और समावेशी बन सकता है।

14.6.2 ग्रामस्वराज और स्थानीय स्वावलंबन

वैकल्पिक वैश्वीकरण का अर्थ हैकृस्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भरता को मजबूत करना और वैश्विक स्तर पर सहयोग कायम रखना। गाँधी का ग्रामस्वराज इसी की ओर संकेत करता है। गाँधी ने जिस स्वावलंबी गाँव की परिकल्पना की थी, वह न केवल भारत, बल्कि दुनिया के लिए भी एक मॉडल बन सकता है। आज जब वैश्वीकरण ने गाँवों को हाशिए पर डाल दिया है, गाँधी का ग्रामस्वराज वैकल्पिक वैश्वीकरण की दिशा में स्थानीय स्वशासन,

विकेंद्रीकरण और सतत विकास का आधार प्रदान करता है।

14.6.3 स्वदेशी और टिकाऊ उपभोग

गाँधी का स्वदेशी केवल आर्थिक नीति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक आत्मगौरव और पर्यावरणीय संतुलन का प्रतीक है। वैकल्पिक वैश्वीकरण का अर्थ हैकृवैश्विक व्यापार को तो स्वीकार करना, लेकिन स्थानीय संसाधनों और आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना। यदि उपभोग सीमित और जिम्मेदार होगा, तो प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम होगा और पर्यावरण संरक्षित रहेगा। गाँधी का यह विचार आज "सस्टेनेबल डेवेलपमेंट" और "लोकलाइजेशन" जैसी वैश्विक अवधारणाओं से गहराई से मेल खाता है।

14.6.4 ट्रस्टीशिप और आर्थिक न्याय

वर्तमान वैश्वीकरण में पूँजी और संपत्ति का असमान वितरण सबसे बड़ी समस्या है। गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत इस समस्या का नैतिक समाधान प्रस्तुत करता है। ट्रस्टीशिप का अर्थ है कि अमीर अपनी संपत्ति का उपयोग समाज के हित में करें। यह पूँजीवाद की शोषणकारी प्रवृत्ति और साम्यवाद की कठोर समानता, दोनों से भिन्न एक मानवीय मार्ग है। वैकल्पिक वैश्वीकरण यदि ट्रस्टीशिप पर आधारित हो, तो यह आर्थिक न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा देगा।

14.6.5 अहिंसा और वैश्विक शांति

वैश्वीकरण के दौर में संसाधनों और शक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है। इससे युद्ध, आतंकवाद और असुरक्षा की स्थितियाँ पैदा हो रही हैं। गाँधी का अहिंसा सिद्धांत वैकल्पिक वैश्वीकरण की शांति–दृष्टि है। यदि अंतरराष्ट्रीय संबंध अहिंसा और सहयोग पर आधारित हों, तो वैश्वीकरण टकराव और हिंसा का कारण न होकर शांति और सहयोग का साधन बन सकता है। यह दृष्टि वैश्विक संघर्षों को सुलझाने में नए रास्ते खोलती है।

14.6.6. सर्वधर्म समभाव और सांस्कृतिक बहुलता

वर्तमान वैश्वीकरण सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का रूप ले चुका है। पश्चिमी संस्कृति वैश्विक जीवन–शैली पर हावी है। गाँधी का सर्वधर्म समभाव और सांस्कृतिक सहिष्णुता का दृष्टिकोण वैकल्पिक वैश्वीकरण का आधार बन सकता है। गाँधी मानते थे कि सभी धर्म और संस्कृतियाँ सत्य की खोज की अलग–अलग राहें हैं। यदि वैश्वीकरण इस दृष्टि से आगे बढ़े, तो यह सांस्कृतिक साम्राज्यवाद न होकर सांस्कृतिक बहुलता और संवाद का मंच बनेगा।

गाँधी दर्शन हमें यह सिखाता है कि वैश्वीकरण का लक्ष्य केवल आर्थिक लाभ नहीं होना चाहिए, बल्कि यह मानवता की सामूहिक भलाई और सतत विकास होना चाहिए। वैकल्पिक वैश्वीकरण गाँधी के सिद्धांतों – ग्रामस्वराज, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप, अहिंसा और सर्वधर्म समभाव – पर आधारित होकर ही संभव है। यदि हम गाँधी का मार्ग अपनाएँ, तो वैश्वीकरण शोषण और असमानता का पर्याय न होकर सहयोग, न्याय और शांति का साधन बन सकता है। यही गाँधी दर्शन की वास्तविक प्रासंगिकता है और यही वैकल्पिक वैश्वीकरण का सार है।

14.7 समकालीन विमर्श – गाँधी और वैश्विक परिप्रेक्ष्य

गाँधी दर्शन का प्रभाव केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने पूरी दुनिया को प्रभावित किया। गाँधी के सत्य, अहिंसा और करुणा पर आधारित विचारों ने न केवल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को दिशा दी, बल्कि विश्व के अनेक आंदोलनों और विचारकों को भी प्रेरित किया। आज के समय में जब वैश्वीकरण ने मानवता के सामने नई चुनौतियाँ खड़ी कर दी हैं, गाँधी का दर्शन विभिन्न समकालीन विमर्शों का अभिन्न हिस्सा बन गया है।

14.7.1 गाँधी और शांति विमर्श

गाँधी का सबसे बड़ा योगदान शांति और अहिंसा की अवधारणा को राजनीतिक हथियार बनाना था। मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने अमेरिकी नागरिक अधिकार आंदोलन में गाँधी से प्रेरणा ली। नेल्सन मंडेला ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद विरोधी संघर्ष में गाँधीवादी तरीकों का प्रयोग किया। आज जब विश्व आतंकवाद, युद्ध और हथियारों की होड़ से जूझ रहा है, गाँधी का शांति–सिद्धांत वैश्विक विमर्श में महत्वपूर्ण हो गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अहिंसा को अंतरराष्ट्रीय शांति की आधारशिला माना है। 2 अक्टूबर, गाँधी जयंती को "अंतरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस" घोषित करना इस बात का प्रमाण है कि समकालीन विश्व गाँधी की प्रासंगिकता को मान्यता दे रहा है।

14.7.2 गाँधी और पर्यावरणीय विमर्श

21वीं शताब्दी की सबसे बड़ी चुनौती पर्यावरणीय संकट है। जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और संसाधनों के अति–शोषण ने पृथ्वी को खतरे में डाल दिया है। गाँधी का जीवन और विचार इस संकट का गहरा समाधान प्रस्तुत करते हैं। गाँधी का वाक्यांशकृ"पृथ्वी सबकी जरूरत पूरी कर सकती है, लेकिन किसी एक के लालच को नहीं" आज भी पर्यावरणीय विमर्श का आधार है। वे सरल जीवन, सीमित उपभोग और प्रकृति के साथ संतुलन पर बल देते थे। आज "सतत् विकास"(Sustainable Development), "डी–ग्रोथ" (Degrowth) और "लोकलाइजेशन" जैसे वैश्विक आंदोलन सीधे–सीधे गाँधी के विचारों से प्रेरणा ले रहे हैं। इस प्रकार गाँधी पर्यावरणीय विमर्श में एक वैश्विक मार्गदर्शक के रूप में पुनः उपस्थित हो रहे हैं।

14.7.3 गाँधी और विकास विमर्श

वैश्वीकरण ने विकास को जीडीपी और उत्पादन से जोड़ दिया है। लेकिन यह विकास असमानता और शोषण को भी बढ़ा रहा है। गाँधी का दृष्टिकोण विकास को केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि मानव कल्याण से जोड़ता है। उनके ग्रामस्वराज और स्वदेशी विचार आज "मानव–केंद्रित विकास" और "समुदाय–आधारित विकास" जैसे विमर्शों से मेल खाते हैं। गाँधी का मानना था कि विकास तभी सार्थक है जब वह सबसे गरीब व्यक्ति को लाभ पहुँचा सके। आज विश्व बैंक और संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाएँ भी "इन्क्लूसिव ग्रोथ" (समावेशी विकास) की बात कर रही हैं। यह दर्शाता है कि गाँधी की सोच वैश्विक विकास विमर्श का हिस्सा बन चुकी है।

14.7.4 गाँधी और नारीवादी विमर्श

गाँधी के विचारों का एक महत्वपूर्ण पहलू लैंगिक समानता से भी जुड़ा है। वे स्त्रियों को केवल गृहिणी की भूमिका तक सीमित करने के विरोधी थे। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी संख्या में स्त्रियों को भागीदारी के लिए प्रेरित किया। अहिंसा, करुणा और आत्मबल जैसे गाँधीवादी मूल्य नारीवादी विमर्श के साथ गहराई से मेल खाते हैं। आज जब वैश्वीकरण ने स्त्रियों को नए अवसर दिए हैं, लेकिन साथ ही शोषण और हिंसा भी बढ़ाई है, गाँधी का दृष्टिकोण नारीवादी आंदोलनों को नैतिक और मानवीय आधार प्रदान करता है।

14.7.5 गाँधी और वैश्विक न्याय

वैश्वीकरण ने अमीर और गरीब देशों के बीच असमानता को और गहरा कर दिया है। इस संदर्भ में वैश्विक न्याय (ळसवइंस श्रनेजपबम) का विमर्श उभर कर आया है। गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धांत और उनकी "अंत्योदय" की अवधारणा इस विमर्श को नैतिक आधार देती है। गाँधी मानते थे कि समाज का वास्तविक मूल्यांकन इस आधार पर होना चाहिए कि वह सबसे कमजोर व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करता है। आज "ग्लोबल साउथ" (Global South) के गरीब देशों की स्थिति भी इसी कसौटी पर परखी जा रही है। गाँधी का यह दृष्टिकोण वैश्विक न्याय के विमर्श में निर्णायक रूप से प्रासंगिक है।

14.7.6 गाँधी और शिक्षा विमर्श

गाँधी की नयी तालीम योजना शिक्षा को केवल रोजगार प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण का माध्यम मानती थी। उन्होंने शिक्षा में श्रम, नैतिकता और स्वावलंबन को शामिल किया। आज जब वैश्वीकरण ने शिक्षा को व्यावसायीकरण की ओर धकेल दिया है, गाँधी का शिक्षा–दर्शन हमें याद दिलाता है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल कौशल नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक जिम्मेदारी भी होना चाहिए।

समकालीन वैश्विक विमर्शों चाहे वह शांति का हो, पर्यावरण का, विकास का, नारीवाद का या वैश्विक न्याय काकृसभी में गाँधी के विचार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मौजूद हैं। गाँधी को केवल भारत के स्वतंत्रता संग्राम के नेता के रूप में देखना उनकी विरासत को सीमित करना होगा। वास्तव में वे एक वैश्विक चिंतक हैं जिनका दर्शन आज की दुनिया के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हो रहा है। यदि वैश्वीकरण की प्रक्रिया को मानवीय और न्यायपूर्ण बनाना है, तो गाँधी का पुनर्पाठ और समकालीन विमर्श में उनका समावेश अनिवार्य है। यही गाँधी की वैश्विक प्रासंगिकता है।

14.8 निष्कर्ष

मानव सभ्यता आज जिस मोड़ पर खड़ी है, वहाँ तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकास की चमक के

साथ–साथ अनेक गहरे संकट भी उपस्थित हैं। वैश्वीकरण ने दुनिया को जोड़ा है, लेकिन उसने मानवता को विभाजित भी किया है। वैश्वीकरण ने दुनिया को जोड़ने का कार्य अवश्य किया है, लेकिन यह जुड़ाव केवल आर्थिक और तकनीकी स्तर पर ही हुआ है। सामाजिक न्याय, नैतिक मूल्यों, पर्यावरणीय संतुलन और मानवीय समानता जैसे बुनियादी तत्व इस प्रक्रिया में पीछे छूटते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप असमानता, उपभोगवाद, सांस्कृतिक साम्राज्यवाद और पर्यावरणीय विनाश जैसी चुनौतियाँ वैश्वीकरण के अनिवार्य साथी बन गए हैं।

ऐसे दौर में महात्मा गाँधी का दर्शन हमें एक नई दृष्टि प्रदान करता है। गाँधी ने जिस आधुनिक सभ्यता की आलोचना हिन्द स्वराज्य में की थी, उसकी प्रासंगिकता आज और भी बढ़ गई है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि औद्योगिक पूँजीवादी सभ्यता मनुष्य को भौतिकता में डुबोकर नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कमजोर बना देती है। यह चेतावनी आज वास्तविकता बनकर सामने आ चुकी है। वैश्वीकरण का मॉडल जिस उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म दे रहा है, वही पृथ्वी के संसाधनों को संकट की ओर धकेल रही है और मानव संबंधों को खोखला बना रही है।

गाँधी दर्शन का सबसे बड़ा योगदान यह है कि वह हमें यह याद दिलाता है कि वास्तविक विकास केवल आर्थिक वृद्धि नहीं, बल्कि नैतिक उन्नति और मानवीय कल्याण है। गाँधी का सत्य और अहिंसा का सिद्धांत वैश्विक संघर्षों के समाधान के लिए आज भी मार्गदर्शक है। उनका स्वदेशी और ग्रामस्वराज का विचार हमें बताता है कि आत्मनिर्भरता और स्थानीय स्वावलंबन ही टिकाऊ विकास का आधार हैं। ट्रस्टीशिप का सिद्धांत आर्थिक न्याय और समानता की दिशा में एक मानवीय रास्ता प्रस्तुत करता है।

आज दुनिया भर में अनेक आंदोलन और विमर्श गाँधी से प्रेरित हो रहे हैं। सतत विकास, डी–ग्रोथ, ग्लोबल जस्टिस, लोकलाइजेशन और नॉन–वायलेंट पॉलिटिक्स जैसे विमर्शों में गाँधी का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव देखा जा सकता है। पर्यावरणीय संकट का समाधान खोजने वाले कार्यकर्ता गाँधी के सीमित उपभोग और सरल जीवन को मार्गदर्शक मान रहे हैं। नारीवादी आंदोलन गाँधी के करुणा और समानता के सिद्धांतों से शक्ति ग्रहण कर रहे हैं। शांति और मानवाधिकार आंदोलनों ने गाँधी के अहिंसा सिद्धांत को अपनी आधारशिला बनाया है।

यह स्पष्ट है कि गाँधी केवल भारतीय संदर्भ के विचारक नहीं थे, बल्कि वे एक वैश्विक चिंतक थे। उनका दर्शन आज की दुनिया के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके जीवनकाल में था। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गाँधी को स्मरण करना मात्र औपचारिकता नहीं, बल्कि एक आवश्यकता है। यदि दुनिया को शांति, समानता और टिकाऊ विकास की ओर ले जाना है, तो गाँधी का पुनर्पाठ अनिवार्य हो जाता है।

गाँधी का दर्शन हमें यह भी सिखाता है कि वैश्वीकरण को न तो पूर्णतः अस्वीकार करना आवश्यक है और न ही उसे अंधभक्ति के साथ स्वीकार करना उचित है। आवश्यक है कि हम वैश्वीकरण को मानवीय मूल्यों, सामाजिक न्याय और पर्यावरणीय संतुलन के साथ संतुलित करें। गाँधी के विचार इसी संतुलन की ओर संकेत करते हैं। वे कहते थे कि "सच्ची सभ्यता वही है जो नैतिकता और आत्मसंयम पर आधारित हो।" यदि हम इस दृष्टि को वैश्विक जीवन में उतारें, तो एक वैकल्पिक वैश्वीकरण संभव है, जिसमें हर व्यक्ति को सम्मान और समान अवसर मिले, संसाधनों का न्यायपूर्ण उपयोग हो और पृथ्वी का संरक्षण भविष्य की पीढ़ियों के लिए सुनिश्चित हो।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के युग में गाँधी दर्शन का महत्व केवल एक वैकल्पिक दृष्टि तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव सभ्यता के अस्तित्व और भविष्य से भी जुड़ा हुआ है। यदि हम गाँधी के विचारों को आत्मसात करें, तो वैश्वीकरण शोषण और असमानता का साधन न होकर सहयोग, करुणा और न्याय का आधार बन सकता है। यही गाँधी की विश्व–प्रासंगिकता है और यही उनके दर्शन का शाश्वत महत्व है।

14.9 बोध प्रश्न

1. वैश्वीकरण की संकल्पना और इसके सामाजिक–आर्थिक प्रभावों का विवेचन कीजिए।
2. वैश्वीकरण से उत्पन्न सांस्कृतिक चुनौतियों के समाधान में गाँधी दर्शन की भूमिका स्पष्ट कीजिए।
3. गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत को वैश्वीकरण की आर्थिक विषमता के संदर्भ में समझाइए।
4. ग्रामस्वराज और स्वदेशी का महत्व वैश्वीकरण के संदर्भ में किस प्रकार प्रासंगिक है?

5. पर्यावरणीय संकट और सतत विकास में गाँधी दर्शन की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
6. 'वैश्वीकरण के युग में गाँधी दर्शन का महत्त्व' – आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

14.9 बोध प्रश्न

1. गाँधी, महात्मा. हिन्द स्वराज्य।
2. नारायण, जयप्रकाश. गाँधी और समाजवाद।
3. दत्त, वीरेन्द्र कुमार. वैश्वीकरण और गाँधी।
4. नायर, रमेश. Globalization and Gandhi's Thought.
5. हक्सर, पी.एन. Gandhi and the Contemporary World.
6. अशोक कुमार. वैश्वीकरण और भारतीय समाज।
7. सेन, अमर्त्य- Development as Freedoma

Notes

Notes